प्रकाशक:—

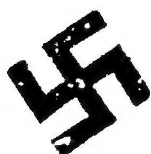
देवराज सुराणा :: अभयराज नाहर

अध्यक्ष मन्त्री

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय

मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राजस्थान)





मुद्रक:

पं० बालकृष्ण उपाध्याय

श्री नारायण प्रिन्टिंग प्रेस,

ब्यावर.

8373

-: आभार :-

"हीरक प्रवचन" का आठवां भाग पाठकों के कर-कमलों में उपस्थित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है। कुछ ही समय पूर्व पहला, दूसरा, तीसरा चौथा, पांचवां, छटा व सातवां भाग प्रकाश में आ चुका है। पाठकों ने इसे सहर्ष अपनाया है और इसी कारण आगे के भाग प्रकाशित करने का उत्साह हमें प्राप्त हो सका है। आशा है अगले भाग यथा सम्भव शीघ्र ही पाठकों की सेवा में पहुंच सकेंगे।

इन प्रवचनों के प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों का हमें प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है, हम उनके प्रति अतीव आभारी हैं। पं० र० मुनि श्री हीरालालजी म० का, जिनके यह प्रवचन हैं, कहां तक आभार माना जाय? आप तो इसके प्राण ही हैं। वे सज्जन भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके आर्थिक सहयोग से हम इस साहित्य को प्रकाशित कर सके हैं।

अन्त में निवेदन है कि धर्म प्रेमी पाठक इन्हें स्वयं पढ़ें, दूसरों को पढ़ने के लिए दें और अधिक से अधिक प्रचार करने में सहायक बनें। इति शम्

देवराज सुराणा, अध्यक्ष,
अभयराज नाहर, मन्त्री,
जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर

:: दानदाताओं की शुभ नामावली ::

—:०:—

श्री मज्जैनाचार्य शांतमूर्ति स्वर्गीय श्री खूबचन्दजी म० के गुरु भ्राता स्व० व्याख्यानी पं० मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म० के सुशिष्य श्रमण संघीय जैनागम तत्त्व 'विशारद पं० रत्न मुनि श्री हीरालालजी का सं० २०१६ का चातुर्मास बैंगलोर केन्टोनमेन्ट में श्री वर्ध० स्था० जैन श्रावक संघ की आग्रह भरी विनती से मोरचरी तथा सर्पीग्सरोड़ में हुआ। मुनि श्री के प्रवचन अत्यन्त मनोहर सारगर्भित एवं हृदयस्पर्शी होते थे। उन ओजस्वी प्रवचनों को सर्व साधारण के सदुपयोग में लाने के लिए श्रीमान् धर्मपालजी मेहता द्वारा संकेत लिपि लिखवाए गए और उन व्याख्यानों का संपादन हो जाने पर "हीरक प्रवचनादि" पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवाने के लिए सांवत्सरिक महापर्व के समारोह की खुशी में निम्नलिखित उदार महानुभावों एवं महिलाओं ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए सहयोग प्रदान किया:—

:: मानद् स्तम्भ ::

११११) श्रीमान् सेठ मंगलजी भोजराजजी मेहता (पालनपुर निवासी) C/o विक्टरी टेड्रर्स रंगापिल्लाई स्ट्रीट पांडीचेरी

१००१) श्रीमान् सेठ कुन्दनमलजी पुखराजजी लूकड़, चिकपेट बैंगलोर २

:: माननीय सहायक ::

४०६) श्री महिला समाज की ओर से बैंगलोर

४०१) श्री सेठ जसराजजी भंवरलालजी सियाल चिकपेट " २

४००) " मंगलजी भाई मणीलाल भाई मेहता (पालनपुर निवासी) C/o ओवरसीज ट्रेडर्स २२ डूप्लेक्स स्ट्रीट पांडीचेरी

४००) श्री सेठ हरिलालजी लक्ष्मीचन्दजी भाई मोदी (पालनपुर निवासी) C/o एच०एल० मोदी वेशाल स्ट्रीट पांडीचेरी

४००) " शांतिलालजी बछराजजी भाई मेहता (पालनपुरनिवासी) C/o एस० बछराज नं० ६ लयोरदनो स्ट्रीट पांडीचेरी

३००) " गुप्तदान (एक बहिन की तरफ से) मामूली पैठ बैंगलोर २

२५१) श्रीमती मंजुला बहिन C/o एम० एन० मेहता, बॉस्टन शॉप महात्मा गांधी रोड, बैंगलोर १

२५१) श्रीमान् सेठ रूपचन्दजी शेषमलजी लूनिया, मोरचरी बाजार, बैंगलोर १

२५१) " आसुलालजी बुधमलजी बजेडीया बोहरा, पारस टैक्सटाईल D.S. लेन चीकपेट बैंगलोर सीटी २

२५१) मेसर्स बरलोटा ब्रादर्स १०३०६ इन्टर नेशनल बीजनश कोरपोरसन

२००) " सेठ मंगलचन्दजी मांडोत, शिवाजी नगर बैंगलोर १

२०१) श्रीमती ताराबाई कालीदासजी मेहता C/o सेठ रजनीकान्तजी कालीदासजी मेहता २११ लिंगीचेट्टी स्ट्रीट मद्रास १

२००) श्रीमान् सेठ उमचंदसिंहजी संग्रामसिंहजी मेहता (जयपुर निवासी) C/o इम्पोर्ट एक्सपोर्ट कोरपोरेशन पोस्ट बोक्स नं० २८ फोन्सेके स्ट्रीट पांडीचेरी

१५१) " गुप्त दान (एक सज्जन की ओर से) हैदराबाद

१५१) " मिसरीमलजी अनोलखचन्दजी बाफना, कांजीवरम

१५१) " केसरचन्दजी जसराजजी गुलेछा, रंग स्वामी टेम्पल स्ट्रीट, बैंगलोर २

१२१) श्री सेठ जुगराजजी खींवराजजी बरमेचा मद्रास
१०२) „ जसराजजी रांका (राखीवाले) C/o सेठ रतनचंदजी
रांका ३८ वीरप्पन स्ट्रीट मद्रास
१०१) „ किशनलालजी फूलचन्दजी लूनिया,
दीवान सुरापालेन, बैंगलोर २
१०१) „ मिश्रीलालजी पारसमलजी कातरेला,
मामूली पैठ बैंगलोर २
१०१) „ मगनभाई गुजराती, गांधी नगर बैंगलोर २
१०१) „ गुलाबचन्दजी भंवरलालजी सकलेचा,
मलेश्वरम बैंगलोर २
१०१) „ भभूतमलजी देवड़ा, बेनी मिल्स रोड़ बैंगलोर २
१०१) „ पन्नालालजी रतनचन्दजी कांकरिया,
सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) „ उदयरामजी भीकमचन्दजी खींवसरा,
सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) „ पुखराजजी मूथा, सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) „ गणेशमलजी लोढ़ा सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) „ नेमीचन्दजी चांदमलजी खियाल,
सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) „ भंवरलालजी घीसूलालजी समदड़िया,
सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) „ हीराचन्दजी फतहराजजी कटारिया,
केवेलरी रोड़ बैंगलोर १
१०१) „ मिश्रीलालजी भंवरलालजी बोहरा,
मारवाड़ी बाजार बैंगलोर १
१०१) „ दुलराजजी भंवरलालजी बोहरा, अलसूर बैंगलोर ८

१०१) श्री सेठ अमोलकचन्दजी लोढ़ा तिमिया रोड़ बैंगलोर ८
१०१) ,, जवाननलजी भंवरलालजी लोढ़ा तिमिया रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, मिट्ठालालजी खुशालचन्दजी छाजेड़
तिमिया रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, मोतीलालजी छाजेड़ ,,
१०१) ,, भंवरलालजी पांठियां ,,
१०१) ,, लेखराजजी भंवरलालजी लूनिया
भारती नगर बैंगलोर १
१०१) ,, लक्ष्मीचन्दजी C/o मोतीलालजी माणकचन्दजी कोठारी
नं० ३२ D. अरुनाचलम मुदलियार स्ट्रीट बैंगलोर १
१०१) ,, पुखराजजी लूंकड़ की धर्मपत्नि श्रीमती गजरा बाई
चिक पैंठ बैंगलोर २
१०१) ,, जी० नेमीचन्दजी सकलेचा
ओल्डपुर हाऊस रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, लखमीचन्दजी खारीवाल स्वास्तिक इलेक्ट्रिक
हनुमान बिल्डिंग चिक पेंठ बैंगलोर २
१०१) गो गुप्तदान (एक सज्जन की ओर से) शूले बाजार बैंल०
१०१) ,, रामलालजी मांडोत, शिवाजी नगर बैंगलोर १
१०१) ,, पुखराजजी मांडोत ब्लॉक पल्ली ,, १
१०१) ,, पुखराजजी पोरवाल,
चिक बाजार रोड़ शिवाजी नगर बैंगलोर १
१०१) ,, श्री सेठ अमृतलालजी धर्मराजजी रांका,
एलगुण्ड पालियम बैंगलोर १
१०१) ,, पन्नालालजी रांका, ओल्डपुर हाऊस रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, केसरीमलजी मिश्रीमलजी गोठी,
४५ कासीमोर रायपुरम मद्रास १२

१०१) श्री सेठ जुगराजजी पुखराजजी खींवसरा,
सजोड़े अट्ठाई के उपलक्ष में
६/५८ बरकोट रोड़ टी. नगर मद्रास १७
१०१) „ कपूरचन्दजी एन्ड सुरतिया,
६८ मिन्ट स्ट्रीट साऊकार पेट मद्रास १
१०१) उगमबाई की तपस्या के उपलक्ष में
C/o जीं० रघुनाथमलजी ४१६ मेन बाजार वेल्लुर
१०१) श्री सेठ भभूतमलजी जीवराजजी मरलेचा,
नगरथ पैठ बैंगलोर २
१०१) „ शान्तिलालजी छोटालालजी, एवेन्यु रोड़ बैंगलोर २
१०१) „ हिम्मतमलजी माणकचन्दजी छाजेड़,
अलसूर बाजार बैंगलोर
१०१) „ घीसूलालजी मोहनलालजी सेठिया, अशोका रोड़ मैसूर
१०१) „ मेघराजजी गदिया, अशोका रोड़ मैसूर
१०१) „ गुलाबचन्द कन्हैयालालजी गदिया; आरकोनम् मद्रास
१०१) श्रीमती सरस्वती बहिन C/o मणिलाल चतुरभाई
नवरंगपुरा एलोस ब्रिज बस स्टैन्ड के सामने, अहमदाबाद
१०१) श्री सेठ मिश्रीलालजी लूकड़ त्रिवल्लूर मद्रास
१०१) „ मानमलजी भंवरलालजी छाजेड़ „
पलुमर रोड़ उरगम के० जी० एफ०
१०१) „ पुखराजजी अनराजजी कटारिया आरकोलम
१०१) श्रीमती अ०सौ०कंचनगोरी धर्मपत्नी श्री नवलचन्दजी डोसी
C/o बोम्बे आपटीक्लब १७ सी ब्रोडवे मद्रास १
१०१) श्री सेठ हेमराजजी लालचन्दजी सीघवी
नम्बर ११ बड़ा बाजार रायपेट मद्रास १४

१०१) श्री सेठ अमोलकचन्द भंवरलाल विनायकीया,
१D७/१२६ माऊन्ट रोड़ थाऊजेन्ड लाईट मद्रास ६

१०१) ,, परजीवन पी० सेठ, टी० सुलतान बाजार
इन्द्र बाग हैदराबाद (आंध्र प्रदेश)

१०१) ,, खिवराजजी चोरड़िया, नं० २६ जनरल मुथैय्या स्ट्रीट
साहूकार पेठ मद्रास नं० १

१०१) श्रीमान् सेठ जंवतमलजी मोहनलालजी चोरड़िया नं० ७
बाजार रोड़ मैलापुर मद्रास

१०१) ,, भाणुजी भगवानदासजी ६४ मिन्ट स्ट्रीट जी०पी०ओ०
बोक्स नम्बर ८८२ साहूकार पेट मद्रास १

१०१) शम्भुमलजी मदनलालजी धंग नं० ८ बाजार रोड़
मैलापुर मद्रास ४

१०१) ,, शम्भुमलजी माणकचन्दजी चोरड़िया नं० १५ बाजार
रोड़ मैलापुर मद्रास ४

१०१) ,, भीकमचन्दजी सुराणा नं० ३३ पी०पी० चां० कोयल
स्ट्रीट मैलापुर मद्रास ४

१०१) ,, एच० सूरजमलजी जैन नं० ६७/१८ उसमान रोड़
टी० नगर मद्रास १७

१०१) ,, गुलाबचन्दजी चीमूलालजी मरलेचा बाजार रोड़
पल्लावरम

१०१) ,, सोलम रोड़ निवासी गणेशमलजी राजमलजी मरलेचा
रेडहिल्स मद्रास

१०१) श्रीमती पम्पाबाई और लाभर बाई की ओर से C/o श्रीमान्
सेठ कुंवरजी पारसमलजी लोढ़ा २६ बाजार रोड़
सेदा पेठ मद्रास १५

१०१) ,, मनीलालजी एण्ड सन्स १७२ नेताजीबोस रोड़ मद्रास १

१०१) श्री सेठ एस० रतनचन्दजी चोरड़िया ५ रामांजियम आयर स्ट्रीट इलीफैन्ड गेट मद्रास १

१०१) " एम० जेवतराजजी खिवसरा नागलापुरम (तालुका) सतोबेड जिला (चितुर)

१०१) " सी० चान्दमलजी टिन्डीवरम

१०१) " गुलाबचन्दजी घीसूलालजी मरलेचा ४६ बाजार रोड़ पल्लावरम

१०१) " दीपचन्दजी पारसमलजी मरलेचा चंगलपेठ

१०१) " बकतावरमलजी मिश्रीमलजी मरलेचा तिरकुलिकुण्डम

१०१) " गनेशमलजी जवन्तराजजी मरलेचा तिरकुलिकुण्डम

१०१) " सुजानमलजी बोहरा की धर्मपत्नी शान्तिकवर के सजोड़े त्याग के उपलक्ष में C/o सेठ सुजानमलजी बोहरा गांव सियाली (जिला) तन्जावर

१०१) " जशराजजी सिंघवी की धर्मपत्नी सायर बाई ने सजोड़े ब्रह्मचर्य व्रत धारन करने के उपलक्ष में C/o सेठ जशराजजी देवराजजी सिंघवी गांव वलवानूर

१०१) " विजयराजजी नेमीचन्दजी बोहरा " "

१०१) " प्रेमराजजी महावीरचन्दजी भडारी " "

१०१) " आईदानजी गोलेछा की धर्मपत्नी गोराबाई ने सजोड़े ब्रह्मचर्यव्रत धारन करने के उपलक्ष में C/o सेठ आईदानजी अमरचन्दजी गोलेछा जवेलर्स विल्लू पुरम

१०१) " चुन्नीलालजी नाहर के सजोड़े शीलव्रत धारन करने के उपलक्ष में C/o चुन्नीलालजी धरमीचन्दजी नाहर गांव अरगडनल्लूर (स्टेशन) तिरकोम्ल्लूर

१०१) श्री सेठ एच० चन्दनमलजी एन्ड को० नम्बर १७ नयनाप्पा नायक स्ट्रीट मद्रास ३

१०१) „ एम धनेचन्दजी धीजराजजी भटेवड़ा नम्बर ४२४ मेन बाजार वेलुर

१०१) „ एन० घेवरचन्दजी सोहनराजजी भटेवड़ा नम्बर ४११ मेन बाजार वेलुर

१०१) „ नेमीचन्दजी ज्ञानचन्दजी गुलेछा नं० ७४ „ „

१००) „ छायालाल मणीलाल शाह (पालनपुर निवासी) C/o जेम्स एन्ड कम्पनी रंगापिल्लाई स्ट्रीट पांडीचेरी

१०१) „ चम्पकलालजी भाई भंसाली (पालनपुर निवासी) C/o चेरी ट्रेडर्स दी त्यागमुदली स्ट्रीट पांडीचेरी

१०१) „ नन्दलालजी फोटिया C/o सेठ निरंजीलालजी नदाचोर- प्रसादजी जैन भरतपुर (राजस्थान)

१०१) श्री S. मनलोकचन्दजी जवरीलालजी नं० ४२ बाजार स्ट्रीट मथुरनटकम जी० (चंगलपेट)

१०१) „ मोतिमलजी भंवरलालजी मुथा नं० ४५ रंगास्वामी टेम्पलस्ट्रीट बेंगलोर सीटी नं० २

१०१) श्रीमती धापीबाई C/o मोतिमलजी चंपालालजी मुथा नं० ४५ रंगास्वामी टेम्पल स्ट्रीट बेंगलोर सीटी नं० २

१०१) श्रीमती प्यारीबाई के १५ दिन के तप के उपलक्ष में भेंट C/o घेवरचन्दजी चम्पालालजी एन्ड को० नं० १५६ मामूलीपेट बेंगलोर सीटी

१०१) श्री सुल्तानमलजी हस्तीमलजी नं० १५ मामूल पेट बेंगलोर सीटी

१०१) श्रीमती कमलाबाई C/o धनेचन्दजी धनराजजी मुथा बड़ा बाजार Po. कोलार (आंध्र प्रदेश)

१०१) श्री हीराचन्दजी नेमीचन्दजी बांटीया
Po. आरकाट (जिला N.A.)
१०१) ,, नन्दरामजी घीसुलालजी लोढ़ा एण्ड ब्रादर्स
नं० २० जेंकरोड़ कोलपेट बैंगलोर नं २
१०१) ,, केसरीमलजी घीसुलालजी कटारिया नं० १२१ A. M. Road चीकपेट करोस बैंगलोर सीटी नं० २
१०१) ,, गणेशमलजी मोतीलालजी कांठडे नं० ५ V. टेनीरी रोड-फरजन रोड बैंगलोर नं० ५
१०१) ,, चम्पालालजी जेतनप्रकाश नं० ६२ नागरपेट
बैंगलोर सीटी नं० २
१०१) ,, L. पुनमचन्दजी जैन खींवसरा नवाशहर वाला बैंगलोर
१०१) ,, बस्तीमलजी जोराजो भुरट पो० अजोत (मारवाड़)
जि० जोधपुर वाला लुनी
१०१) ,, माणकचन्दजी लोढ़ा पारमेर वाला की तरफ से
१००) ,, शेसमलजी माणकचन्दजी ज्वेलरस १६२
बीज बाजार स्ट्रीट आरनी ARNI
१००) ,, बाबूलालजी केशवलालजी शाह (पालनपुर निवासी)
C/o इस्टर्न ट्रेडर्स सेन्ट थरैस स्ट्रीट पांडीचेरी

★ दो शब्द ★

हीरक प्रवचन माला की प्रस्तुत पुस्तक के लिये ये दो शब्द लिखते हुये मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है, क्योंकि यह पुस्तक भारतीय समाज को ऊपर उठाने का एक ऐसा प्रयत्न है जो आजकल सर्वाधिक उपेक्षित है और जिसके बिना अन्य सब प्रयत्न व्यर्थ हो रहे हैं। इस पुस्तक में जिस प्रवचन-एकादशी को प्रस्तुत किया गया है, उससे मानव की आध्यात्मिक एकादशी (दश इन्द्रियां और मन) शुद्ध होकर उस आचारण की सभ्यता को जन्म दे सकती जिसकी आज सबसे अधिक आवश्यकता है। महाराज श्री ने समवायांग आदि सूत्रों का ज्ञान जिस सुन्दर तथा सरल ढंग से रक्खा है उससे जनसाधारण का निःसंदेह बहुत उपकार होगा, क्योंकि इसके द्वारा न केवल साधारण सदाचार की शिक्षा मिलती है, अपितु जैनागम के प्रायः सभी प्रमुख तत्वों का दर्शन अप्रत्यक्ष रूप से हो जाता है।

का प्रभाव तभी पड़ता है जब पाठकों को यह पता न चले कि हमें कोई उपदेश दे रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत प्रवचन, विषय-प्रतिपादन दृष्टि से, तात्त्विक विवेचन तथा कथा-वाचन के उस सुन्दर समन्वय को उपस्थित करते हैं जिससे भारत की ग्रामीण जनता भी सदियों से परिचित होती आई है। परन्तु खेद की बात है कि वर्तमान युग में भौतिक प्रश्नों ने हमें इतना उलझा रक्खा है कि हम आध्यात्मिक तथा धार्मिक कथाओं को उपेक्षित करते जा रहे हैं। आशा है कि प्रस्तुत प्रवचन माला इस अभाव की पूर्ति में सहायक होगी और नैतिक स्तर करने में हमारी जनता का दत्तचित्त करेगी।

ब्यावर
ता० ६-३-६२



फतहसिंह
प्रिंसिपल
सनातन धर्म गवर्नमेन्ट कॉलेज
ब्यावर (राज०)

विषयानुक्रमणिका



नाम विषय	पृष्ठ
नवीसागं	१
पुरुष का प्रेम	२८
भावना का सूक्ष्म सम्पर्क	५६
निर्ममता	८७
कट्टा सहायक पर्व	११६
कुशल व्यापार	१५२
आत्म-विश्वास	१८०
संघर्ष का मूल्य	२०६
मृदुव्यवहार	२३५
कुटुम्ब पद्धति	२६६

॥ ओम् अर्हम् नमः ॥

तपोमार्ग



प्रार्थना -

> यस्य प्रौढतमप्रतापतपनः प्रोद्दामधामा जग-
> ज्जङ्घालः कलिकालकेलिदलनो मोहान्धविध्वंसकः।
> नित्योद्योतपदं समस्तकमलाकेलिगृहं राजते,
> स श्रीपार्श्वजिनो जने हितकरश्चिन्तामणिः पातु माम् ॥

卐卐

यहाँ बतलाया गया है कि भगवान् श्रीपार्श्वनाथ का प्रताप [illegible] सूर्य [illegible] और है—प्रकाशमान है। समस्त लोक में वह [illegible] है। इस कलिकाल की क्रीड़ा को नष्ट करने वाला और मोह के अन्धकार को विध्वंस करने वाला है। भगवान के निवास करने [illegible] में [illegible] हमेशा प्रकाश रहता है और इसी [illegible], समस्त [illegible] का [illegible] सदैव [illegible] रहता ही रहता है। यह [illegible] प्रकार की [illegible] और [illegible] [illegible] है, अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथ की सेवा [illegible] [illegible] हो जाती

है। उससे सब प्राणियों का हितसाधन होता है। वह चिन्तामणि के समान समस्त मनोवांछित कार्यों का साधक है। जिनका प्रताप ऐसी असाधारण महिमा वाला है, वह श्रीपार्श्वनाथ भगवान् सदैव मेरी रक्षा करें।

भाइयो! यह संसारी जीव मोह के महान् अन्धकार में भटक रहा है। जिसके कानों में भगवान् तीर्थङ्करों की वाणी पड़ जाती है, उसका मोहन्धकार नष्ट हो सकता है। वही आत्मा पाप के कलंक से बचता है। भगवान् की क्षायिक चेतना नित्योद्योतमयी है। कभी किसी भी काल में उसका अन्त होने वाला नहीं है। भगवान् का चिन्तन-स्मरण करने से भक्त जीवों को, क्या लौकिक और क्या लोकोत्तर, सभी प्रकार की लक्ष्मी प्राप्त होती है। उसके लिए न इस लोक में किसी वस्तु की कमी रह जाती है और न परलोक में। उसी को अनन्त आत्मिक सम्पदा भी मिलती है।

भगवान् पार्श्वनाथ समस्त जगत् जीवों का सच्चा कल्याण करने वाले हैं। 'नमोत्थुणं' के पाठ में भगवान् को 'लोगहियाणं' कहा गया है, जिसका अर्थ है तीनों लोकों का हित करने वाले। ऐसे चिन्तामणि के समान भगवान् जिसके अन्तःकरण में विद्यमान रहते हैं, उसे किसी भी पदार्थ की कमी नहीं रहती।

इस प्रकार भगवान् की स्तुति करने के पश्चात् स्तुतिकार ने यह भावना व्यक्त की है कि वे मेरी रक्षा करें। वास्तव में यह

आत्मा काम, क्रोध, मद, मोह आदि लुटेरों द्वारा लूटी जा रही है। यह शत्रु इसे अनादि काल से लगा रहे हैं। आत्मा के यह शत्रु अत्यन्त बलवान और प्रभावशाली हैं। इनसे हमारी रक्षा वही कर सकता है जो इनकी अपेक्षा भी अधिक शक्तिशाली हो। ऐसे शक्तिशाली महापुरुष भगवान ही हैं, जिन्होंने इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है। अतएव उन्हीं से रक्षा की याचना की जा सकती है।

भाइयो! जिसे अपने आप पर भरोसा है, वही परमात्मा पर भरोसा कर सकता है। भौतिक पदार्थों से हार खा जाओ परन्तु आत्मबल से हार नहीं खा सकते। आत्मबल प्रत्येक आत्मा की स्वाभाविक सम्पत्ति है। इसे कहीं से उधार कर नहीं लाया जा सकता। केवल यही करना है कि छिपी हुई उस शक्ति को प्रकाश में लाया जाय। जब यह शक्ति अपने पूर्ण विकसित रूप में आ जाती है, तब आत्मा ही परमात्मा बन जाता है। यह सब आत्मबल का फल है। अतएव भगवान् [illegible] करो। आपका कल्याण होगा।

[illegible] :-

[illegible]

प्रस्तुत किया जा रहा है। कल छह प्रकार की लेश्याओं का विवेचन किया गया था। आगे बतलाया गया है कि संसारी जीवों के छह वर्ग हैं, जिन्हें षट्काय के नाम से आप जानते होंगे, वे इस प्रकार हैं-(१) पृथ्वीकाय (२) अप्काय (३) तेजस्काय (४) वायुकाय (५) वनस्पतिकाय और (६) त्रसकाय।

पृथ्वी ही जिनका शरीर है ऐसे जीव पृथ्वीकाय कहलाते हैं। सचित्त पृथ्वी के भेद से तथा अन्य प्रकार से पृथ्वीकाय के जीव अनेक प्रकार के हैं।

पानी ही जिनका शरीर है वे अप्काय के जीव हैं। यह जीव भी अनेक प्रकार के हैं। अग्नि ही जिनका शरीर है वे जीव अग्निकाय कहलाते हैं। वायु को ही शरीर बनाकर रहे हुए जीव वायुकाय कहलाते हैं इसी प्रकार वृक्ष, लता, गुच्छ, गुल्म आदि वनस्पति को ही शरीर बनाकर रहने वाले जीव वनस्पतिकाय के जीव हैं।

यह पांच प्रकार के जीव स्थावर हैं, इनके सिर्फ एक स्पर्शेन्द्रिय ही पाई जाती है, इन सभी में सूक्ष्म और बादर के भेद से दो-दो भेद होते हैं, परन्तु वनस्पतिकाय में प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर के भेद से दो भेद अधिक हैं, जिस वनस्पति के एक शरीर में एक ही जीव होता है वह प्रत्येक शरीर कहलाती है और जिसके एक ही शरीर में अनन्त जीव पाये जाते हैं वह साधारण वनस्पति है, जैसे कदमूल आदि।

[illegible] है, [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] हैं, क्योंकि वे [illegible] से [illegible] के लिए [illegible] कर सकते हैं, इन [illegible] [illegible] में [illegible] संसारी जीवों का समावेश हो जाता है।

इसके [illegible] [illegible] [illegible] हैं—[illegible] [illegible] [illegible] का है, [illegible] [illegible] में [illegible] है और जिसे अन्य लोग [illegible] करते हैं, वह [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] का [illegible] है, इसके यह भेद निम्न लिखे हैं—

(१) [illegible] [illegible] करना, यह [illegible] अर्थात् [illegible] भी होता है और [illegible] भी होता है। [illegible] [illegible] भी हो सकता है और [illegible] का भी, इसमें [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि सम्मिलित हैं।

(३) भिक्षाचर्या—नाना प्रकार के अभिग्रह करना, वस्तुओं की मर्यादा करना आदि। साधु गृहस्थों के घर जाता है और उसके यहां अनेक खाद्य पदार्थ होते हैं, परन्तु उनमें से जो संयम में उपकारक हो, वही थोड़ा-थोड़ा लेना चाहिए। श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र में छब्बीसवें अध्ययन में छह प्रकार की भिक्षा बतलाई गई है। यह तप भी बाह्य द्रव्यसापेक्ष होने से बाह्य तप कहलाता है।

(४) रसपरित्याग-भोजन में अनेक रसों का समावेश होता है। उनमें से रसेन्द्रियसंयम के उद्देश्य से अमुक रसों का परित्याग कर देना रसपरित्याग हैं। घी, दूध, दही, शक्कर, गुड़ तेल आदि विगयों का इच्छानुसार त्याग करना इसी तप में सम्मिलित है। मुनिजन नाना प्रकार से रसों का परित्याग करते हैं। जैसे—कोई ऊपर से घी देगा तो नहीं लेंगे, चावलों में घी डला हुआ होगा तो लेने का त्याग नहीं है।

(५) कायक्लेश-काया को कष्ट पहुँचाना। शीतकाल में शीत की आतापना, उष्णकाल में गर्मी की आतापना लेना, केशों का लोचन करना, डांस मच्छर आदि शरीर पर बैठ जाएं और दंश दे तो भी उन्हें न उड़ाना, आदि-आदि कायक्लेश में सम्मिलित है। कर्मों की निर्जरा के उद्देश्य से सन्त जन स्वेच्छापूर्वक इन कष्टों को सहन करते हैं। दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

एगं पिसायं दुम्मेहं, गोउमाई व्वरई सबं ।
साहियाणं तम्बाहिओ, देहहूणं महा फलं ॥

दशवैकालिक, गाथा ३७

भावार्थ- साधु को शुद्ध आहार ग्रहण करना चाहिए। इसमें भी अचित्त-शुद्ध आहार न मिले कहीं भी नहीं ग्रहण करना होवे, आधाकर्म दोष न मिलने चाहिए, साधुओं के अतिरिक्त आहार हो या किसी कारण से भय उपस्थित हो, कोई भी परिषह उपस्थित हो तब भी साधु अशुद्ध न करना, शुद्ध ग्रहण के साथ ग्रहण करे। साधु को समझना चाहिए कि ये देह को धर्म साधना के निमित्त से पुष्ट, महाफल की प्राप्ति होगी।

(३) भिक्षाचर्या-नाना प्रकार के अभिग्रह करना, वस्तुओं की मर्यादा करना आदि। साधु गृहस्थों के घर जाता है और उसके यहां अनेक खाद्य पदार्थ होते हैं, परन्तु उनमें से जो संयम में उपकारक हो, वही थोड़ा-थोड़ा लेना चाहिए। श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र में छब्बीसवें अध्ययन में छह प्रकार की भिक्षा बतलाई गई है। यह तप भी बाह्य द्रव्यसापेक्ष होने से बाह्य तप कहलाता है।

(४) रसपरित्याग-भोजन में अनेक रसों का समावेश होता है। उनमें से रसेन्द्रियसंयम के उद्देश्य से अमुक रसों का परित्याग कर देना रसपरित्याग हैं। घी, दूध, दही, शक्कर, गुड़ तेल आदि विगयों का इच्छानुसार त्याग करना इसी तप में सम्मिलित है। मुनिजन नाना प्रकार से रसों का परित्याग करते हैं। जैसे-कोई ऊपर से घी देगा तो नहीं लेंगे, चावलों में घी डला हुआ होगा तो लेने का त्याग नहीं है।

(५) कायक्लेश-काया को कष्ट पहुँचाना। शीतकाल में शीत की आतापना, उष्णकाल में गर्मी की आतापना लेना, केशों का लोचन करना, डांस मच्छर आदि शरीर पर बैठ जाएं और दंश दे तो भी उन्हें न उड़ाना, आदि-आदि कायक्लेश में सम्मिलित है। कर्मों की निर्जरा के उद्देश्य से सन्त जन स्वेच्छापूर्वक इन कष्टों को सहन करते हैं। दशवैकालिक सूत्र में कहा है-

खुहं पिवासं दुस्सेज्जं, सीउण्हं अरई भयं ।
अहियासे अव्वहिओ, देहदुक्खं महा फलं ॥

दश०अ०८,गा० २७०

अर्थात्–साधु को भूख-प्यास सहन करना चाहिए। ठहरने को सुविधाजनक उपाश्रय न मिले, सर्दी या गर्मी सहन करना पड़े, वातावरण ठीक न मिलने आदि कारणों से अरति-अरुचि उत्पन्न हो या किसी कारण से भय प्रतीत हो, कोई भी परीषह उपस्थित हो जाय तो व्यथा अनुभव न करता हुआ साहस के साथ सहन करे। साधु को समझना चाहिए कि मैं देह को कष्ट दूंगा तो भविष्य में मुझे महा फल की प्राप्ति होगी।

गृहस्थ लोग धनोपार्जन के लिए शरीर को कितना कष्ट देते हैं ? फिर भी कदाचित् धन प्राप्त होता है, कदाचित् नहीं। देहातों में कई जगह साप्ताहिक हाट लगते हैं। वहां दुकानदार दिन भर धूप में बैठे तपते हैं। कोई इधर-उधर मारे २ फिरते हैं, दिन रात जागरण करते हैं, भूख प्यास सहते हैं, दासता स्वीकार करते हैं, और अवसर आने पर गालियां भी बर्दाश्त कर लेते हैं।

तो जब इस अल्पकालीन जीवन के लिए भी विविध प्रकार के कष्ट सहन करने पड़ते हैं तो भविष्य को सुखमय बनाने के लिए, अनन्त कल्याण की प्राप्ति के लिए कष्ट क्यों नहीं सहन करना चाहिए ?

संसारी और साधक के कष्ट सहन के उद्देश्य में एक बड़ा अन्तर है। संसारी जीव इसी जीवन को सुखी बनाने की आशा से अर्थात् भोगोपयोग की सामग्री प्राप्त करने की अभिलाषा से कष्ट सहन करते हैं जब कि साधक के कष्ट सहन का उद्देश्य न इस लोक से सुख प्राप्त करना है, न परलोक के, वह केवल आत्म-शुद्धि के लिए, आवरणों के निराकरण के लिए या कर्मक्षय के लिए ही कष्ट सहन करता है।

(६) प्रतिसंलेखना-चार प्रकार के कषायों को पतला करना अर्थात् कषाय के निमित्त मिलने पर भी कषाय न करना। जो साधक कषायों को पतला कर डालता है वह दूसरों द्वारा दी हुई गालियों को भी मौन भाव से सह लेता है। उसके विषय में लोग कहते हैं-देखो, इनकी क्षमा शीलता? इतनी गालियां सहन करने पर भी एक बोल नहीं निकाला? तो यह तपस्या भी बाह्य तप में परिगणित है।

इस प्रकार छह तरह के बाह्य तप हैं। साधु जनों को इनका आचरण करना चाहिए। गृहस्थों को भी शक्ति के अनुसार तपस्या करनी चाहिए और साधक जीवन के लिए तैयारी करनी चाहिए।

शास्त्रों में तपस्या के संबंध में विस्तृत विवेचन किया गया है। वह इसी उध्येश्य से कि साधक उसे समझ कर जीवन में

व्यवहृत करे। आत्मा निश्चय से तो शुद्ध है परन्तु व्यवहारतः कर्मों के कारण मलीन हो रही है। स्वर्ण अपने आप में शुद्ध है तथापि मिट्टी आदि के सम्मिश्रण के कारण मलीन कहलाता है। वह मलीन स्वर्ण जब स्वर्णकार के पास जाएगा और वह उसे आग में डाल कर तपाएगा तो निर्मल शुद्ध हो जाएगा। अपने असली रूप को प्राप्त कर लेगा।

इसी प्रकार स्व-स्वरूप से आत्मा भी शुद्ध बुद्ध है, तथापि कर्म मैल से मलीन बनी हुई है। तपस्या की अग्नि में पड़ने के बाद वह शुद्ध हो कर अपने असली स्वरूप में आ जाती है।

छह आभ्यन्तर तप हैं, जिनमें पहला प्रायश्चित्त है। अपने दोषों को आचार्य, उपाध्याय, स्थविर या अपने से बड़े साधु के समक्ष प्रकट कर देना, उनके लिए पश्चात्ताप करना और वे जो दंड दें उसे स्वीकार करके अमल में लाना प्रायश्चित्त तप कहलाता है।

भाइयों! साधक का प्रयत्न तो यही होना चाहिए कि कोई पाप न होने पावे, तथापि प्रमादवश हो जाय तो उसे छिपाना नहीं चाहिए; बल्कि बड़े के सामने निष्कपट भाव से प्रकट कर देना चाहिए। भूल-चूक से भी हुआ दोष, साधक के चित्त में कांटे की तरह खटकता रहता है और जब तक वह प्रायश्चित्त नहीं कर लेता, तब तक उसे शान्ति नहीं मिलती।

प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि कर लेने पर ही उसे शान्ति मिलती है। परन्तु जिसे आत्मा का खटका नहीं है, वह पाप करके उसे ढंकना चाहता है। जिसे आत्मशुद्धि के बदले प्रतिष्ठा का ही मोह होता है; वह कृत दुष्कृत्य को छिपाने का प्रयत्न करता है। पूछने पर भी आढ़ा-टेढ़ा बोलता है, सरलता से नहीं बोलता। व्यवहारसूत्र में बतलाया है कि कोई साधक आलोचना करने जाए और गुरु के सामने दगाबाजी करे और छोटे पाप को तो प्रकट कर दे मगर बड़े पाप को प्रकट न करे तो ऐसी चाल चलने वाले को दुगुना दंड देना चाहिए। अपने दोषों और पापों को निष्कपट रूप से स्पष्टतया प्रकट कर देना ही प्रायश्चित्त तप है।

दूसरा आभ्यन्तर तप विनय है। गुरुजन के प्रति आदर और नम्रता का भाव होना और तदनुसार ही व्यवहार करना विनय है। विनय चार प्रकार का है—ज्ञान विनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचार विनय। उपचार विनय का अर्थ है—जब गुरुजन आएँ तो उन्हें कहना-आइए, पधारिए, विराजिए, मेरे योग्य सेवा फरमाइए। खड़े होकर उनका सत्कार करना, यथोचित वन्दनादि करना, उच्च आसन प्रदान करना, इत्यादि। मान कषाय के हटने पर विनम्रता आती है। अतएव इस तप की आराधना के लिए मान का त्याग करना चाहिए।

तीसरा आभ्यन्तर तप वैयावृत्य है, अर्थात् सेवा करना। सेव्य दस प्रकार के होने से वैयावृत्य के भी दस भेद होते हैं।

सेव्य दस यह हैं-आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, नवदीक्षित, ग्लान (बीमार), गण, कुल, संघ, साधु और समनोज्ञ।

प्रश्न हो सकता है कि जब साधु-साधु समान हैं तो फिर आचार्य उपाध्याय आदि पदवीधारियों की सेवा किस प्रकार की जाय? इसका उत्तर यही है कि उन्हें आहार-पानी आदि जिस वस्तु की आवश्यकता हो तो उसकी सुविधा कर देना, साताकारी मकान की तलाश कर देना, राजा रूठ गया हो तो उसे अनुकूल बना देना, अटवी में फँस गए हों तो उससे निकाल देना आदि कार्य सेवा के हैं।

लोकव्यवहार में भी सेवा इसी ढङ्ग से की जाती है, किसी वृद्ध के बलगम आता है तो आप उसके सामने मिट्टी से भरकर पात्र रख देते हैं और उसमें थूकने के लिए कह देते हैं। समय पर भोजन करा देते हैं वस्त्रों की सफाई कर देते हैं। यही सब सेवा के अन्तर्गत है। आशय यह है कि हर प्रकार की सुख-सुविधा कर देना और किसी प्रकार का कष्ट न होने देना जैसे लोक-व्यवहार में सेवा कहलाता है, उसी प्रकार श्रमणसंघ में भी।

सेवा का नाम लेना तो सरल है मगर सच्चे दिल से सेवा करना कठिन होता है। नीतिकार कहते हैं—

सेवाधर्मः परमगहनो, योगिनामप्यगम्यः।

अर्थात्-सेवा धर्म इतना गंभीर है कि उसके स्वरूप को

योगी भी पूरी तरह समझ नहीं पाते तो करने की तो बात ही दूर की है।

किन्तु जीवन उसी का धन्य होता है जो दूसरों की सेवा के लिए अपनी समग्र शक्तियां समर्पित कर देता है अपना पेट तो गलियों में भटकने वाला कुत्ता भी भर लेता है। इसमें मनुष्य की कोई विशेषता नहीं है।

सेवा का क्षेत्र भी बहुत विशाल है। परिवार से लगाकर समग्र विश्व उसके दायरे में आ जाता है। आत्मा की भी सेवा होती है और परमात्मा की भी होती है। आत्मा और परमात्मा की सेवा अहिंसा आदि व्रतों के परिपालन में है, जो लोग सेवा के मर्म को समझकर प्रीतिपूर्वक सेवा करते हैं, उनका जीवन सार्थक होता है।

चौथा आभ्यन्तर तप स्वाध्याय है। दूसरी २ बातों का अध्ययन करने वाले तो बहुत हैं परन्तु अपना अध्याय या अध्ययन करने वाले विरले ही हैं, मैं कौन हूँ ? कहां से आया हूँ ? क्या कर रहा हूँ ? क्या करना चाहिए ? कहां जाऊँगा ? इत्यादि आत्मविषयक प्रश्नों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करना स्वाध्याय है, इस काल में यहां केवली भगवान् विद्यमान नहीं हैं, पूर्वों के ज्ञाता मुनिराज भी नहीं हैं, तथापि उनकी वाणी आज भी शास्त्रों में सुरक्षित है। उसका अध्ययन, मनन, चिन्तन करके ही लाभ उठाना चाहिए।

स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है, अज्ञान दूर होता है और कर्मों की निर्जरा होती है। स्वाध्याय चित्त की शान्ति और एकाग्रता का सबल साधन है, जब स्वाध्याय में चित्त तल्लीन हो जाता है तो अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है।

स्वाध्याय पांच प्रकार का है-वाचना पृच्छना, अनुप्रेक्षा, परावर्त्तना और धर्मोपदेश, जिनवाणी का पठन करना वाचना है। किसी विषय में संदेह होने पर विशिष्ट जानकार से पूछना पृच्छना है। पठित विषय पर पुनः पुनः विचार करना अनुप्रेक्षा है, बार-बार आवृत्ति करना परावर्त्तना है और दूसरों के समझाना धर्मोपदेश है।

आज समाज में धर्मतत्व संबंधी अज्ञता फैली हुई है, लोग अखबारों द्वारा इधर-उधर की बातें तो बहुत जान लेते हैं मगर शास्त्रीय विषयों को जानकारी नहीं करते इस कारण उनका शास्त्रीय ज्ञान नहीं जैसा ही देखा जाता है। आज स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ाने की आवश्यकता है, यह देश बहुत बड़ा है और साधु-सन्तों की संख्या परिमित है। उनमें भी सभी प्रकार के साधु हैं। अतएव उन पर निर्भर न रह कर आपको प्रतिदिन स्वयं स्वाध्याय करना चाहिए और अपने ज्ञान की वृद्धि करके उसे आत्मकल्याण में लगाना चाहिए।

आपमें से कई प्रतिदिन सामायिक करते हैं और कुछ गायन-

भजन बोलकर ही सन्तोष कर लेते हैं और समझ लेते हैं कि हमने स्वाध्याय कर लिया, मगर आगे बढ़ने की कोशिश नहीं करते। भगवान् तीर्थङ्करों की वाणी के रहस्य को जानने का प्रयत्न नहीं करते, तो वहीं के वहीं ठप्प हो गए, आगे कदम नहीं बढ़ा सके।

कुछ समय पहले तक स्वाध्याय की इतनी सुविधा नहीं थी; परन्तु आज तो शास्त्रों के भी बोल चाल की भाषा में अनुवाद हो चुके हैं। वह प्रचुरता से उपलब्ध भी हैं अगर आपके मनमें उत्कंठा हो और धर्मतत्त्व संबंधी जिज्ञासा हो तो सहज ही स्वाध्याय के साधन उपलब्ध हो सकते हैं। स्व० जैनदिवाकरजी म० द्वारा संग्रहीत निर्ग्रन्थ प्रवचन जैसे ग्रन्थ भी मौजूद हैं, जिनमें विभिन्न शास्त्रों का सार निचोड़ कर रख दिया है इसी प्रकार के अन्य ग्रंथ भी मुद्रित हुए हैं। ऐसे ग्रन्थों से भी आप चाहें तो लाभ उठा सकते हैं। आशय यह है कि तीर्थंकर भगवान के उपदेश को समझने का प्रयत्न आपको अवश्य करना चाहिए और वह स्वाध्याय के द्वारा ही हो सकता है।

छठा अन्तरंग तप ध्यान है। 'ध्यायते इति ध्यानम्।' अर्थात् एकाग्र चित्त से मनन करना ध्यान है। इधर-उधर भटकती हुई चित्तवृत्ति को किसी एक विषय पर केन्द्रित कर लेना ध्यान है ध्यान चार प्रकार का है- आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान

ध्यान का यह स्वरूप छद्मस्थ अवस्था की अपेक्षा से है। केवली-अवस्था में जो ध्यान होता है, उसके स्वरूप में भेद है। वहां योगों का निरोध ही ध्यान कहलाता है। चारों ध्यानों के संबंध में चौथे समवाय के प्रकरण में किंचित् कहा जा चुका है। यहां यही समझ लेना चाहिए कि मन का तप कोई साधारण तप नहीं है। वचन और काय संबंधी तप तो दूसरों को नजर भी आ सकता है मगर मानसिक तप नजर नहीं आता। मन है अत्यन्त सूक्ष्म और चपल। उस पर काबू पाना भी सरल नहीं होता। फिर भी उसे एकाग्र करने का प्रयत्न करना चाहिए। अभ्यास करते रहने से वह एकाग्र हो सकता है।

भगवतीसूत्र में एक उल्लेख आता है। भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण लगा हुआ था। गौतम स्वामी भगवान् के निकट ही विराजमान थे। उस समय महाशुक नामक देवलोक के दो देव भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए और चुपचाप समवसरण में बैठ गए।

देवों ने मुख से कुछ भी नहीं कहा परन्तु मन से प्रश्न किया-भगवन् ! आपके शिष्य जो मुनिराज हैं उनमें से कितने मोक्ष में जाने वाले हैं ?

भगवान् ने देवों के मानसिक प्रश्न का मन से ही उत्तर दे दिया। देव समाधान पाकर और भगवान् को नमस्कार करके चले गए।

गौतम स्वामी कुछ समझ नहीं सके। तब उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रश्न किया-प्रभो! वे देवता चुपचाप सभा में आए और बिना कुछ बोले उठ कर चले गए। इसका क्या कारण है?

भगवान् ने कहा—आयुष्मन्! वे देव सातवें स्वर्ग से आए थे। उन्होंने मन के द्वारा ही मुझसे प्रश्न किया कि आपके मुनि-शिष्यों में से कितने मोक्षगामी हैं? और मैंने मन से ही उन्हें उत्तर दे दिया कि सात सौ मुनि मोक्षगामी हैं। इस प्रकार जब उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया तो वे नमस्कार करके चले गये।

भाइयो! ध्यान के द्वारा ही मानसिक शक्ति प्राप्त होती है। अतएव मन को सबल बनाने के लिए ध्यान का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

छठा तप कायोत्सर्ग है। काय संबंधी व्यापार का निरोध करना और कायिक ममता का त्याग करना कायोत्सर्ग कहलाता है। कायोत्सर्ग में कहा जाता है—'ऊससिएणं; नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जभाइएणं उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं; सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं।' अर्थात (१) उच्छ्वास लेने से (२) निश्वास लेने से (३) खांसी आने से (४) छींक आने से (५) जंभाई आने से (६) डकार आने से (७) अधोवायु निकलने से

(८) चक्कर आने से (९) गर्मी से मूर्च्छा आ जाने से (१०) सूक्ष्म रूप से अंग के चलायमान होने पर (११) बलगम के आने से और (१२) थोड़ी-बहुत दृष्टि के चलायमान होने से काय का हलन-चलन हो तो उसकी छूट है। कायोत्सर्ग के यह बारह आगार माने गए हैं। इनके अतिरिक्त चार आगार और भी हैं। जैसे—कोई सर्प आ रहा हो और वह ऊपर ही आने वाला हो, दीवार गिरने वाली हो, अग्नि का भय उपस्थित हो या किसी जीव की प्राणरक्षा के लिए आना जाना पड़े तो आगार है।

'कायोत्सर्ग' शब्द का अर्थ है—अमुक समय के लिए काय का त्याग करना। फिर उस समय यदि देवता, मनुष्य या पशु आकर सताए तो भी डिगना नहीं। उस समय यही विचार करना चाहिए कि यह उपसर्ग शरीर पर असर कर सकता है और मैं शरीर नहीं हूं। मैं आत्मा हूँ जिसका कदापि नाश नहीं हो सकता। रहा शरीर, सो इसका वियोग तो अवश्यभावी है। आज नहीं तो कल अलग हो जाएगा।

देखो, गजसुकुमार मुनि के मस्तक पर उनके संसारपक्ष के श्वसुर सोमिल ब्राह्मण ने मिट्टी की पाल बांध कर धधकते हुए अंगार भर दिए। आप कल्पना कर सकते हैं कि यह कितनी दारुण वेदना का कारण था। फिर भी मुनिवर ध्यान में ही मग्न रहे। उन्होंने उस ओर ध्यान ही नहीं जाने दिया। यही सोचा कि मैं अजर अमर अविनाशी हूं। शरीर के जलने से मैं नहीं

जल सकता। शरीर के नष्ट होने से मेरा नाश नहीं हो सकता। इस प्रकार शुद्ध आत्मध्यान से उन्हें तत्काल केवल-ज्ञान-दर्शन की प्राप्ती हुई और मोक्ष भी प्राप्त हो गया।

इस प्रकार छह बाह्य और छह आभ्यन्तर-कुल बारह तपों की आराधना करने से कर्मों की निर्जरा होती है। तपस्या कर्म-निर्जरा का प्रधान साधन है। तपस्या में अचिन्त्य प्रभाव है। यही कारण है कि बड़े बड़े राजाओं, सम्राटों और चक्रवर्त्तियों ने भी संसार के विलास और वैभव को त्याग कर तपस्या की शरण ली थी। उनके लोकोत्तर चरित और वृत्तान्त को सुन कर हमारा अभिमान चूर-चूर हो जाता है और विचार आता है—हाय, हम अन्न के कीड़े हैं। हम उनका क्या मुकाबिला कर सकते हैं।

भाइयो! तप के अपरिसीम माहात्म्य को समझो और यथाशक्ति निरभिमानभाव से तपस्या करो। तपस्या करने से आपकी आत्मा शुद्ध होगी और आपमें अलौकिक तेजस्विता प्रस्फुटित हो जाएगी।

अमरसेन-वीरसेन चरित—

यही बात अमरसेन-वीरसेन के चरित के द्वारा आपको स्पष्ट कर रहा हूं।

किस प्रकार राजकुमारों की प्राणरक्षा हुई और किस प्रकार

वे एक दूसरे को सान्त्वना देते हुए, लक्ष्यहीन, आगे बढ़ने लगे यह बतलाया जा चुका है। चलते-चलते जब सन्ध्याकाल सन्निकट आ गया तो छोटे भाई ने कहा—भाई साहब! मैं बुरी तरह क्लान्त हो गया हूं। अब मुझसे आगे नहीं चला जा सकता।

भाइयो! कुमार राजमहल में जन्मे, राजा-रानी की गोद में उनका पालन-पोषण हुआ, वैभव और विलास के वातावरण में उन्होंने सांसें ली, सोने के पालने में झूले, धरती पर पांव नहीं रक्खा। चले तो सवारी पर चले। परन्तु आज सवारी कहां है? भूख से पेट जल रहा है, चलने से पैर अकड़ गए हैं। कितना परिवर्त्तन।

बड़े भाई ने छोटे भाई की बात सुनी और उसके नेत्र गीले हो गए। उसने आगे दृष्टि दौड़ाई और कहा—देखो भाई, सामने आम का पेड़ दिखाई दे रहा है। वहां चल कर छाया में विश्राम करेंगे।

आम के पेड़ के पास पहुँच कर दोनों ने विश्राम लिया। रात्रि में भी वहीं ठहरे। वह सोचने लगे—जीवन कितना परिवर्त्तनशील है। इस जगत् में राजा को रंक और रंक को राजा होते क्या देर लगती है? कल राजमहल में सुख से सोए थे और आज यह बीहड़ जंगल है, जहां बिछाने को टाट तक नसीब नहीं है। हम दो के सिवाय तीसरा कोई मनुष्य नहीं है।

मगर चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं होगा। सुख के दिन बीत गए तो दुःख के दिन भी बिना बीते नहीं रहेंगे। पिछले जीवन का स्मरण करने से मनोवेदना बढ़ेगी ही, अतएव उसे स्मरण न करना ही योग्य है। हां यह ध्यान रखना होगा कि यह जंगल निर्जन है और रात्रि का समय है। आसपास में जंगली जानवर हो सकते हैं और वे हमारे ऊपर हमला भी कर सकते हैं। अत-एव बारी-बारी से सोना और जागना चाहिए। ऐसा करने से बिना किसी खतरे के रात्रि व्यतीत हो जाएगी। सुबह आगे चल पड़ेंगे।

इस प्रकार निश्चय करके पहले बड़ा भाई सो गया और छोटा जागता हुआ पहरा देने लगा। लगभग एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो जाने पर छोटे भाई ने बड़े भाई को जगाया। उसके जागने पर छोटा भाई सो गया।

अब बड़ा भाई वीरसेन जाग रहा था। आप जानते हैं कि मनुष्य को जब काम नहीं होता तो उसके दिल में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न होते रहते हैं। जो किसी काम में संलग्न होता है, वह दूसरी बातों को भूल जाता है।

वीरसेन के खाली दिमाग में ताजा घटित घटनाएं चित्र-पट की भांति घूमने लगीं। वह सोचने लगा-पिताजी ने कभी तक नहीं किया और सदैव असीम दुलार करते रहे, फिर

क्या कारण हो गया कि अकस्मात् ही वह इतने निठुर बन गये। बिना किसी अपराध के हम दोनों भाइयों के वध का आदेश दे दिया। आदेश देने से पहले उन्होंने कुछ सोचा नहीं होगा? अपने कलेजे के टुकड़ों को काट फैंकते उन्हें झिझक नहीं आई? हमें सामने बुलाकर कुछ कहा नहीं-सफाई देने का अवसर ही नहीं दिया। उन्हें हमारी बात तो सुन लेनी चाहिए थी। बेचारे चाण्डाल भले थे कि उनके दिल में दया उपज गई और हमारे प्राण बच गए। अन्यथा हम दोनों के यमलोक में पहुँचने में क्या कसर रह गई थी?

फिर सोचा-मगर इन सब बातों का विचार करना अब निरर्थक है। क्योंकि—

गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वांछे नाहिं।
वर्त्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग मांहिं॥

ज्ञानी पुरुष वही है जो गई-गुजरी बातों का विचार करके दुखी नहीं होता और भविष्य के लिए भी चिन्तातुर नहीं होता वह वर्त्तमान के अनुसार सदा वर्त्ताव करता है, अर्थात् वर्त्तमान परिस्थिति में जो साधन प्राप्त हैं, उनका सदुपयोग करता है, जिससे भविष्य का निर्माण होता है।

ऐसा सोच कर वह वर्त्तमान पर ही विचार करने लगा। दिल में सवाल पैदा हुआ-प्रभात होते ही हम कहां जाएँगे? हम

अपरिचितों को कौन अपने यहां ठहरने देगा ? हाय, कौन है हमारा मीत इस विराट् विश्व में, जो हमें थका-मांदा और भूखा-प्यासा देख कर विश्राम करने और खाने-पीने की दावत दे ?

यह सोचते-सोचते उसका दिल भर आया। उसे अपने से अधिक चिन्ता अपने भाई की थी।

भाइयो ! प्रथम तो पुण्यवान् को चिन्ता करने का प्रसंग ही नहीं आता, कदाचित् आ जाय तो वह लम्बे समय तक ठहरती नहीं है। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, दान दिया है, अच्छी भावना भाई है, उसे चिन्ता क्यों होनी चाहिए ?

मगर पुण्य-विपाक के साथ कभी पाप का उदय आ जाता है तो दुःख भी भोगना पड़ता है। फिर भी अगर पुण्य का पलड़ा भारी हो तो उस दुःख का कोई उपाय निकल आता है और वह दूर हो जाता है।

भाइयो ! किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके एक ही लड़का था, मगर वह पुण्यशाली था। पन्द्रह-बीस वर्ष की आयु तक उसका कभी सिर भी नहीं दुखा। लड़का अपनी दुकान पर बैठा हुआ सोचा करता—दुनिया के कितने ही लोग मेरी दुकान पर आकर बैठते हैं। कोई कान का दर्द बतलाता है, कोई सिर-दर्द का रोना रोता है तो कोई पेट की कहानी सुनाता है। मगर मुझे तो अपनी जिंदगी में किसी भी बीमारी का मुँह नहीं

देखना पड़ा। देखना चाहिए कि रोग की पीड़ा का स्वाद कैसा होता है ?

लड़के ने मुनीम से कहा-मुनीमजी, ऐसा कोई उपाय बताओ कि मुझे भी कोई दुःख उत्पन्न हो।

मैं आपसे पूछ लूं कि क्या आपमें से भी किसी की इच्छा दुःख प्राप्त करने की है ? मेरा खयाल है, आपमें से कोई भी दुखी नहीं होना चाहेगा, आप सब यही कहेंगे-दुःख की बात ही मत कीजिए। आप तो सुख की बात कहिए।

तो मुनीम ने सेठ के लड़के से कहा-कुंवर साहब ! आपको दुःख देखने की लालसा क्यों हुई ! आप तो पुण्य लेकर आए हैं, अतएव सुख ही भोगिए।

लड़का बोला-देखो मुनीमजी, आप तनख्वाह पाते हैं तो आपको मेरी आज्ञा माननी ही पड़ेगी, मुझे दुःख पाने का उपाय बताना ही होगा।

विवश हो मुनीमजी ने कहा-अवसर आने पर ही सब काम होते हैं। अवसर आएगा तो दुःख का उपाय बता दूंगा। आप निश्चिन्त रहिए।

कुछ दिन बाद दशहरा आया और राजा की सवारी निकली, नगर के हजारों नर-नारी सवारी का दृश्य देखने के

लिए उमड़ पड़े. सेठ का लड़का और मुनीमजी अपनी दुकान से ही सवारी देख रहे थे। अचानक मुनीम को लड़के की वह बात याद आ गई। उसने कहा-कुंवर साहब! क्या सचमुच ही आपकी इच्छा दुःख का स्वाद लेने की है?

लड़के ने कहा-क्या झूठ कहता हूं। मैं सचमुच दुःख देखना चाहता हूँ।

मुनीम बोला—देखना, फिर मुझे दोष मत देना।

लड़का-नहीं जी, अभिलषित वस्तु की प्राप्ति होगी तो तुम्हें दोष क्यों दूंगा?

मुनीम-तो देखिए, राजा की सवारी आ रही है। उन्हें पीने के लिए पानी का गिलास दिया जा रहा है। आप दूसरा गिलास हाथ में लेकर ऐसा निशाना तान कर मारो कि आपका गिलास उस गिलास से टकरा जाय और 'वह गिलास राजा के हाथ से छूट कर गिर जाए। ऐसा होने पर सिपाही आपको पकड़ लेंगे और आपका मनोरथ पूरा हो जाएगा।

सेठ का लड़का तो दुःख चाहता ही था, उसने मुनीम के कथनानुसार ही गिलास फैंका और राजा के हाथ का गिलास टकरा कर नीचे गिर पड़ा।

जुलूस में जोरदार सनसनी उत्पन्न हो गई। सब उसी ओर देखने लगे जिस ओर से गिलास आया था। सिपाही

दौड़े आए और लड़के को पकड़ लिया। वे उसे राजा के पास ले गए बोले-पृथ्वीनाथ! इस नादान छोकरे ने आपके ऊपर गिलास फैंका है।

राजा यद्यपि राजपथ से जा रहा था, तथापि जिस जगह गिलास फैंका गया, उस जगह राजपथ के ऊपर कोई इमारत थी। उसकी छत में एक खुले मुँह का सांप था, जिसके मुख से विष की बूंदें टपक रही थीं।

यह देख कर राजा ने कहा—सिपाहियों! इसे क्यों पकड़ कर लाए हो? इसने गिलास फैंक कर मेरे प्राणों की रक्षा की है। अगर यह गिलास न फैंकता और मैं पानी पी लेता तो बेमौत मर जाता। वास्तव में यह लड़का मेरा प्राणरक्षक है।

राजा ने शाबासी और इनाम देकर लड़के को छुड़वा दिया। लड़का मुनीमजी के पास पहुंचा और बोला-मुनीमजी, आपने दुःख प्राप्त करने करने का अच्छा उपाय नहीं बतलाया।

मुनीम ने कहा—अच्छा, फिर अवसर आने दीजिए। दूसरा कोई उपाय बतलाऊँगा।

कुछ दिन बाद की घटना है। राजा महल के झरोखे में बैठा था। दूसरे हजारों आदमी महाराज की सेवा में बैठे थे। मुनीमजी लड़के को लेकर वहां गए और बोले-राजा साहब

तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। तुम बिना रोक-टोक उनके पास जा सकते हो। वहां चले जाओ, जाते ही राजा को धक्का देकर नीचे गिरा देना। ऐसा करने से तुम्हें दुःख प्राप्त हो जाएगा।

लड़का भीड़ में से होता हुआ राजा के पास पहुँच गया। उसने आव देखा न ताव और अचानक राजा को हाथ से खींच कर तथा धक्का देकर नीचे गिरा दिया। राजा नीचे गिर गया मगर संयोग से वह झरोखा भी उसी समय गिर पड़ा। जब सिपाही पकड़ कर उसे राजा के पास ले गए तो राजा ने कहा—यह लड़का तो बड़ा ज्ञानी है। अगर यह हाथ से खींच कर मुझे न गिराता तो मैं झरोखे के नीचे दब कर मर जाता, क्योंकि झरोखा तो गिरने वाला ही था। इसने ऐन मौके पर आकर मेरे प्राण बचा लिये। इसके इस कार्य से मैं बहुत प्रसन्न हूं।

राजा ने उसे पुनः पुरस्कृत किया और आदर के साथ रवाना किया।

मतलब यह है कि मनुष्य का पुण्य ही मनुष्य के सामने आकर काम करता है। पुण्यात्मा पुरुष को दुःख का उपाय करने पर भी सुख ही मिलता है।

वीरसेन-अमरसेन के साथ भी उनका पुण्य तो चल ही रहा है। एक भाई सो रहा है और दूसरा जाग रहा है। उसी

समय वृक्ष पर बैठे हुए तोता-तोती के जोड़े ने आपस में वार्त्तालाप करना शुरू किया।

तोता-तोती क्या वार्तालाप करते हैं और उनसे कुमारों को क्या लाभ होता है, यह आगे सुनने से विदित होगा।

जो पुरुष कष्ट पड़ने पर भी धैर्य धारण करेंगे और धर्म-मार्ग से विचलित न होंगे, वे सुखी होंगे।

केन्टोनमेंट बैंगलोर
२१ ६-४६

❀ ओम् अर्हम् नमः ❀

पुण्य का खेल



प्रार्थना–

विश्वव्यापितमो हिनस्ति तरणिर्बालोऽपि कल्पांकुरो–
दारिद्र्याणि गजावलीं हरिशिशुः काष्ठानि वह्नेः कणः।
पीयूषस्य लवोऽपि रोगनिवहं यद्वत्तथा ते विभो !
मूर्त्तिः स्फूर्तिमती सती त्रिजगतीकष्टानि हर्तुं क्षमा ॥६॥

卐卐

भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए स्तुतिकार कहते हैं—प्रभो ! आपकी वीतराग छवि से युक्त, प्रशान्त और परम-सौम्य मुद्रा तीन लोक के समस्त प्राणियों के कष्टों को नष्ट करने में उसी प्रकार समर्थ थी, जिस प्रकार उदीयमान सूर्य विश्वव्यापी अन्धकार को नष्ट कर देता है, कल्पवृक्ष दरिद्रता को दूर कर देता है, सिंह का शिशु हाथियों के समूह को नष्ट कर देता है, अग्नि का कण अनेक काष्ठों को भस्म कर देता है तथा अमृत की एक बूंद भी रोगों के समूह को दूर कर देती है।

भगवान् पार्श्वनाथ जब सशरीर इस भूतल पर विचरण करते थे और समवसरणसभा में विराजमान होकर धर्म-देशना करते थे, उस समय मोहजन्य समस्त विकारों के दूर हो जाने के कारण भगवान् की मुख मुद्रा अतिशय लोकोत्तर छटा से देदीप्यमान होती थी, प्रभु के दर्शन से जगत के प्राणियों को अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होती थी और उनकी समस्त आधि-व्याधियां दूर हो जाती थी।

इस श्लोक में स्तुतिकार ने भगवान् की महिमा का आलंकारिक रूप में वर्णन किया है, वास्तव में प्रभु और प्रभु का नाम भी संसार के जीवों को सुख-शान्ति देने वाला है, जो भव्य प्राणी श्रद्धापूर्वक भगवान् के नाम का स्मरण करता है, उसके समस्त दुःख दूर हो जाते हैं।

ऐसी ही श्रद्धा और भक्ति रखकर संसार के जीव भगवान् तीर्थङ्करों का जाप करते हैं, जिससे अनादिकालीन मिथ्यात्व, अज्ञान और विभ्रम का अन्धकार भगवन्नाम रूपी सूर्य का उदय होते ही नष्ट हो जाए।

परन्तु इतना चमत्कारी नाम भी सबसे कहां लिया जाता है? हां, यह जबान मिली है तो अधिकांश लोग दूसरों की निन्दा और विकथा करने में इसका उपयोग करते हैं सट्टाबाजार में बैठकर चिल्लाते हैं और लड़ाई-झगड़ा होने पर गालियां देते हैं, मगर थोड़ी देर के

लिए एकान्त में बैठकर भगवान् के नाम का जप करने के लिए जबान नहीं हिलाई जाती। भाइयों ! पुण्ययोग से प्राप्त जिह्वा का महापुरुषों के नाम कीर्त्तन और गुणगान के लिए है, मीठी बोली बोलने के लिए है, दीन-दुखिया जनों की सान्त्वना के दो बोल कहने के लिए है, गुणी जनों की प्रशंसा करने के लिए है।

जो पुण्यवान् पुरुष तीर्थङ्कर भगवन्तों का नामस्मरण करता है, वह बहुत-से कर्मों की निर्जरा करके अपने मार्ग को प्रशस्त बना लेता है, जिन्होंने भगवान् का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया, उनका कल्याण हो गया। उनकी आत्मा संताप से मुक्त हो गई, वे परमशान्ति का लाभ कर सके, यहां तक कि वे स्वयं तीर्थङ्कर बन गए, तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के बीस बोलों में एक बोल यह भी आता है कि जो मनुष्य शुद्ध हृदय से तीर्थङ्कर भगवान् का गुण-गान करता है, वह तीर्थङ्कर गोत्र बांध लेता है, अतएव प्रतिदिन भगवान् के नाम का जाप करना चाहिए और उनके बतलाए धर्म-मार्ग पर चलना चाहिए।

भाइयों ! भगवत् नाम का स्मरण भी महत्त्व रखता है और भगवान् के द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना भी महत्त्व रखता है, अतएव आप अपने कल्याण के लिए प्रभु की स्तुति करें और उनके द्वारा उपदिष्ट पथ पर चलें, इसी में आपका वास्तविक कल्याण है, यही मानव जीवन प्राप्त करने का सर्वोत्कृष्ट सार है।

समवायांगसूत्र—

तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा उपदिष्ट मार्ग क्या है, यही समझाने के लिए आपको समवायांग सूत्र सुना रहा हूं। कल छह बाह्य और छह आभ्यन्तर तपों के विषय में कहा गया था और यह भी बतलाया गया था कि कर्मों की निर्जरा के लिए तप ही उत्तम साधन है। बाह्य तप अन्तरंग तप में सहायक होते हैं और अन्तरंग तप साक्षात् आत्म-शुद्धि के कारण होते हैं। साधना के पथ में अग्रसर होने के लिए देहदमन और इन्द्रिय निग्रह की अनिवार्य आवश्यकता है और बाह्य तपों का आचरण किये बिना यह हो नहीं सकता। अतएव बाह्य तप भी अन्तरंग तप के समान ही ग्राह्य हैं, आचरणीय हैं।

इसके पश्चात् छह प्रकार के समुद्घातों का निरूपण किया गया है। छद्मस्थ जीवों में छह समुद्घात ही हो सकते हैं। आत्मा के प्रदेशों का शरीर के भीतर रहते हुए भी बाहर निकालना और ऐसा करके कर्मों का विनाश करने का प्रयत्न समुद्घात कहलाता है। यद्यपि समुद्घात सात हैं परन्तु केवलीसमुद्घात छद्मस्थों को नहीं होता; अतः यहां छद्मस्थ के छह समुद्घात ही कहे गए हैं। इनका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है:—

(१) वेदनासमुद्घात-असातावेदना से अनुभव करते हुए वेदनीय कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके उन्हें निर्जरा से दूर करना।

(२) कषाय समुद्‌घात-कषाय के पुद्‌गलों की निर्जरा करना।

(३) मारणान्तिक समुद्‌घात-आयु कर्म के पुद्‌गलों की निर्जरा करना।

(४) वैक्रियसमुद्‌घात-आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर निकाल कर शरीर को लम्बा, चौड़ा, छोटा, अनेक आदि बनाना और वैक्रिय तापकर्म के पुद्‌गलों की निर्जरा करना।

(५) तैजससमुद्‌घात-तेजोलेश्या निकालना और तैजस पुद्‌गलों की निर्जरा करना।

(६) आहारकसमुद्‌घात-पूर्वधारी मुनि को जब किसी गूढ तत्त्व के विषय में शंका उत्पन्न होती है तो उसकी निवृत्ति के लिए वे आहारकलब्धि से आहारक शरीर बना कर केवली भगवान् के पास भेजते हैं। और आहारक-पुद्‌गलों की निर्जरा करते हैं। इसी को आहारकसमुद्‌घात कहते हैं। आहारक शरीर का वह पुतला एक हाथ का और अत्यन्त स्वच्छ स्फटिक मणि के समान होता है।

इसके पश्चात बतलाया गया है कि अर्थावग्रह के छह भेद हैं। दर्शनोपयोग और व्यंजनावग्रह के बाद होने वाला वस्तु का सामान्य ज्ञान अर्थावग्रह कहलाता है। अर्थावग्रह पांच इन्द्रियों और मन से होता है, अतएव इसके छह भेद कहे गए हैं। वह इस प्रकार हैं—

(१) श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह—कानों में शब्द पड़ने के बाद होने वाला ज्ञान।

(२) चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह—नेत्रों से होने वाला साधारण ज्ञान।

(३) घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह—नासिका से होने वाला गंध का सामान्य ज्ञान।

(४) रसनेन्द्रिय-अर्थावग्रह—जिह्वा से होने वाला रस का साधारण ज्ञान।

(५) स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह—स्पर्शेन्द्रिय से होने वाला स्पर्श का साधारण ज्ञान।

(६) नोइन्द्रिय अर्थावग्रह-मन से होने वाला सामान्य ज्ञान

कृत्तिका नक्षत्र के और आश्लेषा नक्षत्र के छह छह तारे हैं

प्रथम नरकभूमि में किसी-किसी नारक की स्थिति छह पल्योपम की मानी गई है।

तीसरे नरक में किसी-किसी नारक जीव की स्थिति छह सागरोपम की कही गई है।

असुर कुमार जाति के किसी-किसी देवता की स्थिति छह पल्योपम की होती है। प्रथम और द्वितीय देवलोक में भी किसी-किसी देव की छह पल्योपम की स्थिति है।

तीसरे और चौथे देवलोक में किन्हीं देवों की स्थिति छह सागरोपम की है।

स्वयंवादी, स्वयंभू घोष, सुघोष महाघोष, कृष्टिघोष, वीर, सुवीर, वीरगत, वीरसैनिक, वीरावर्त्त, वीरप्रभ, वीरकान्त, वीरवर्ण वीरध्वज, वीरशृङ्ग, वीरसिद्ध, वीरकूट और वीरावतंसक, इन देवविमानों में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति छह सागरोपम की है।

जिन देवों की स्थिति छह सागरोपम की है, वे छह पक्ष अर्थात् तीन मास में एक बार श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन्हें छह हजार वर्ष में आहार करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। क्योंकि जो जितना अधिक सरस एवं सत्वयुक्त आहार करता है, उसे उतनी ही देर में भूख लगती है। कहा है-

बाटी कहे मैं आऊँ जाऊँ, रोटी कहे मैं ठेठ पहुंचाऊँ।
राबड़ी कहे म्हारो पतलो सो नाम, म्हारे भरोसे मत छोड़ो गाम ॥

भाइयो ! बाटी का भोजन भारी होता है। जब वह खा ली जाती है तो पेट इतना भारी हो जाता है कि मनुष्य अपने गन्तव्य ग्रामान्तर तक पहुंच कर वापिस लौट सकता है। रोटी में ग्रामान्तर तक पहुंचा देने की ही शक्ति है। मगर राबड़ी शीघ्र ही हजम हो जाने वाली वस्तु है। वह कहती है-भाई, मेरे भरोसे गांव मत छोड़ना। थोड़ी देर बाद पेशाब आया नहीं कि पेट खाली का खाली।

तो जितनी गरिष्ठ खुराक खाई जाएगी, उतनी ही देर बाद भूख लगेगी। देवों का आहार रोमाहार होता है। वे आहार के रूप में ऐसे सारवान् पुद्गलों को ग्रहण करते है कि उन्हें छह हजार वर्ष बीतने पर भूख लगती है।

इसके पश्चात् बतलाया गया है कि कोई कोई भव्य जीव ऐसे भी हैं जो छह भव करके सिद्ध बुद्ध होंगे और समस्त कर्मों का क्षय करके अनाबाध शाश्वत मुक्ति प्राप्त करेंगे।

यहां छठा समवाय समाप्त होता है। सातवें समवाय के आरम्भ में कहा गया है कि भय सात प्रकार के होते हैं। यथा-

(१) इहलोकभय-स्वजातीय से स्वजातीय को होने वाला भय इहलोकभय कहलाता है। जैसे नारक जीव से नारक को, मनुष्य से मनुष्य को, देवता से देव को और पशु से पशु को भय लगा रहता है।

(२) परलोक भय-विजातीय से होने वाला भय, जैसे मनुष्य को देवता से, पशु को मनुष्य से, नारकी को परमाधामी से होने वाला भय।

(३) आदानभय-धन के निमित्त से होने वाला भय। जहां धन-दौलत है वहां भय भी अवश्य है। धन प्राप्त करके लोग निर्भय होना चाहते हैं, मगर यह अज्ञान है। धन भय का स्थान है। उसे चाहे तिजोरी में बंद करके रक्खा जाय या

जमीन में गाड़ा जाए। उसके चले जाने का भय बना ही रहता है। क्योंकि धन के जाने के अनेक मार्ग हैं—चोर चुरा कर ले जा सकते हैं, डाकू गोली मार कर ले जा सकते हैं; आग में जल सकता है, बाढ़ में बह सकता है, राजा ले सकता है।

इस प्रकार धन के साथ भय उसी प्रकार लगा है जैसे रात्रि के साथ अन्धकार। निर्भयता धन के त्याग में है। जो अकिंचन है उसे क्या भय है। कहा है—

काया को भय कुट्टण को,
माया को भय लुट्टण को।
बुड्ढे को भय उट्ठण को,
साधु को भय भुट्ठण को,
गाड़ी को भय टुट्टण को॥

(४) अकस्मात्भय-अचानक ही आ पड़ने वाला भय आकस्मिक भय कहलाता है। कोई मनुष्य निश्चिन्त भाव से भोजन कर रहा है। अचानक पुलिस का सिपाही आकर आवाज देता है। उसकी आवाज कान में पड़ते ही भोजन करने वाले को भय उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार एकाएक आग लग जाना, डाकुओं का हमला हो जाना आदि भी अकस्मात् भय है।

(५) आजीविकाभय-जीवन निर्वाह की सामग्री के लिए या उसके निमित्त से होने वाला भय। जीवन निर्वाह के साधनों

के बिना जीवन निभता नहीं है। अतएव इसके लिए हृदय में जो भीति होती है, वह आजीविकाभय है, यथा—मेरे बाल-बच्चों का निर्वाह कैसे होगा? मेरा पेट कैसे पलेगा? इस प्रकार का भय संसार के सभी जीवों को लगा हुआ है। बड़ों को बड़ा और छोटों को छोटा।

(६) मरणभय—जिसका जन्म हुआ है, निश्चित रूप से उसकी मृत्यु होगी। यह ध्रुव सत्य सभी को ज्ञात है, फिर भी प्रत्येक मनुष्य मौत से भय खाता है। मृत्यु की कल्पना मात्र से उसका दिल दहल जाता है और शरीर कांपने लगता है। यह भय सबसे जबर्दस्त है। डाकू आते हैं और छाती के सामने जब पिस्तौल तानते हैं तो सेठजी गिड़गिड़ा कर कहते हैं—जो ले जाना चाहो सो ले जाओ, मगर प्राण बचने दो। वह जानता है कि जीवित रहूंगा तो फिर कमा लूंगा। मर गया तो बचा हुआ धन भी मेरे किस काम का?

सत्य यह है कि प्रत्येक प्राणी जीवित रहने की ही अभिलाषा करता है। मृत्यु सभी को अप्रिय है यही कारण है कि मृत्यु का भय सबको होता है।

(७) अपकीर्तिभय—मानव स्वभावतः कीर्ति का कामी है। अतएव उसे सदैव यह भय बना रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी कीर्ति में बट्टा लग जाए। बहुत-से लोग अपकीर्ति के भय से दुष्कर्मों से बचते हैं और कई दुष्कृत्य करके भी अपयश

से बचने का प्रयत्न करते हैं। जब कोई व्यक्ति लोक-विरुद्ध कार्य करता है और उसके प्रकट होने की संभावना होती है तो वह अपने मित्रों से कहता है—भाई, मेरा नाम मत लेना, अन्यथा मेरी बदनामी हो जाएगी। मेरा मुँह काला हो जाएगा। मनुष्य चोरी तो करता है, परन्तु इस ढङ्ग से कि वह प्रकट न हो जाए।

इस प्रकार मनुष्य को अपकीर्त्ति का भी भय लगा रहता है और वह यही चाहता है कि मेरे पाप प्रकाश में न आ जाएँ। प्रकट हो गए तो दुनिया मेरे पूर्वजों के नाम पर थूकेगी, मेरी ओर उंगली उठाएगी। किस-किस की जीभ पकड़ी जाएगी?

सरकार ने आयकर (इन्कमटेक्स) लगा रक्खा है और आय की जांच के लिए अफसर भी नियुक्त हैं। फिर भी लोग चोरी करते हैं। अलग-अलग दो बही-खाते रखते हैं। फिर भी दिल में बेचैनी बनी रहती है और भय बना रहता है कि कहीं सरकारी अफसर अचानक आकर बही-खाते देख न लें। अन्यथा पोल खुल जाएगी और अपराधी साबित हो जाएँगे। दुनिया में बेइज्जती होगी सो अलग ही।

परन्तु ज्ञानी पुरुष कहते हैं-ऐ दुनिया के लोगों! तुम्हें जिन कारणों से भय होता है, उन कारणों का ही परित्याग क्यों नहीं कर देते? ऐसा करो तो निर्भय होकर आराम से जीवन गुजार सकते हो। यदि भगवान् तीर्थङ्करों का धर्म तुमने धारण

कर लिया अर्थात् यदि तुमने अहिंसाव्रत का आचरण किया सत्य का आचरण किया, अकिंचन बन गए और परिग्रह से मुँह मोड़ लिया तो निश्चय ही तुम निर्भय हो जाओगे। फिर तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा।

एक बार मैंने कहा था कि गोरखनाथ मच्छन्दरनाथ के चेले हो गए हैं। उनके समीप राजा भर्तृहरि ने दीक्षा ग्रहण की थी। गोरखनाथ ने कुछ साधना की थी जिससे उन्हें कुछ सिद्धियां प्राप्त हो गई थीं। एक सिद्धि के द्वारा उन्होंने सोने की एक ईंट बना ली थी। उस ईंट को वे एक थैला में रक्खे रहते थे।

एक बार गोरखनाथ और उनके शिष्य भर्तृहरि साथ-साथ जा रहे थे तो गुरुजी ने पूछा—शिष्य! रास्ते में चोर-डाकुओं का भय तो नहीं है?

प्रश्न सुनकर भर्तृहरि ने सोचा—हम लोग साधु हैं, हमारे मन में ऐसी आशंका ही क्यों उत्पन्न होनी चाहिए? भय तो माया से होता है, साधु को क्या भय? गुरुजी के चित्त में भय उत्पन्न हुआ है तो अवश्य इनके पास कोई भयजनक वस्तु होनी चाहिए, फिर उन्होंने सोचा—लेकिन गुरु के विषय में मुझे इस प्रकार का विचार नहीं करना चाहिए।

दोनों आगे चले, परन्तु पुनः गुरु ने कहा—शिष्य! कभी-कभी वीरान में चोर-डाकू मिल जाया करते हैं।

भर्तृहरि बोले-गुरुदेव! मुझे तो अभी तक कोई चोर-डाकू नहीं मिला।

कुछ और आगे बढ़े तो गुरुजी को शौच की हाजत हुई, तब उन्होंने कहा-बेटा, तुम यहीं बैठे रहना, मैं जंगल जाकर अभी आता हूँ।

भर्तृहरि बोले आप निर्भय होकर पधारिए, मैं यहीं बैठा हूं।

गुरुजी चले गए भर्तृहरि के दिमाग में गुरुजी के भय के कारण को समझने की उत्कंठा जाग उठी, वह सोचने लगे-गुरुजी को बार-बार चोर-डाकुओं का भय क्यों सताता है? जिसके पास धन-दौलत होती है उसको ही भय लगता है, फक्कड़ साधुओं को कैसा भय? फिर यहां तो चोर-डाकुओं का कोई आतंक भी नहीं है।

इस प्रकार सोचकर उन्होंने गुरुजी की थैली सँभाली तो उसमें वही सोने की ईंट मौजूद थी। उसे देख भर्तृहरि गुरुजी के भय का कारण समझ गए फिर सोचा-भय के इस कारण को दूर कर देना गुरुजी की महान् सेवा होगी, उन्होंने ईंट को लेजाकर पानी में फेंक दिया और थैली में एक पत्थर रख दिया।

इतने में गुरुजी आ पहुंचे और अपनी-अपनी झोली सँभाल कर आगे चल दिए. कुछ आगे चलकर गुरुजी ने फिर

पूछा-शिष्य! रास्ते में अब तो कोई भय नहीं है? भर्तृहरि बोले-गुरुदेव, अब किसी प्रकार का भय नहीं है, भय तो मैं पानी में फैंक आया हूँ।

शिष्य के मुँह से यह शब्द सुने तो गुरुजी के मन में आशंका उत्पन्न हो गई कि इसने कहीं सोने की ईंट तो नहीं फैंक दी है? उन्होंने तत्काल झोली संभाली तो देखा सोने की ईंट के बदले पत्थर है। उन्होंने कहा--शिष्य! तूने यह क्या किया? वह ईंट क्यों फैंक दी?

भर्तृहरि ने उत्तर दिया—भगवन्! वह स्वर्ण-ईंट रूपी राक्षसी आपको भयभीत कर रही थी, आपको निर्भय करने के लिए उससे पिण्ड छुड़ाना आवश्यक था।

गुरु—वह ईंट मैंने तेरे लिए ही रख छोड़ी थी। सोचा था-काम पड़ने पर तेरे काम आएगी।

भर्तृहरि—आप मेरी चिन्ता न करें महाराज! अगर पुण्य मेरा साथ देता तो पग-पग पर निधान है।

आशय यह है कि जहां धन जाता है वहीं भय है। मनुष्य जब उससे मुँह मोड़ लेता है तो उसे भय नहीं रहता। आपने [illegible] सुने होंगे—मन्दिर-मस्जिद के ताला नहीं, दुकान के किवाड़ नहीं। एक समय ऐसा था कि मकानों में ताला नहीं लगाया जाता था। धर्मस्थान उपासकों के लिए हर

समय खुले रहते थे, क्योंकि वहां माया नहीं होती थी। परन्तु जब से इन स्थानों में भी माया ने अपना अड्डा जमाया—भगवान् को कुण्डल चाहिए, सोने की आंगी चाहिए, चांदी के छत्र चवर चाहिए, यह कल्पना उठी, तभी से मोटे-मोटे ताले जड़े जाने लगे। इस प्रकार माया की बदौलत भगवान् को भी तालों में बंद होना पड़ा। फिर भी खैरियत नहीं। इतना प्रबंध करने पर भी देवमन्दिरों में चोरियां होती हैं और आए दिन अखबारों में समाचार प्रकाशित होते रहते हैं।

आपने इतिहास पढ़ा होगा तो पता होगा कि सौराष्ट्र में वेरावल के पास प्रभास पाटन है। वहां महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर था। मन्दिर दरिया के तट पर बना था। वहां पुजारियों ने बहुत-सा धन, जिसमें हीरा आदि जवाहरात भी था, शिवलिंग के नीचे गाड़ रक्खा था। महमूद गजनवी ने भारतवर्ष पर हमला किया और रास्ते में विजय प्राप्त करता हुआ वहां पहुंचा तो मरने के भय से लोगों ने कह दिया—अमुक जगह पर धन गड़ा हुआ है। गजनवी ने वह सारा धन लूट लिया।

आशय यह है कि माया ने लोगों के मन में गहरा स्थान बना लिया है और यही कारण है कि भय भी उनके मन में गहरा समाया रहता है। अतएव भय से मुक्त होने के लिए सर्वोत्तम उपाय है माया का परित्याग कर देना। जिन वस्तुओं

के कारण तुम्हें भय लगता है, उनका परित्याग कर दो या उन पर से अपनी ममता हटा लो। इससे तुम निर्भय बन सकोगे।

जिसने तीर्थङ्कर भगवन्तों का धर्म धारण किया है, वह इन सातों प्रकार के भयों से मुक्त होता है। तुम यह चाहो कि भय उत्पन्न करने वाले पदार्थों का परित्याग भी नहीं करें और भय से मुक्त भी हो जाएँ, तो ऐसा बनने वाला नहीं। जहाँ कारण होगा वहाँ कार्य हुए बिना नहीं रह सकता। अतएव निर्भय बनना है, तो भय के कारणों का परित्याग करना पड़ेगा।

आगे कहा गया है—समुद्घात सात हैं-(१) वेदना-समुद्घात (२) कषायसमुद्घात (३) मारणान्तिकसमुद्घात, (४) वैक्रियसमुद्घात (५) तैजससमुद्घात (६) आहारक समुद्घात और (७) केवलीसमुद्घात।

केवली भगवान् के चार अघातिया कर्म ही होते हैं उनमें से जब आयु कर्म की स्थिति कम होती है और शेष तीन कर्मों की स्थिति अधिक होती है तो उसे बराबर करने के लिए भगवान् आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर भी सकल लोकाकाश में फैलाते हैं। यही केवलिसमुद्घात कहलाता है। इसमें सिर्फ आठ समय लगते हैं। इस समुद्घात के द्वारा तीन कर्मों की स्थिति का घात हो जाता है। शेष छह समुद्घातों का स्वरूप पहले बतलाया जा चुका है।

फिर शास्त्रकार बतलाते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का शरीर सात हाथ ऊँचा था। उनके हाथ से तो उनका शरीर साढ़े तीन हाथ का ही था, परन्तु शरीर का माप उत्सेधांगुल से अर्थात् आधे पांचवें आरे के मनुष्यों के हाथ से होता है। अतएव यह ऊँचाई उसी से समझना चाहिए। अवसर्पिणी काल में शरीर की अवगाहना घटती ही जा रही है। यह पंचम आरा इक्कीस हजार वर्ष का है, जिसमें से अभी लगभग आठवां भाग ही बीता है। पहले की अपेक्षा आजकल शरीर का मान कम है और भविष्य में और कम होता जाएगा।

इसके पश्चात् बतलाया गया है कि सात वर्षधर पर्वत हैं। भरत और हैमवत क्षेत्र का विभाग करने वाला पर्वत चुल्ल हेमवन्त कहलाता है। हैमवत और हरिवर्ष का विभाजक महाहिमवान् पर्वत है। हरिवर्ष और महाविदेह की सीमा पृथक् करने वाला निषध पर्वत है। महाविदेह के बीचोंबीच सुमेरुपर्वत है, जो पूर्वविदेह, पश्चिमविदेह की सीमा निर्धारित करता है। इसी प्रकार आगे के क्षेत्रों की सीमा बनाने वाले नील, रुक्मि और शिखरी पर्वत हैं। विदेह और रम्यक के बीच में नील पर्वत, रम्यक और हैरण्यवत के बीच रुक्मि पर्वत और हैरण्यवत तथा ऐरवत की सीमा बनाने वाला शिखरी पर्वत है। इस प्रकार महाविदेह क्षेत्र को एक क्षेत्र मानने से कुल सात क्षेत्र हैं।

तत्पश्चात् बतलाया गया है कि बारहवें गुणस्थानवर्त्ती

क्षीणमोह भगवन्त मोहनीय कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्म-प्रकृतियों का वेदन करते हैं।

फिर कहा गया है—मघा नक्षत्र के सात तारे होते हैं। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा, यह सात नक्षत्र पूर्वद्वार वाले हैं। पूर्व दिशा में जाने वालों के लिए मांगलिक माने गए हैं। मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा, यह सात नक्षत्र दक्षिण द्वार वाले हैं। अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा उत्तराषाढ़ा, अभिजित और श्रवण, यह सात नक्षत्र पश्चिमद्वार वाले हैं। धनिष्ठा, शत-भिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी यह सात नक्षत्र उत्तर द्वार वाले हैं। पाठान्तर के अनुसार अभि-जित नक्षत्र से भी सात-सात नक्षत्र चार दिशाओं में द्वार वाले किए गए हैं।

पहले नरक में किसी-किसी नारक की स्थिति सात पल्यो-पम की होती है। तीसरे नरक में उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की कही गई है। चौथे नरक में जघन्य स्थिति सात सागरो-पम की है।

असुरकुमार जाति के देवों में किसी-किसी देव की सात पल्योपम की स्थिति होती है। प्रथम और द्वितीय देवलोक में भी किसी-किसी देव की स्थिति सात पल्योपम की है। तीसरे देव-

लोक में सात सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है। चौथे देवलोक में सात सागरोपम झाझेरी स्थिति है। पांचवें देवलोक में किसी-किसी देवता की सात सागरोपम की स्थिति कही गई है। जो देवता सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भासुर, विमल, कंचनकूट तथा सनत्कुमारावतंसक नामक विमानों में देवपर्याय से उत्पन्न हुए हैं, उनकी उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की होती है।

सात सागरोपम की स्थिति वाले देव सात पक्ष में अर्थात् साढ़े तीन मास में श्वसोच्छ्वास लेते हैं। उन्हें सात हजार वर्ष में आहार की इच्छा होती है।

कोई कोई भव्य जीव ऐसे भी हैं जो सात भव करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होंगे तथा समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

अमरसेन-वीरसेन चरित--

कल बतलाया गया था कि दोनों राजकुमार जंगल में एक आम के वृक्ष के नीचे रैन-बसेरा कर रहे थे कि उसी वृक्ष पर बैठे हुए एक शुकयुगल ने परस्पर में इस प्रकार वार्त्तालाप किया—

तोता—यह कोई परदेशी जान पड़ते हैं, किसी दुःख के मारे हैं और रात्रि में विश्राम करने के लिए यहां आकर ठहर गए हैं।

तोती—आपका ख्याल बहुत ठीक है, इसके दुःख का

कोई पास नहीं है, बेचारे घबराए हुए हैं।

तोता—जानती हो इनके दुःख का क्या कारण है?

तोती—ये कांपिल्यपुर के राजा जयसेन के पुत्र हैं, इनकी माता बचपन में ही इन्हें छोड़कर चल बसी थी, इत्यादि समस्त वृत्तान्त तोती ने तोते को यह सुनाया कि किस प्रकार सौतेली माता ने षड्यन्त्र रचा, किस प्रकार चाण्डालों की दया की बदौलत इनके प्राण बचे, अन्त में तोती बोली-नाथ! यह सुकुमार राजकुमार आज निराधार हैं, कोई इनका सहायक नहीं है, बेचारे दुःखी होकर भटक रहे हैं, परन्तु नाथ! आप पुरुष हैं, आज मेरे अनुरोध को मानकर ही इनका कुछ उपकार कर दीजिए। मनुष्य मनुष्य का उपकार करते ही हैं, मगर उनका कोई ठेका तो है नहीं। पशु पक्षी भी मनुष्य का उपकार कर सकते हैं, यह लोग हमारे घर आए हैं, हमारे मेहमान हैं, दुःखी हैं। आप पुरुष हैं तो पुरुषार्थ करके इनका उपकार करना ही चाहिए।

लोक में सात सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है। चौथे देवलोक में सात सागरोपम क्रामेरी स्थिति है। पांचवें देवलोक में किसी-किसी देवता की सात सागरोपम की स्थिति कही गई है। जो देवता सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भासुर, विमल, कंचनकूट तथा सनत्कुमारावतंसक नामक विमानों में देवपर्याय से उत्पन्न हुए हैं, उनकी उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की होती है।

सात सागरोपम की स्थिति वाले देव सात पक्ष में अर्थात् साढ़े तीन मास में श्वसोच्छ्वास लेते हैं। उन्हें सात हजार वर्ष में आहार की इच्छा होती है।

कोई कोई भव्य जीव ऐसे भी हैं जो सात भव करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होंगे तथा समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

अमरसेन-वीरसेन चरित--

कल बतलाया गया था कि दोनों राजकुमार जंगल में एक आम के वृक्ष के नीचे रैन-बसेरा कर रहे थे कि उसी वृक्ष पर बैठे हुए एक शुकयुगल ने परस्पर में इस प्रकार वार्त्तालाप किया—

तोता—यह कोई परदेशी जान पड़ते हैं, किसी दुःख के मारे हैं और रात्रि में विश्राम करने के लिए यहां आकर ठहर गए हैं।

तोती—आपका ख्याल बहुत ठीक है, इसके दुःख का

कोई पार नहीं है, बेचारे घबराए हुए हैं।

तोता—जानती हो इनके दुःख का क्या कारण है ?

तोती—ये कंपिलपुर के राजा जयसेन के पुत्र हैं, इनकी माता बचपन में ही इन्हें छोड़कर चल बसी थी, इत्यादि समग्र वृत्तान्त तोती ने तोते को कह सुनाया कि किस प्रकार सौतेली माता ने षड्यन्त्र रचा, किस प्रकार चाण्डालों की दया की बदौलत इनके प्राण बचे, अन्त में तोती बोली-नाथ! यह सुकुमार राजकुमार आज निराधार है, कोई इनका सहायक नहीं है, बेचारे दुखी होकर भटक रहे हैं, परन्तु नाथ! आप पुरुष हैं, आज मेरे अनुरोध को मानकर ही इनका कुछ उपकार कर दीजिए। मनुष्य मनुष्य का उपकार करते ही हैं, मगर उनका कोई ठेका तो है नहीं। पशु-पक्षी भी मनुष्य का उपकार कर सकते हैं, यह लोग हमारे घर आए हैं, हमारे मेहमान हैं, दुखी हैं। आप पुरुष हैं तो पुरुषार्थ करके इनका उपकार करना ही चाहिए।

तोती के अनुरोध का तोते के दिल पर असर हुआ, मगर वास्तविक बात तो यह है कि यदि सामने वाले का पुण्य प्रबल होता है तो उसे कहीं न कहीं से सहायता मिल ही जाती है। न देने वाले की भी देने की भावना उत्पन्न हो जाती है।

राजकुमारों ने सत्पात्रदान के द्वारा पुण्य उपार्जित किया

है। अतएव वे दुःखी कैसे रह सकते हैं? कभी किया हुआ कोई पाप उदय में आ जाने से उन्हें इस अवस्था में आना पड़ा, मगर यह अवस्था अधिक दिनों तक टिक नहीं सकती।

हां, तो तोती कहती है-प्राणनाथ! तुम जाओ और कुछ ऐसा उपाय करो कि जिससे इनका दुख दूर हो जाए। कैसे इनका दुख दूर होगा, यह आप भलीभांति जानते हैं। अपने द्वार पर आये हुए दुखियों के दुख दूर न हुए तो अपना जीवन निरर्थक होगा।

तोते के दिल में दया उमड़ आई और उसने संकल्प कर लिया कि राजकुमारों के दुःख का प्रतीकार अवश्य करूंगा।

भाइयो! यद्यपि पक्षी आम तौर पर रात्रि में नहीं उड़ते हैं। फिर भी सामने वाले का जबर्दस्त पुण्य होने से वह उसी समय उड़ने को तैयार हो गया। तोता उड़ा और दूसरे जंगल में गया। वहां पहुँच कर उसने दो गुठलियां अपनी चोंच में दबाई और फिर अपनी जगह लौट आया।

वहां आकर उसने तोती से कहा—तुम्हारे कहने से मैं यह गुठलियां ले आया हूँ।

तोती-इनसे क्या होगा? इन्हें दोगे तब काम चलेगा।

तोता ने दोनों गुठलियां वीरसेन के सामने गिरा दीं और कहा-एक तुम खा लो और एक अपने भाई को खिला दो। इन्हें

यों ही मत समझ लेना। तुम हमारे द्वार पर आए हो; इस कारण तुम्हारी सहायता करना अपना धर्म समझ कर, रात्रि में उड़ कर, बड़ी मिहनत से इन्हें लाया हूं। इन गुठलियों में बड़ा चमत्कार है। इनमें से जो पहले एक गुठली खा लेगा, उसे सातवें दिन राज्य मिल जाएगा और जो दूसरी गुठली खाएगा वह प्रतिदिन सूर्योदय के साथ मुंह धोने और कुल्ला करने के साथ पांच सौ मोहरें उगलेगा। इस तरह तुम जो सुख-साधन छोड़ कर आए हो वे तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त हो जाएँगे।

भाइयो! जब प्रबल पुण्य का उदय होता है तो आया हुआ दुःख भी शीघ्र दूर हो जाता है। और जब प्रबल पाप का उदय होता है तो बहुत उपाय करने पर भी सुख की प्राप्ति नहीं होती।

एक सेठ की पड़ौस के गांव में ही शादी हुई थी। उसके पास सम्पत्ति तो बहुत थी, मगर वह ठीक ढङ्ग से नहीं चला और आय से अधिक खर्च करने लगा। अतएव कुछ दिनों में वह ऋणी हो गया। उसने ऋण चुकाने में अपनी सारी सम्पत्ति फूँक दी। अब उसके पास रहने को मकान भी नहीं बचा। वह बड़ी कठिनाई में पड़ गया। पैसा होता है तो जीवन अच्छी तरह चलता है; अन्यथा कोई टके सेर भी नहीं पूछता। कोई इज्जत भी नहीं करता। कंगाल मनुष्य किसी की दुकान पर जाकर

खड़ा होता है तो दुकानदार यही सोचता है कि कहीं जूते उठा कर न चल दे। उसे भगा दिया जाता है।

वह सेठ बड़े संकट में पड़ गया। सोचने लगा—एक दिन मेरी क्या स्थिति थी, कैसी प्रतिष्ठा थी, पर आज मुझे दो पैसे उधार देने वाला भी कोई नहीं है। यह सोचकर उसने अपनी बहिन के घर जाने का निश्चय किया ताकि आराम से पेट भर सके।

एक पिछली रात को वह घर से निकल पड़ा। उसके पैरों में जूतियां नहीं थी और सिर पर पगड़ी नहीं थी। मगर ऐसी हालत में भी वह चल ही पड़ा।

राह चलते-चलते शरीर पर धूल छा गई और बुरी हालत हो गई। परन्तु जैसे-तैसे वह बहिन की ससुराल में जा पहुंचा। जब वह द्वार पर पहुंचा तो दासी ने अन्दर जाकर सूचना दी—मालकिन, आपके भाई आए हैं।

बहिन बाहर आई और ज्यों ही अपनी आंखों से भाई की दुरवस्था देखी त्यों ही उसे खयाल आया—इसे भाई कहने से मेरा अपमान होगा। यह सोच कर उसने सहसा कह दिया—'मेरे तो कोई भाई ही नहीं है।'

भाइयो ! माया न होने से भाई भाई नहीं रहा। माया

होती और शान-शौकत के साथ पहुंचा होता तब तो भाई था, मगर गरीबी ने उसे भाई भी नहीं रहने दिया।

संसार कितना स्वार्थी है। बेचारा क्या आशा ले कर पहुँचा था और क्या हुआ। ठीक ही है—

दौलत से दौलत मिले, कर कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात॥

मानो इस स्वार्थमय संसार में धनवान् और निर्धन में कोई रिश्ता ही नहीं है।

बहिन ने अपमान के साथ उसे निकाल दिया। उसकी आशा पर तुषारपात हो गया। जब वह अपनी बहिन के घर से तिरस्कृत होकर निकला तो उसके दिल पर गहरा आघात लगा। उसने सोचा—अन्यत्र कहीं जाकर ठोकरें खाने की अपेक्षा इस अभिशाप जीवन का अन्त कर देना ही अच्छा।

वह थका हुआ था और भूख के कारण पेट की आंतें कुड़मुड़ा रही थीं और निराशा तथा खेद का उसके मन पर गहरा असर था। वह उसी समय वहां से चल पड़ा और शहर के बाहर आ गया। वहां एक सरकारी बगीचे में पेड़ की छाया में बैठ गया और अपने भाग्य को कोसने लगा। मगर पेट में चूहे दौड़ रहे थे। पास में दो पैसे भी नहीं थे कि चने ले कर ही खा लेता। अकस्मात् उसकी दृष्टि एक बेरी के पेड़ की ओर आकर्षित

हुई। उसमें पके हुए बहुत-से फल लगे थे। वह उठा और उसने बेर गिराने के लिए पत्थर फेंका तो कुछ दूरी पर बैठे हुए राजा को जा लगा। राजा आराम से बैठा बगीचे की हवा खा रहा था। गरीब सेठ को यह पता नहीं था। पत्थर लगते ही रंग में भंग हो गया। नौकर-चाकर दौड़े यह देखने के लिए कि अन्नदाता को पत्थर मारने वाला कौन है?

भाइयो! देखो भाग्य का चक्कर। प्रथम तो गरीबी की हालत में, दूसरे बहिन के घर से तिरस्कार पाया हुआ, तीसरे भूखा प्यासा और तिस पर यह एक और मुसीबत आ पड़ी। बेचारे को सब ओर से विपत्ति ने घेर लिया।

आखिर राजा के नौकरों ने सेठ को पकड़ कर हाजिर किया। कहा—अन्नदाता, इस परदेशी ने पत्थर फैंका था। राजा की दृष्टि पड़ते ही गरीब सेठ थर-थर कांपने लगा। वह निराशा की मार से मर रहा था कि दुःख का एक और प्रहार लग गया। राजा ने पूछा—परदेशी! तुमने मेरे ऊपर पत्थर क्यों फैंका? सेठ ने कहा—स्वामी-नाथ! मेरे दो बोल सुन लीजिए और फिर जो इच्छा हो, सजा दे दीजिए।

राजा ने उसे कहने की स्वीकृति दी तो वह बोला—मैं अमुक जगह का निवासी हूं। किसी दिन मालदार था। दुर्भाग्य ने हमला किया और अकिंचन हो गया। गरीबी के दुःख से

घबरा कर बहिन के पास आया था, मगर उसने भी दुत्कार किया। गांठ में एक भी पैसा नहीं और भूख सहन नहीं हो रही थी। इतने में यह पेड़ दीख पड़ा और इसके फल खाकर भूख की ज्वाला शान्त करने का प्रयत्न किया तो यह भारी विपत्ति खड़ी हो गई। अन्नदाता, मैंने आपको लक्ष्य करके पत्थर नहीं मारा था। आपका विराजना भी मुझे विदित नहीं था। ऐसे गुस्ताखी करने का कोई प्रयोजन भी नहीं था। यही मेरी कथा है, यही मेरी सफाई है। अब हुजूर की मर्जी–तारें या मारें।

सेठ की कहानी सुनकर राजा के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न हुई। उसने मन ही मन विचार किया–इसका फैंका हुआ पत्थर अगर पेड़ को लगा होता तो इसे फलों की प्राप्ति होती और इसकी भूख मिट जाती, मगर वृक्ष के बदले पत्थर मुझे लगा। मैं राजा हूँ, क्या वृक्ष से गया-बीता साबित होऊँ–इसे दंड दूँ? नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए, इसने जान-बूझ कर तो मुझे मारा नहीं, अचानक मेरे ऊपर आ गिरा है, इसे अच्छा ही फल मिलना चाहिए।

इस प्रकार सोचकर राजा ने उससे कहा–अच्छा परदेशी, मैं समझ गया कि तुम निर्दोष हो और तुम्हारी स्थिति अत्यन्त दयनीय है। जाओ, मैं तुम्हें दस हजार देता हूं। इनसे अपनी आजीविका चलाना और आराम से रहना।

सेठ पुरस्कार की रकम लेकर जब पुनः नगर में पहुँचा और यह घटना उसके बहिन-बहिनोई को मालूम हुई तो वे उसके पास आए और बोले—वाह साहब वाह ! आप जरा-सी बात पर रूठ कर घर से चले आए ! ऐसा भी कभी होता है ? आपको घर चलना ही पड़ेगा, वह घर आपका ही तो है।

बहिन और बहिनोई के आग्रह को न टाल सकने के कारण वह उनके घर गया, उसे स्नान करवाया गया, बढ़िया वस्त्र पहनने को दिये गए और उत्तम भोजन करवाया गया, मगर सेठ के कलेजे में बहिन के व्यवहार से जो आघात लगा था, वह ठीक न हो पाया, सेठ सोचने लगा-यह सत्कार मेरा नहीं, सम्पदा का है। स्वार्थी संसार में जन का नहीं, धन का मूल्य है। मैं वही का वही हूं, मुझमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है, मगर इस धन ने कितना परिवर्त्तन कर दिया।

तात्पर्य यह है कि पुण्य का उदय होने पर शत्रु भी मित्र बन जाता है, निराशा में भी आशा की झलक दिखाई देने लगती है, पुण्य के करिश्मे बड़े ही अजीब होते हैं।

तो दोनों राजकुमारों के साथ पुण्य चल रहा था, अतएव अकस्मात् ही उन्हें सहायक मिल गया। अब वे किस प्रकार गुठ-

लियों का सेवन करते हैं और किस प्रकार उन्हें राज्य तथा मोहरों की प्राप्ति होती है, यह सब आगे सुनने से पता चलेगा।

जो भव्यात्मा पुण्य संचय करेंगे, उन्हें इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त होगा। तथाऽस्तु।

केन्टोनमेंट बैंगलोर
२२-६-४६

साधना का मूल-ब्रह्मचर्य



प्रार्थना—

श्रीचिन्तामणिमन्त्रमोंकृतियुतं, ह्रींकारसाराश्रितं,
श्रीमर्हन्नमिऊणपाशकलितं, त्रैलोक्यवश्यावहम् ।
द्वेधाभूतविपापहं विषहरं, श्रेयःप्रभावाश्रयं,
सोल्लासं वसहांकितं जिनफुलिङ्गानन्ददं देहिनाम् ॥७॥



भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति में यहां आचार्य श्री ने एक मंत्र को गूंथ दिया है, इस मंत्र के आरम्भ में ओं है। ओंकार पंच परमेष्ठी का वाचक माना गया है। इसमें अरिहन्त का अकार अशरीर (सिद्ध) का अकार और आचार्य शब्द का आकार ग्रहण करके व्याकरणशास्त्र के अनुसार 'आ' निष्पन्न किया गया है फिर उपाध्याय का 'उ' लेकर आ+उ मिलकर 'ओ' होता है और मुनि का मकार मिलकर 'ओं' शब्द सिद्ध होता है।

मंत्र में दूसरा शब्द आता है ह्रीं, 'ह्रीं' एक बीजाक्षर है

और आचार्यों के मतानुसार चौबीस तीर्थङ्करों का वाचक है। 'ह्' अपने वर्ग का चौथा और 'र' दूसरा अक्षर है। 'अंकानां वामतो गतिः' इस नियम के अनुसार अङ्कों की गणना बाईं ओर से होने के कारण ह्रीं शब्द से २४ का अङ्क फलित होता है।

तीसरा शब्द 'श्रीं' है। 'श्री' लक्ष्मी आदि अनेक अर्थों का वाचक है।

और अर्ह् अर्थात् जो इन्द्रादि के द्वारा भी पूज्य हैं। इस प्रकार 'ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः' इस प्रकार का मन्त्र तीनों लोकों के जीवों को वशीभूत करने वाला है और स्थावर तथा जंगम विषों को नष्ट करने वाला है।

स्थावर अर्थात् जो हलन-चलन करने वाले नहीं हैं, ऐसे जीवों एवं पदार्थों में भी विष होता है और सर्प, बिच्छू आदि जंगमों में भी ज़हर होता है। यह मन्त्र इन दोनों प्रकार के विषों को नष्ट करने वाला है। सब प्रकार से कल्याण करने वाला है। प्रभावजनक है। चिन्तामणि के समान है।

भाइयो ! इस श्लोक में ग्रथित मंत्र का जो पाठ करता है, उसका दोनों प्रकार का-स्थावर-जंगम अथवा द्रव्य और भाव रूप से दो प्रकार का-चढ़ा हुआ विष नष्ट हो जाता है। राग, द्वेष, मद मोह आदि भावविष हैं और संखिया आदि द्रव्यविष हैं। भाव-विष ने अनादि काल से प्रत्येक जीव पर अपना प्रभाव जमा

रक्खा है और उसके प्रभाव से जीव मूर्छित-विवेकहीन बन रहा है। यह विष बड़ा ही उग्र है और समस्त संसारी जीवों पर उसका प्रभाव पड़ा हुआ है। तो चाहे द्रव्यविष हो या भावविष, भगवान् के नाम से अंकित यह मन्त्र उस विष को नष्ट कर देता है। भगवान् तीर्थंकरों के नाम में और उपदेश में अचिन्त्य प्रभाव है। उससे आत्मा निर्विष-निर्विकार बन कर शाश्वत सुख और कल्याण का भाजन बन जाता है।

समवायांगसूत्र–

भगवान् के उपदेश के अनुसार चलने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पहले भगवान् के उपदेश को सम्यक प्रकार से समझ लिया जाय। बिना समझे-बूझे जो प्रवृत्ति की जाती है, वह कभी कभी कल्याण के बदले अकल्याण का कारण बन जाती है। भगवान् के उपदेश को समझने का सर्वोत्तम उपाय शास्त्र हैं, क्योंकि शास्त्रों में ही वह उपदेश सुरक्षित है। अतएव शास्त्र का वाचन प्रारम्भ किया है और वह चल रहा है। आज आठवां समवाय प्रारम्भ किया जा रहा है, जिसमें आठ-आठ भेद वाले पदार्थों का उल्लेख है।

सर्वप्रथम बतलाया गया है कि मद के आठ स्थान हैं। जिनके कारण मनुष्य को अहंकार उत्पन्न होता है, वह मदस्थान कहलाते हैं। पहला मद का स्थान जाति है। जाति शब्द अनेक

अर्थों में व्यवहृत होता है, किन्तु यहां उसका अर्थ मातृपक्ष लिया गया है, अर्थात् ननिहालपक्ष जाति का है। उसका अभिमान करना जातिमद है। जिसका मातृपक्ष उत्तम होता है वह जाति-सम्पन्न कहलाता है।

दूसरा मदस्थान कुल अर्थात पितृपक्ष है। कई लोग कुल का अभिमान करते हैं—मेरा कुल ऐसा है, वैसा है। मेरे पूर्वजों की बड़ी धाक थी, बड़ी प्रतिष्ठा थी, कौन उसकी बराबरी कर सकता है।

तीसरा मद होता है बल का। बहुतों को अपने शरीर की शक्ति का भी अभिमान होता है। उस अभिमान के नशे में चूर हो कर वे कहते हैं—जानते नहीं हो मुझको। मुझमें इतनी ताकत है कि उसे एक चिमटी में मसल दूंगा।

चौथा रूपमद है अर्थात् अपनी सुन्दरता का अभिमान करना। जिन्हें शुभ नामकर्म के उदय से खूबसूरत शरीर मिल गया है, वे अपने रूप का अहंकार करते हैं और कहते हैं—मेरे समान सुन्दर दूसरा कौन है? सनत्कुमार चक्रवर्ती का वृत्तान्त आप सुन चुके हैं। उन्हें अपने रूप का अहंकार हो गया था। देवता उनका रूप देखने आया तो वह बोले—अभी तो मेरी सुन्दरता कुछ भी नहीं है। अगर मेरा सौन्दर्य पूरी तरह से देखना है तो कल देखना जब कि मैं स्नान करके और वस्त्र

लेना तेरा बड़ा भारी दुर्भाग्य है। कल्याण के साधन को अकल्याण का साधन बना लेने वाला ज्ञानी नहीं कहलाता। फिर तू ज्ञान का अभिमान करता हुआ कैसे ज्ञानी कहला सकता है? अतएव श्रुत की प्राप्ति होने पर नम्रता धारण कर—अहंकार का अंकुर न उगने दे।

सातवां लाभमद है। किसी को लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से विशिष्ट लाभ होता है, व्यापार में अच्छी कमाई होती है तो उसकी आंखें आसमान पर चढ़ जाती हैं, लाभमद में छक कर वह कहने लगता है-देखो, दो घंटे में ही मैं दिन भर की कमाई कर लेता हूं! तू दिन भर बैठा-बैठा मक्खियां मारा करता है, साधु भी लाभमद का शिकार हो जाता है। कोई साधु गोचरी के लिए जाता है और उसे इच्छित वस्तु फौरन मिल जाती है, तो वह भी अभिमानपूर्वक कहने लगता है-देखो, मैं गोचरी के लिए गया और पात्र भर कर ले आया, तुझे तो दस घरों में फिरने पर भी कोई चीज नहीं मिली, मगर इसका भी अभिमान करना उचित नहीं है। तेरे लाभान्तराय का क्षयोपशम था तो मिल गया, दूसरे को नहीं है तो नहीं मिलता। इसमें अभिमान करने की क्या बात है।

आठवां ऐश्वर्यमद है, किसी-किसी को ऐश्वर्य अर्थात् ठकुराई का मद होता है, वह मद में चूर होकर बोल उठता है-मैं इतने साधुओं का आचार्य हूं, मैं प्रधान मंत्री हूँ, मैं मंत्री हूं!

वास्तव में ऊँचा पद सेवा के लिए मिलता है, गरूर करने के लिए नहीं। उच्च पद की सार्थकता अधिक से अधिक विनम्रता धारण करके अधिक से अधिक सेवा करने में है।

आज देश में सर्वत्र प्रभुता का पद देखा जाता है जो मिनिस्टर बन गया है, समझता है जैसे खुदा बन गया हो! जब पद नहीं मिला था, तब दर दर भटक कर वोटों की भीख मांगता था और निर्वाचित होकर कुर्सी पर आ पहुँचा तो आसमान में उड़ने लगा! जिन्होंने वोट देकर कुर्सी पर पहुँचाया, उनको कुछ समझता ही नहीं है, उनमें से कोई मिलने आता है तो कह देता है—अभी मेरे पास समय नहीं है।

ऐश्वर्यमद में इस प्रकार जो उन्मत्त हो जाते हैं, उन्हें आखिर उसका दुष्परिणाम भोगना ही पड़ता है। उनका अधःपतन होता है।

इस प्रकार आठों मद आत्मा को नीचे गिराने वाले, कर्मबन्ध के कारण और दुःखदायी होते हैं, जो जिस चीज का अभिमान करता है, उसे आगे चलकर उससे वंचित होना पड़ता है। जैसे—जाति का मद करने वाला उत्तम जाति से और कुल का मद करने वाला उच्च कुल से वंचित होता है। श्रुत का अभिमान करने वाले को आगामी भव में श्रुत की विशेष प्राप्ति

नहीं होती। इत्यादि अभिमान का दुष्परिणाम जानकर सभी मदों का परित्याग करना चाहिए।

आगे शास्त्रकार फर्माते हैं-प्रवचनमाताएं आठ हैं-(१) ईर्यासमिति (२) भाषासमिति (३) एषणासमिति (४) आदान-निक्षेपणासमिति (५) उच्चार-प्रस्त्रवण-खेल-जल्ल-मल-परिष्ठापनि-कासमिति (६) मनोगुप्ति (७) वचनगुप्ति और (८) कायगुप्ति।

जैसे माता अपनी संतति का पालन पोषण करती है, उसी प्रकार यह आठ प्रवचनमाताएँ चारित्र का पालन-पोषण करती है. यह समिति गुप्ति रूप अष्टविध आचार समग्र चारित्र का मूलाधार हैं। जो इनका स्वरूप समझकर ठीक तरह से पालन करता है, उसकी भी रक्षा हो जाती है। यह अष्ट-प्रवचनमाता आत्मा को दुर्गति में जाने से बचाती है। ईर्यासमिति का अर्थ है-चार हाथ जमीन देखकर चलना, भाषासमिति का अर्थ है-सोच-विचार करके निर्दोष वचन बोलना, आहार संबधी शुद्धि को एषणासमिति कहते हैं। किसी वस्तु को रखते या उठाते समय यतना रखना आदाननिक्षेपणासमिति है, मल-मूत्र आदि को निर्जीव भूमि में उत्सर्ग करना परिष्ठापनिकासमिति है। मन, वचन, काय को अप्रशस्त व्यापार से रोकना तीनों प्रकार की गुप्ति है, इनका विवेचन पहले किया जा चुका है, अतएव विशेष जिज्ञासु वहीं से जान सकते हैं।

तत्पश्चात् बतलाया गया है कि वाणव्यन्तर देवों के चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊँचे होते हैं।

उत्तरकुरु क्षेत्र में जम्बू वृक्ष, जो सुदर्शन देवता का वासस्थान है, आठ योजन ऊँचा है। यह शाश्वत है, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में उसका विशेष वर्णन आया है। इसी प्रकार देवकुरु क्षेत्र में कूटशाल्मली नामक वृक्ष, जो गरुड़ देवता का आवास है; वह भी आठ योजन ऊँचा है।

जम्बूद्वीप की जगती (कोट) भी आठ योजन ऊँची है।

केवली भगवान् जो समुद्घात करते हैं, उसमें आठ समय लगते हैं। चार घनघातिया कर्मों का क्षय होने पर केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति होती है। वह अर्हन्त अवस्था कहलाती है। अर्हन्तावस्था में चार अघातिक कर्म–नाम, गोत्र, वेदनीय और आयु–शेष रहते हैं। जब आयु कर्म की स्थिति अल्प और शेष कर्मों की स्थिति अधिक होती है तो आयुकर्म के बिना शरीर टिक नहीं सकता और तीन कर्मों को साथ लेकर मोक्ष में जाया नहीं जा सकता, अतएव उनकी स्थिति बराबर करने के लिए केवली भगवान् समुद्घात करते हैं, समुद्घात करने से चारों अघातिक कर्मों की स्थिति बराबर हो जाती है। स्थिति बराबर होने से चारों का एक ही साथ क्षय होता है और भगवान् मोक्ष में पधार जाते हैं।

नहीं होती। इत्यादि अभिमान का दुष्परिणाम जानकर सभी मदों का परित्याग करना चाहिए।

आगे शास्त्रकार फर्माते हैं-प्रवचनमाताएं आठ हैं-(१) ईर्यासमिति (२) भाषासमिति (३, एषणासमिति (४) आदान-निक्षेपणासमिति (५) उच्चार-प्रस्त्रवण-खेल-जल्ल-मल-परिष्ठापनिकासमिति (६) मनोगुप्ति (७) वचनगुप्ति और (८) कायगुप्ति।

जैसे माता अपनी संतति का पालन पोषण करती है, उसी प्रकार यह आठ प्रवचनमाताएँ चारित्र का पालन-पोषण करती है. यह समिति गुप्ति रूप अष्टविध आचार समग्र चारित्र का मूलाधार हैं। जो इनका स्वरूप समझकर ठीक तरह से पालन करता है, उसकी भी रक्षा हो जाती है। यह अष्ट-प्रवचनमाता आत्मा को दुर्गति में जाने से बचाती है। ईर्यासमिति का अर्थ है-चार हाथ जमीन देखकर चलना, भाषासमिति का अर्थ है-सोच-विचार करके निर्दोष वचन बोलना, आहार संबंधी शुद्धि को एषणासमिति कहते हैं। किसी वस्तु को रखते या उठाते समय यतना रखना आदाननिक्षेपणासमिति है, मल-मूत्र आदि को निर्जीव भूमि में उत्सर्ग करना परिष्ठापनिकासमिति है। मन, वचन, काय को अप्रशस्त व्यापार से रोकना तीनों प्रकार की गुप्ति है, इनका विवेचन पहले किया जा चुका है, अतएव विशेष जिज्ञासु वहीं से जान सकते हैं।

तत्पश्चात् बतलाया गया है कि वाण व्यन्तर देवों के चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊँचे होते हैं।

उत्तरकुरु क्षेत्र में जम्बू वृक्ष, जो सुदर्शन देवता का वासस्थान है, आठ योजन ऊँचा है। यह शाश्वत है, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में उसका विशेष वर्णन आया है। इसी प्रकार देवकुरु क्षेत्र में कूटशाल्मली नामक वृक्ष, जो गरुड़ देवता का आवास है; वह भी आठ योजन ऊँचा है।

जम्बूद्वीप की जगती (कोट) भी आठ योजन ऊँची है।

केवली भगवान् जो समुद्घात करते हैं, उसमें आठ समय लगते हैं। चार घनघातिया कर्मों का क्षय होने पर केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति होती है। वह अर्हन्त अवस्था कहलाती है। अर्हन्तावस्था में चार अघातिक कर्म-नाम, गोत्र, वेदनीय और आयु-शेष रहते हैं। जब आयु कर्म की स्थिति अल्प और शेष कर्मों की स्थिति अधिक होती है तो आयुकर्म के बिना शरीर टिक नहीं सकता और तीन कर्मों को साथ लेकर मोक्ष में जाया नहीं जा सकता, अतएव उनकी स्थिति बराबर करने के लिए केवली भगवान् समुद्घात करते हैं; समुद्घात करने से चारों अघातिक कर्मों की स्थिति बराबर हो जाती है। स्थिति बराबर होने से चारों का एक ही साथ क्षय होता है और भगवान् मोक्ष में पधार जाते हैं।

इस समुद्घात के पहले समय में केवली भगवान् आत्म-प्रदेशों को बाहर निकाल कर दण्ड बनाते हैं अर्थात् नीचे सातवीं नरकभूमि से लेकर ऊपर लोकान्त तक आत्मप्रदेशों को फैलाते हैं। दूसरे समय में कपाट करते हैं, अर्थात् दक्षिण और उत्तर दिशाओं में प्रदेशों को विस्तृत करते हैं। तीसरे समय में मन्थान करते हैं, अर्थात् पूर्व-पश्चिम दिशा में आत्मप्रदेशों का विस्तार करते हैं, चौथे समय में लोकपूरण करते हैं, अर्थात् कोनों की पूर्ति करके समग्र लोक में प्रदेशों को फैला लेते हैं। पांचवें समय में कोणों का संहरण करते-सिकोड़ते हैं। छठे समय में मन्थान को तथा सातवें समय में कपाट को संहरण करके आठवें समय में दण्ड को भी संहरण करके शरीरस्थ हो जाते हैं।

फिर बतलाया गया है कि पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधर थे। आवश्यकसूत्र में दश गण-धर बतलाए गए हैं, मगर दो गणधर अल्पायु होने के कारण उनकी यहां गणना नहीं की गई है। आठ गणधरों के नाम यह हैं—(१) शुभ (२) शुभघोष (३) वशिष्ठ (४) ब्रह्मचारी (५) सोम (६) श्रीधर (७) वीरभद्र और (८) यशोभद्र।

आठ नक्षत्र ऐसे हैं जो चन्द्रमा के साथ प्रमर्दक योग करते हैं। वे यह हैं–(१) कृतिका (२) रोहिणी (३) पुनर्वसु (४) मघा (५) चित्रा (६) विशाखा (७) अनुराधा और (८) ज्येष्ठा।

इन नक्षत्रों का चन्द्रमा की बराबरी में आ जाना प्रमर्दकयोग कहलाता है।

रत्नप्रभा नामक प्रथम नरकभूमि में किसी-किसी नारक की स्थिति आठ पल्योपम की है। चौथी नरकभूमि में किसी-किसी नारक की स्थिति आठ सागरोपम की है।

असुरकुमार जाति के देवों में कोई कोई देव ऐसे भी हैं, जिनकी आयु आठ पल्योपम की है। सौधर्म और ईशान नामक देवलोकों के भी किसी-किसी देव की आठ पल्योपम की आयु है। पांचवें ब्रह्मलोक नामक देवलोक के किसी-किसी देव की स्थिति आठ सागरोपम की है। जो देवता अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभंकर, चन्द्राभ, सूर्याभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्निराभ, अरिष्टाभ, अरुणाभ और अरुणोत्तरावतंसक नामक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उनकी स्थिति आठ सागरोपम की कही गई है।

आठ सागरोपम की स्थिति वाले देवता आठ पक्ष में अर्थात् चार मास में एक वार श्वासोच्छ्वास लेते हैं और आठ हजार वर्ष में एक वार उनको आहार करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्य जीव आठ भव करके सिद्ध बुद्ध होंगे और दुःखों का अन्त करके निर्वाण प्राप्त करेंगे।

अब शास्त्रकार नौवें समवाय को प्रारम्भ करते हुए फर्माते हैं-ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियां (वाडें) हैं। वे इस प्रकार हैं:-

(१) ब्रह्मचारी यदि पुरुष है तो उसे ऐसे स्थान में नहीं रहना चाहिए जहां स्त्री रहती हो, पशु हों या नपुंसक रहता हो ब्रह्मचारिणी स्त्री हो तो उसे पुरुष, पशु और नपुंसक के संसर्ग वाले स्थान में नहीं रहना चाहिए। ऐसे स्थान में रहने से, विजातीय के प्रति सहज वैकारिक आकर्षण की ओर फलस्वरूप ब्रह्मचर्य भंग की संभावना रहती है। जहां बिल्ली का वास हो वहां चूहों की खैर नहीं है। चूहे कितना ही सतर्क क्यों न रहें, कभी न कभी बिल्ली उन्हें गटक ही जाएगी। इसी प्रकार ब्रह्मचारी अगर ऐसे स्थान पर रहेगा तो कभी न कभी ब्रह्मचर्य से पतित हो जाएगा, ऐसी पूर्ण सम्भावना रहती है।

(२) पुरुष को स्त्री के सम्बन्ध में और स्त्री को पुरुष के सम्बन्ध में अर्थात् उनके शृङ्गार, सौन्दर्य, वेष भूषा एवं विलास आदि के विषय में वार्त्तालाप नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की बातचीत करने से चित्त में विकार उत्पन्न होता है और फलतः ब्रह्मचर्य के नष्ट होने की संभावना उत्पन्न हो जाती है। इस सम्बन्ध में दृष्टान्त दिया जाता है—जैसे नीबू या इमली का नाम लेते ही मुँह में पानी आ जाता है, उसी प्रकार स्त्री की कथा से पुरुष के और पुरुष की कथा से स्त्री के चित्त में विकार उत्पन्न हो जाता है।

मैंने धातकी खण्ड द्वीप के पद्मनाम राजा की बात सुनाई थी। उसके अन्तःपुर में सात सौ रानियां थीं और उन्हें देख कर वह फूला नहीं समाता था। नारदजी पहुँचे तो उसने पूछा—बाबाजी, कहीं अन्यत्र ऐसा अन्तःपुर आपने देखा है? तब नारदजी बोले-राजन्! तुम कूपमण्डूक हो। सौन्दर्य तुमने अभी तक देखा ही कहां है? हस्तिनापुर में पाण्डवपत्नी द्रौपदी है। उसके अप्रतिम सौन्दर्य की तुलना में तुम्हारी रानियां नांचीज हैं। उसके बायें पैर के अंगूठे की बराबरी भी नहीं कर सकतीं। यह सुनते ही पद्मनाभ के चित्त में द्रौपदी को प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हो गई। मगर मानवीय उपाय से उसे प्राप्त करना उसके लिए संभव नहीं था। तब उसने देव की आराधना करके द्रौपदी को अपनी वाटिका में बुलवा लिया। द्रौपदी शीलवती थी। पद्मनाभ उसका तो कुछ बिगाड़ न सका, स्वय ही सर्वनाश का पात्र बन गया। वहां के वासुदेव ने उसे गद्दी से उतार दिया। श्रीकृष्ण और पाण्डव जाकर द्रौपदी को वापिस ले आए। तात्पर्य यह है कि स्त्रियों सम्बन्धी वार्त्ता से विकार की उत्पत्ति होती है।

(३) जहां स्त्री बैठी हो वहां पुरुष को और जहां पुरुष बैठा हो वहां स्त्री को दो घड़ी बाद तक भी नहीं बैठना चाहिए। जैसे घी का घड़ा अग्नि के निकट रहने से पिघल जाता है। इसलिये यह भी विकार का कारण है, अतएव ब्रह्मचारी को इसका सदा खयाल रखना चाहिए।

(४) चौथी बाड़ में बतलाया गया है कि ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री की मनोहर इन्द्रियों का अवलोकन न करे और ब्रह्मचारिणी स्त्री पुरुष की इन्द्रियों को न देखे। मनोहर अंगों को घूर-घूर कर देखने से विकार उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। श्रीदशवैकालिक सूत्र में कहा है:-

अंगपच्चंगसंठाणं चारुल्लवियपेहियं।
इत्थीणं तं न निज्झाए, कामरागविवड्ढणं॥

—दशवै० अ० ८ गा० ५८

अर्थात्-ब्रह्मचारी पुरुष स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग की बनावट को, मनोहर बोली को तथा नजर को न देखे, क्योंकि इससे कामराग की वृद्धि होती है।

जैसे सूर्य की ओर देखने वाले की आंखें खराब हो जाती हैं, उसी प्रकार स्त्री के अंगोपागों को घूरने वाले का चित्त विकृत हो जाता है।

इसी कारण शास्त्र का कथन है—

चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकियं।
भक्खरं पिव दट्ठूणं, दिट्ठिं पडिसमाहरे॥

—दश० अ० ८, गा० ५५

हे साधक ! तू साधना करने को तत्पर हुआ है तो ऐसा

कोई काम तुझे नहीं करना चाहिए, जिससे तेरी साधना भंग हो जाए, अगर दीवार पर स्त्री का चित्र हो तो उसकी ओर भी तू दृष्टि मत डाल, अगर साज-शृङ्गार युक्त स्त्री सामने आ जाए तो उसे भी मत देख, अचानक दृष्टि पड़ जाए तो उसी प्रकार उसे तत्काल हटाले जैसे सूर्य की ओर से तत्काल हटा ली जाती है।

(५) पांचवीं वाड़ है—भोजन संबंधी विवेक, रसनेन्द्रिय और भोजन के साथ ब्रह्मचर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव ब्रह्मचारी को ऐसा भोजन नहीं करना चाहिए जिससे ब्रह्मचर्य की साधना में बाधा पहुंचे, जो पुरुष सदा सरस और गरिष्ठ भोजन करता है, जिससे बल-वीर्य की विशेष वृद्धि होती हो, उसके चित्त में कामवासना उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती, और ऐसी स्थिति में ब्रह्मचर्य का भंग होना स्वाभाविक ही है। जैसे कोई रोगग्रस्त दुर्बल व्यक्ति गरिष्ठ भोजन करता है तो बीमारी बढ़ जाती है और जीवन का अन्त आ जाता है, अथवा जैसे आग में ईंधन डालने से अधिक प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार प्रणीत-रस भोजन करने से विकार वृद्धि होती है।

(६) ब्रह्मचारी पुरुष को ठूंस ठूंस कर आहार नहीं करना चाहिए, अधिक मात्रा में भोजन करने से विकारों की जागृति होती है, बंदूक में ठूंस-ठूंस कर बारूद भरा जाएगा तो वह फट

जाएगी। इसी प्रकार अति मात्रा में भोजन-पान करने से भी ब्रह्मचर्य की हानि होती है।

(७) ब्रह्मचारी पूर्वभुक्त कामभोगों का स्मरण न करे, साधक जीवन अंगीकार करने से पहले गृहस्थावस्था में की हुई कामक्रीड़ा का स्मरण करने से विकार जागृत होता है और ब्रह्मचर्य की साधना में बाधा उपस्थित होती है, जिनपाल और जिनरक्ष इसके उदाहरण हैं।

चम्पा नगरी के जिनपाल और जिनरक्ष जब बारहवीं बार जहाज द्वारा धनोपार्जन के लिए जाने लगे तो माता-पिता ने बहुत मना किया, कहा—बारहवीं बार समुद्र यात्रा करना संकट-जनक होता है और धन की अपने यहां कमी नहीं है, अतएव कहा मानो, मत जाओ, किन्तु वे न माने और जहाज में माल लादकर चल पड़े। कहा भी है—

> कहा किसका माने नहीं, राखे अपनी टेक।
> बिगड्या पीछे यूं कहे, लिख्या विधाता लेख॥

जो हित की बात कहने पर भी बड़ों की बात नहीं मानता, उसे आखिर संकट में पड़ना पड़ता है और पश्चाताप करना पड़ता है, आखिर वह विधाता को कोसता है।

तो दोनों भाई समुद्र में चल रहे थे कि अचानक तूफान आया और जहाज डूब गया, किसी प्रकार वे दोनों भाई लकड़ी

के पाटिये के सहारे किनारे लग गए, जिस द्वीप में वे किनारे लगे, वहां रयण देवी नामक एक देवी रहती थी। वह उनके यौवन और सौन्दर्य पर ललचा गई, दोनों को अपने भवन में ले गई और ऐश आराम करने लगी।

देवी का काम समुद्र की सफाई करने का था। एक दिन उसने कहा—मैं जा रही हूँ। तुम आनन्द से यहां रहना। मन न लगे तो पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा के उद्यानों में घूमने को चले जाना, परन्तु याद रखना, दक्षिण में मत जाना। वहां काला सांप रहता है और भयंकर फुंकार मारता है।

देवी चली गई। दोनों भाई पूर्वदिशा के बाग में गए। घूमते रहे। वहां से मन ऊबा तो उत्तर दिशा के बगीचे में जा पहुंचे। फिर पश्चिम दिशा के बाग में जाकर दिल बहलाने लगे। वहां खूब घूमे-फिरे। फिर तबियत ऊबी तो सोचा—दक्षिण दिशा में भी चलना चाहिए। यद्यपि देवी ने वहां जाने की मनाई की है, फिर भी देखना चाहिए कि उधर क्या है।

जहां पर्दा रहता है, वहां देखने की उत्कंठा अधिक पाई जाती है। मानवस्वभाव रहस्यभेद करने को उत्कंठित रहता है। देवी के मना करने के कारण उनकी देखने की इच्छा और भी तीव्र हो गई। वे उस ओर चल पड़े। जाकर देखा, हड्डियों का ढेर लगा है। आगे बढ़े तो शूली पर चढ़ा एक मनुष्य दिखाई

दिया। जाकर पूछा-भाई, तुम कौन हो? कैसे यहां आए? यह हालत क्यों हुई?

उसने अपनी कथा सुनाई-मैं भी रयणा देवी के चंगुल में फँस गया था। बहुत दिनों तक उसके साथ भोग-विलास करता रहा। जब उसके काम का न रहा तो उसने यह हाल कर दिया है। अगर तुम समय पर सावधान न हुए तो तुम्हारा भी यही हाल होने वाला है।

उस मनुष्य का वृत्तान्त सुन कर दोनों भाई घबरा उठे। मौत उनकी दृष्टि के सामने नाचने लगी। फिर उन्होंने पूछा-भाई, यहां से बच निकलने का कोई उपाय भी है?

उस पुरुष ने कहा-पूर्वदिशा के उद्यान में यक्ष का मन्दिर है। वह खास-खास तिथियों में प्रकट होता है और कहता है-'किसको तारूँ? किसको पार उतारूँ?' तुम वहां चले जाओ। वह आज प्रकट होने वाला है। जब वह उक्त शब्द कहे तो तुम कह देना-हमको तारो, हमको पार उतारो।

वे उस पुरुष का उपकार मान कर यक्षायतन में गए। स्नान करके तथा फल-फूल लेकर पहुंचे। यक्ष प्रकट हुआ तो दोनों भाइयों ने पूर्वोक्त कथनानुसार तारने और पार उतारने की प्रार्थना की। तब यक्ष बोला-देखो मैं तुम्हें तार दूँगा, मगर मेरी एक शर्त है। उसका पालन करना होगा।

दोनों ने कहा—देव ! आपकी प्रत्येक आज्ञा हमें शिरो-धार्य होगी।

तब यक्ष ने कहा—देखो, रास्ते में रयणा देवी तुमको ललचाने की भरसक कोशिश करेगी। स्त्रियों के सभी हथकंडे आजमाएगी। मीठी-मीठी प्रेम की बातें कहेगी। तुम्हारे चित्त को आकर्षित करने के लिए रोने का ढोंग करेगी, करुण विलाप करेगी। मगर तुम ललचाना मत। हृदय को दृढ़ करके उसकी ओर देखना ही नहीं। दिल को कठोर कर लेना। अगर तुम लालच में आ गए, उसकी ओर देखने लगे तो पार न हो सकोगे। मैं अपनी पीठ से तुम्हें समुद्र में ही गिरा दूँगा और रयणा देवी तुम्हें जिंदा न बचने देगी।

दोनों ने कहा—देव ! हम हर्गिज उसके बहकावे में न आएंगे।

यक्ष ने अश्व का रूप धारण किया और दोनों उसकी पीठ पर सवार हो गए। वह उन्हें चम्पानगरी की ओर ले जाने लगा।

इधर रयणा देवी अपना काम पूरा करके अपने स्थान पर आई तो देखा-दोनों भाई गायब हैं। तब उसने अवधिज्ञान का प्रयोग करके जान लिया कि यक्ष की सहायता से वे समुद्र में जा रहे हैं। यह मालूम होते ही वह नंगी तलवार लेकर उधर गई और दोनों के पास पहुँची। उसने रोना-धोना और विलाप

करना आरम्भ किया। कहने लगी-मुझ निरपराधिनी को क्यों यों छोड़ कर जा रहे हो? दो बात करके जाते तो क्या बिगड़ जाता? मुझे भी साथ लेते चलो। मैं तुम्हारे विरह में कैसे जीवित रहूंगी? मेरे प्रेम को ठुकरा कर तुम्हारा इस प्रकार चला जाना क्या उचित है? अजी, एक वार मेरी ओर देख तो लो। इतने से ही मेरे दिल को सन्तोष हो जाएगा। जिससे प्रेम किया उसके प्रति इतनी निष्ठुरता पुरुषों को शोभा नहीं देती।

मगर यक्ष के कथनानुसार दोनों भाई मजबूत रहे। उन्होंने देवी के विलाप पर ध्यान नहीं दिया। देवी ने देखा कि इस प्रकार काम नहीं बन रहा है तो भेदनीति अंगीकार की। वह रोने का ढोंग करती हुई जिनरक्ष का नाम लेकर कहने लगी-हे जिनरक्ष! मेरे प्रियतम! जिनपाल तो मुझे पहले भी नहीं चाहता था और मैं भी उसे नहीं चाहती थी. मगर तुम्हें तो मैंने अपना हृदय ही सौंप दिया है। तुम तो कठोर मत बनो। एक ही वार प्रेमभरी नजर से मेरी ओर देख लो ताकि आसानी से मेरे प्राण निकल जाएँ।

इस प्रकार का अनुरोध सुन कर जिनरक्ष का हृदय चलायमान हो गया। वह देवी के झांसे में आ गया और यक्ष की हिदायत को भूल गया। उसने देवी की ओर दृष्टि डाली और उसी समय यक्ष ने उसे अपनी पीठ से गिरा दिया। देवी ने उसे

अपनी तलवार की नोंक पर झेला और उसी समय यमलोक पहुंचा दिया ।

अपने भाई की यह दुर्दशा देखकर जिनपाल अपने विचारों पर और अधिक दृढ़ हो गया। देवी ने जिनरक्ष को खत्म करके पुनः जिनपाल का पीछा किया। वह बार बार अत्यन्त करुण विलाप करने लगी और जिनपाल को फुसलाने लगी। मगर जिनपाल टस से मस नहीं हुआ। आखिर निराश होकर देवी लौट गई। यक्ष ने उसे चम्पानगरी के बहिर्वर्ती उद्यान में लाकर छोड़ दिया।

जिनपाल अत्यन्त उदासभाव से घर पहुंचा और पारिवारिक जनों को अपने संकट का समग्र वृत्तान्त सुनाकर रुदन करने लगा। उसने कहा—पिताजी, इस सब विपत्ति का कारण आपकी आज्ञा को स्वीकार न करना ही है। आपके मना करने पर भी कुबुद्धि से प्रेरित होकर हम समुद्रयात्रा पर चल पड़े और अपने प्राणप्रिय सहोदर भाई को गँवा दिया। एक कवि ने कहा है:—

जिनरख जिनपाल रयण द्वीप आए चाल,
रयण देवी तणी जाल तेमां ते फंसाया है।
सेलक सरण लियो सुर लेई चाल्यां तब,
देवी आई हाव-भाव करी ललचाया है।

जिनरक्ष मोहवश मारियो बदकबीच,
जिनपाल मोहजाल तोड़ घर आया है।
ऐसे मुनि मोहबंध बंधत कुगत जाय,
मोह के बिछोह किये सुगति सिधाया है।

श्रीज्ञातासूत्र के नवम अध्ययन में यह वृत्तान्त वर्णित है, भगवान् फर्माते हैं—हे साधको! जैसे जिनरक्ष कामभोग के चक्कर में पड़कर मृत्यु को प्राप्त हुआ, उसी प्रकार जो साधक सांसारिक विषयभोगों में गृद्ध होगा, उसे जन्म-मरण के चक्र में पड़ना पड़ेगा, जो मोहग्रस्त न होगा और अपने नियमों पर अडिग रहेगा वह मुक्ति प्राप्त कर लेगा, इस प्रकार इस दृष्टान्त के द्वारा संसार के समस्त प्राणियों का पथप्रदर्शन किया गया है।

पूज्य श्रीलालजी म० के निकट धन्नाजी नामक एक श्रावक ने दीक्षा अंगीकार की थी, भगवान महावीर के समय में भी एक धन्ना अनगार हो चुके हैं जो जैनजगत् में विख्यात हैं, तो इन धन्ना मुनि ने विचार किया—भगवान् के समय के धन्ना अनगार तो बेले बेले ही तपस्या करते थे, परन्तु मैं पचोले-पचोले पारणा करता हूं। किन्तु पुरानी बातों को स्मरण करने के कारण वे संयम से गिर गए और गृहस्थ हो गए, अतएव ब्रह्मचारी पुरुष को पूर्वयुक्त भोगों का स्मरण नहीं करना चाहिए।

(८) ब्रह्मचर्य की आठवीं वाड़ है-शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श रूप इन्द्रियविषयों में अनुराग न होने देना, जिसके हृदय में विषयानुराग का विष विद्यमान होगा, वह विशुद्ध संयम का पालन नहीं कर सकता। उसके ब्रह्मचर्य में पद-पद पर विघ्न आने की संभावना रहती है।

(९) ब्रह्मचर्य की पालना के लिए सुखशीलता और साज-शृङ्गार आदि का भी त्याग करना आवश्यक है। कहा भी है—

न्हाना धोना जो करे, ते तो भोगी छैल।
ब्रह्मचारी जोगी जती, इनका गहणा मैल॥

अर्थात्—ब्रह्मचारी को नहाना धोना और शरीर की शुश्रूषा नहीं करना चाहिए। यह तो भोगी जनों के काम है। जो ब्रह्मचर्य की साधना में निरत है, जोगी है और यति है, मैल तो उसका आभूषण है।

स्नान कामवर्धक व्यापार माना गया है और वह शृंगार का एक अंग है, अतएव ब्रह्मचारी पुरुष को ऐसी समस्त सुख साता से बचना चाहिए, जो ब्रह्मचर्य में बाधक है। जैसे रंक आदमी रत्न की रक्षा नहीं कर सकता।

इन नौ वाड़ों की रक्षा पर ही ब्रह्मचर्य की रक्षा निर्भर है। जैसे खेत की रक्षा के लिए वाड़ के बिना काम नहीं चलता, इसी

प्रकार ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए इन बाड़ों की आवश्यकता होती है। खेत की रक्षा एक ही मजबूत बाड़ से हो सकती है, मगर ब्रह्मचर्य इतना उत्कृष्ट धर्म है कि उसकी रक्षा के लिए नौ बाड़ों की आवश्यकता होती है। इन बाड़ों की रक्षा करके जो ब्रह्मचर्य की रक्षा करता है, वही सम्यक् प्रकार से चारित्र का पालन कर सकता है।

ब्रह्मचर्य का प्रभाव अद्भुत है। देवता भी ब्रह्मचारी के चरणों में प्रणाम करके अपने आपको कृतार्थ समझते हैं, ब्रह्मचर्य से अनेक प्रकार की चामत्कारिक ऋद्धियां अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। उसे वचन सिद्धि प्राप्त होती है, उसके चेहरे पर अपूर्व तेज देदीप्यमान होता है, मगर ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल स्पर्शेन्द्रिय के भोग का त्याग नहीं, वरन् समस्त इन्द्रियों के विषयों से विरत होकर आत्मनिष्ठ बनना है. जो इस प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे, उनका भवसागर से निस्तार होगा।

अमरसेन-वीरसेन चरित–

यही तत्त्व चरित के द्वारा आपके सामने रक्खा जा रहा है। कल बतलाया गया था कि तोती के अनुरोध से तोता दो गुठलियां लाया और उन्हें वीरसेन के पास गिरा कर बोला–जो एक गुठली खाएगा उसे सातवें दिन राज्यप्राप्ति होगी और जो दूसरी खाएगा उसे प्रतिदिन पांच सौ मोहरें मिलेंगी।

वीरसेन ने वह दोनों गुठलियां उठा कर अपने पास रख लीं। सूर्योदय होने पर उसने अमरसेन को जगाया और कहा—भैया, उठो। अपने को आगे चलना है। तैयार हो जाओ। यद्यपि पता नहीं कि किधर और कितनी दूर चलना है, तथापि चलना तो होगा ही।

अमरसेन जाग गया तो वीरसेन ने कहा—'इसी वृक्ष के वासी एक शुकयुगल ने हमारे ऊपर अनुकम्पा करके यह दो गुठलियां दी हैं।' यह कह कर उसने वह दोनों गुठलियां उसे दिखलाईं और दोनों के गुण भी बतलाए।

भाइयो! दोनों भाइयों में घनिष्ठतर स्नेह था, यही कारण है कि एक भाई ने दूसरे से कुछ भी पर्दा न रक्खा और उन गुठलियों का यथार्थ गुण उसे बतला दिया। अन्यथा यह माया ऐसी ठगिनी है कि इसके पीछे लग कर भाई भाई के साथ धोखा करता है, भाई भाई से लड़ता-झगड़ता है, भाई भाई के प्राणों का ग्राहक बन जाता है। मगर वीरसेन-अमरसेन कुल-सम्पन्न और पुण्यशील भाई थे। उनके चित्त में किसी प्रकार की दुविधा या पापभावना नहीं थी। इसी कारण कुछ भी गोपन न करके एक ने दूसरे पर सारा रहस्य प्रकट कर दिया।

तत्पश्चात् इन्होंने एक-एक गुठली खा ली और दोनों आगे की राह तय करने को चल पड़े। जब वह वहां से रवाना होने

लगे तो गुरुयुगल के प्रति उनके अन्तःकरण में असीम कृतज्ञता का भाव विद्यमान था।

दोनों भाई अज्ञात और अनिर्दिष्ट पथ पर चल पड़े। चलते-चलते मध्याह्न हो गया मगर अटवी का अन्त नहीं आया। सूर्य मस्तक पर तप रहा था और धरती पैरों के तलुवे तपा रही थी। फिर भी दोनों कुमार विवश हो चलते जा रहे थे। समय ही ऐसा आ पड़ा था। करते तो क्या करते ? कहा है—

समय विचारी कीजिए, तजिए मन की खोट।
जैसो बाजै वायरो, वैसी लीजे ओट॥

कोई कहता है—मैं कभी पैदल नहीं चला। मगर काल क्या सदैव समान रहता है ? कभी नहीं चले तो अब चलना पड़ेगा। समय के अनुसार चलने वाला ही विजयी होता है। समय का अतिक्रमण करना जीवन का अतिक्रमण करना है।

हम जब ब्यावर में थे तो रतलाम के सेठ सूरजमलजी दर्शनार्थ आए। उन्होंने दीक्षा देने की प्रार्थना की। मन्त्री श्री शेषमलजी म० ने फर्माया—अच्छी तरह सोच-समझ लो सेठजी ! यह सौदा जिंदगी भर का है। जीवन में आमूलचूल परिवर्त्तन करना पड़ेगा।

सेठजी ने अविचल भाव से कहा—मैंने खूब सोच-विचार कर लिया है। आप मुझे दीक्षित कर लीजिए।

आखिर सेठजी दीक्षित हो गए। वह दीक्षा लेने से पूर्व एक मील भी पैदल नहीं चले थे, मगर साधु बने तो दस-दस मील भी चलना पड़ा। साधुओं का तो बिना पैदल चले काम ही नहीं चलता।

तो इन बेचारे राजकुमारों को भी कब पैदल चलना पड़ा था। मगर आज ऐसा ही अवसर आ पड़ा। जब चलते-चलते बहुत थक गए तो उन्होंने सोचा—मध्याह्न हो आया है और थकावट बहुत हो गई है, अतः अब यहीं कहीं विश्राम कर लेना चाहिए।

जो राजकुमार धूप को देख कर ही कुम्हला जाते थे, वे मध्याह्न की प्रखर धूप को कहां तक सहन करते? उनके चेहरे मुरझा गए थे, गला सूख आया था, पैर जवाब दे रहे थे। उन्होंने दूर-दूर तक दृष्टि फैलाई कि आस-पास में कहीं कोई बस्ती दिखाई दे तो कुछ खाने-पीने का भी जुगाड़ हो जाय, मगर उन्हें निराश होना पड़ा। पास में कहीं मानव का चिह्न तक नजर न आया। अब वह सोचने लगे कि क्या करें, कहां जाएँ और किस प्रकार उदर की मांग पूरी करें?

भाइयो! मनुष्य कहीं भी क्यों न चला जाय, पाप-पुण्य उसके साथ ही रहता है। कुमारों के पुण्य ने जोर मारा तो जंगल में भी मंगल की दृष्टि का उपक्रम होने लगा। जिस जगह कुमार रुक रहे थे, वहां का अधिपति एक देव था। सहसा उसका

उपयोग कुमारों की ओर गया और वह सोचने लगा—यह सुकुमार राजकुमार किसी दुःख के मारे मेरे क्षेत्र में आ गए हैं और भूख-प्यास से पीड़ा पा रहे हैं। थकावट से चूर-चूर हो रहे हैं। मेरा कर्त्तव्य है कि इन्हें ऐसे स्थान पर पहुँचा दूँ कि इन्हें भोजन-पानी मिल जाए और इनके तात्कालिक संकट का अन्त आ जाए। इन्हें शान्ति और विश्रान्ति मिले।

इस प्रकार विचार कर दयावान् देव ने दोनों कुमारों को अपने कन्धों पर विठा कर सिंहलपुर नामक नगर के बाहर पहुंचा दिया। यह सब काम आनन फानन हो गया। यहां तक कि कुमारों को भी आभास न हो सका कि हम कहां जा रहे हैं और कौन हमें ले जा रहा है ? परन्तु सहसा विजन वन से निकल कर नगर के सन्निकट आकर वे चकित और विस्मित हो गए। कुछ समझ में न आया कि अकस्मात् क्या हो गया ? मानों यकायक सृष्टि पलट गई हो और जंगल मिट कर भव्य नगर का निर्माण हो गया हो।

वे जहां लाकर छोड़े गए थे वहां एक सुन्दर उद्यान था और उसी से लगा हुआ एक सुरम्य सरोवर था। यह सब देख कर दोनों कुमारों में नवजीवन का संचार हो उठा। उन्हें अत्यन्त सान्त्वना मिली। वे आपस में कहने लगे—हम लोग किस भारी प्राणसंकट में फँसे थे। मगर अचानक उस संकट से हमारा उद्धार हो गया। भाग्य हमारा साथ दे रहा है। अब चिन्ता

करने का कोई कारण नहीं है। मुसीबतों का सघन कोहरा छँट रहा है और प्रकाश की धूमिल रश्मियां चमकती प्रतीत हो रही हैं।

आखिर दोनों ने निश्चय किया—सरोवर पर चल कर हाथ-पैर धो डालें और थोड़ा पानी पी लें। इससे थकावट मिट जाएगी और शान्ति हो जाएगी। जब यह अतर्कित परिवर्त्तन हो गया है तो भोजन-पानी का जुगाड़ भी हो जाएगा। नगर में चलने से कोई रास्ता निकल ही आएग।

दोनों कुमार सरोवर के तट पर पहुंचे और हाथ मुंह धोकर विश्राम करने का विचार करने लगे। इतने में ही बड़े भाई को अचानक एक खयाल आ गया। उसने कहा—भाई, सरोवर में स्नान कर लें और कुल्ला करें। कुल्ला करने से अगर पांच सौ मोहरें निकलेंगी, जैसा कि उस शुक ने कहा था, तो सहज ही सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

किस प्रकार अमरसेन के कुल्ला करने पर पांच सौ मोहरें निकलती हैं और किस प्रकार वे खाने-पीने की व्यवस्था करते हैं और आगे क्या घटनाएं घटित होती हैं, यह आगे सुनने से विदित होगा।

भाइयो ! कुमारों को जो अचानक और अचिन्तित सहायता प्राप्त हुई, वह उनके पुण्य का फल है। यह समझ कर पाप से बचो और पुण्य का संचय करो। आपको भी सुख की प्राप्ति होगी।

केन्टोनमेंट बैंगलोर
२३-९-४९

निर्लोभता



प्रार्थना

ह्रीँश्रीँकारवरं नमोऽक्षरपरं ध्यायन्ति ये योगिनो,
हृत्पद्मे विनिवेश्य पार्श्वमधिपं चिन्तामणिसंज्ञकम् ।
भाले वामभुजे च नाभिकरयोर्भूयो भुजे दक्षिणे,
पश्चादष्टदलेषु ते शिवपदं द्वित्रैर्भवैर्यान्त्य हो ॥८॥

卐卐

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र अथवा किं कर्पूरमय-स्तोत्र का यह आठवां पद्य है। इस पद्य में भगवान् श्री पार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज ने ध्यान की महिमा का भी दिग्दर्शन कराया है।

आचार्य कहते हैं—जो योगी जन अपने हृदयकमल में 'चिन्तामणि' संज्ञा से विभूषित श्री पार्श्वनाथ भगवान् को स्थापित करके 'ह्रीं श्रीं नमः' इस मन्त्र का ध्यान करते हैं, तथा ललाट में,

बाईं भुजा में, नाभि में, हाथ में, दाहिनी भुजा में और अष्टदल कमल में ध्यान करते हैं, वे दो या तीन भावों में मुक्तिपद प्राप्त कर लेते हैं।

यहां आचार्य महाराज के कहने का आशय यही है कि वीतराग देव का ध्यान मुक्ति का प्रधान कारण है। इधर-उधर भटकती हुई चित्तवृत्ति को किसी एक वस्तु पर स्थिर कर लेना ध्यान है। ध्यान में अपूर्व और अद्भुत शक्ति समाई हुई है। चौथे समवाय में ध्यान का वर्णन करते समय चार प्रकार के ध्यानों का कथन किया गया था। उनमें से आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान अप्रशस्त हैं, अतएव हेय हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान ही मुमुक्षु जनों के लिए उपादेय हैं। धर्मध्यान का वर्णन करते हुए आचार्यों ने उसके नाना प्रकार से भेद प्रभेद बतलाए हैं। ध्येय के भेद से धर्मध्यान के चार भेद कहे गए हैं–(१) पिण्डस्थ (२) पदस्थ (३) रूपस्थ और (४) रूपातीत। कहा भी है:—

पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं, पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम्।
रूपस्थं सर्वचिद्रूपं, रूपातीतं निरञ्जनम् ॥

पिण्डस्थध्यान में अपने शरीर में पार्थिवी, जलीय, आग्नेयी, आदि धारणाओं का चिन्तन किया जाता है। पदस्थ-ध्यान में णमोकारमन्त्र का 'अ-सि-आ-उ-सा'; 'ओं अर्हं' इत्यादि विविध प्रकार के पदों का चिन्तन किया जाता है। रूपस्थ ध्यान

अर्हन्त भगवान् का होता है। और निरंजन निराकार सिद्ध भगवान् का ध्यान रूपातीत ध्यान कहलाता है।

ध्यान का वर्णन करने के लिए आचार्यों ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। वस्तुतः ध्यान आत्मिक साधना का प्रमुख अंग है। ध्यान के प्रभाव से आत्मा निर्मल और नीरज बन जाता है। हृदय में समभाव की सुधा का प्रवाह बहाने का ध्यान ही सर्वोत्तम साधन है। यही कारण है कि जिनागमों में साधुओं को प्रतिदिन ध्यान करने का विधान किया गया है।

ध्यान का फल मुक्ति है और वह भी लम्बे समय में नहीं परन् शीघ्र, अधिक से अधिक दो-तीन भवों में ही प्राप्त हो जाती है। मगर ध्यान के साथ सच्चे संवेग की आवश्यकता है। श्रीउत्तराध्ययनसूत्र के उनतीसवें अध्ययन में, जहां ७३ बोलों की पृच्छा की गई है, वहां कहा गया है—

प्रश्न—संवेगेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उत्तर—संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ। अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ। अणंताणुबंधिकोहमाणमाया लोभे खवेइ। नवं च कम्मं न बंधइ। तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ। दंसणविसोहिए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं

सिज्झइ। विसोहिए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गं, हणं नाइक्कमइ।

प्रश्न–भगवान्! इस जीव को संवेग से किस लाभ की प्राप्ति होती है?

उत्तर–संवेग का सर्वप्रथम लाभ है–सर्वोत्तम धर्म श्रद्धा की प्राप्ति। जब इस प्रकार की धर्मश्रद्धा प्राप्त होती है तो शीघ्र ही संवेग बढ़ जाता है। संवेग के प्रभाव से जीव अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करने में समर्थ हो जाता है। नवीन कर्मों के बन्ध को रोक देता है और तत्कारणिक मिथ्यात्व की विशुद्धि करके दर्शन का आराधक बन जाता है। दर्शनविशुद्धि जब अपने उत्तम स्वरूप को प्राप्त होती है तो कोई-कोई जीव उसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। अगर उस भव में मोक्ष प्राप्त न कर सके तो तीसरे भव में तो मोक्ष टलता ही नहीं है।

संवेग का अर्थ है-सम्यक्-प्रशस्त-अनुकूल वेग। जैसे पानी का वेग सब को बहा कर ले जाता है, कूड़े-कचरे को धो देता है; उसी प्रकार जब आत्मा में प्रशस्त वेग उत्पन्न होता है तब आत्मा बड़ी शीघ्रता के साथ अभ्युदय के पथ पर अग्रसर होता है। उसके अप्रशस्त काम क्रोध आदि के वेग नष्ट हो जाते हैं। और जब संवेग उत्पन्न हो जाता है तो शीघ्र मुक्ति-प्राप्त होना

स्वाभाविक ही है। ऐसा प्रशस्त वेगवान् महात्मा या तो उसी भव में पूर्ण विशुद्धि प्राप्त कर लेगा अथवा बीच में एक भव देवलोक का करके पुनः मनुष्य भव में आकर मोक्ष प्राप्त कर लेगा।

मगर आवश्यकता है संवेग जगाने की। अभी तो यह आत्मा अनादिकालीन कुसंस्कारों के अधीन हो कर कुवेगों के प्रवाह में बह रहा है और अधोगतियों का अतिथि बन रहा है। उस कुवेग की दिशा बदल कर संवेग के रूप में परिणत करना आवश्यक है। यही साधना का उद्देश्य है। चाहे श्रावक हो या साधु, उसका लक्ष्य यही होना चाहिए कि मेरा जो वेग विपरीत दिशा में बहा जा रहा है, वह ठीक दिशा में कैसे बहने लगे? खास तौर से मन की गति उचित दिशा में कैसे बढ़े? अगर मन के वेग ने ठीक दिशा पकड़ ली तो वचन और काय तो उसके अनुचर हैं। वे अनायास ही अपने मार्ग को बदल लेंगे।

तो भगवान् का स्तवन और ध्यान संवेग को उत्पन्न करने के अमोघ उपाय हैं। शुद्ध और श्रद्धामय चित्त से परमात्मा का आराधन करने वाले कृतकृत्य हो जाते हैं। संसार के सभी विवेकशील प्राणी यही चाहते हैं कि शीघ्र से शीघ्र हमारे दुःखों का अन्त हो और हमें अव्याबाध सुख की प्राप्ति हो। परन्तु इस चाह के साथ परमात्मा की प्रार्थना में हृदय को संलग्न करना चाहिए। तब निश्चय ही इस जीव को कल्याण की प्राप्ति होगी।

समवायांगसूत्र—

समवायांग सूत्र के आधार से भी यही बात आपको समझाना चाहता हूं कि यह आत्मा किस प्रकार जन्म-मरण के चक्कर से निकल कर मोक्ष प्राप्त कर सकती है।

कल ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों के विषय में बतलाया जा चुका है। उन गुप्तियों से विपरीत नौ अगुप्तियां हैं। जैसे पहली गुप्ति स्त्री, पशु और नपुंसक के संसर्ग वाले मकान में नहीं रहना बतलाया गया है। इससे विरुद्ध ऐसे स्थान में रहना अगुप्ति है, और इससे ब्रह्मचर्य के भंग होने की संभावना रहती है, क्योंकि संसर्ग गुणों और दोषों का सबल साधन है। इसी प्रकार स्त्रियों के सम्बन्ध में बातें करने से, जहां स्त्री बैठी हो वहां बैठने से, स्त्री के अंगोंपांगों को नजर गड़ा कर देखने से, पड़ौस में होने वाली दम्पतियों के अनुरागजनक वार्त्तालाप को सुनने से, पूर्वभुक्त कामभोगों का स्मरण करने से, बल वीर्यवर्धक आहार करने से, ठूंस ठूंस कर खाने से तथा शरीर का साज शृङ्गार करने से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। यह नौ बातें ऐसी हैं जो ब्रह्मचर्य की साधना में विघ्न हैं और साधक को पतित करने वाली हैं। अतएव जो ब्रह्मचर्य को सर्वार्थसाधक महानिधि के समान समझता है, उसे इन नौ अगुप्तियों से दूर ही रहना चाहिए और गुप्तियों का पालन करना चाहिए।

तत्पश्चात् बतलाया गया है कि आचारांगसूत्र के ब्रह्मचर्य-श्रुत नामक प्रथम श्रुतस्कंध में नौ अध्ययन हैं। उनमें से पहले अध्ययन का नाम शस्त्रपरिज्ञा है। उसके प्रथम उद्देशक में आत्मा के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए बतलाया गया है कि इस जगत् के अनेक जीवों को यही पता नहीं है कि मेरी आत्मा अर्थात् मैं कहां से आया हूं कहां जाऊँगा या आत्मा का पुनर्जन्म होता भी है या नहीं? इसमें पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय के जीवों की किस प्रकार घात की जाती है, यह बतलाया गया है। यहां घात के छह निमित्त कहे गए हैं-(१) इस अनित्य जीवन की रक्षा के लिए (२) प्रशंसा के लिए (३) मान-सम्मान के लिए (४) पूजा-यज्ञ आदि के लिए (५) भोजन के लिए या (६) जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए तथा दुःख का प्रतीकार करने के लिए। परन्तु विवेकी जनों को उचित है कि वे किसी जीव की घात न करें और दूसरे के दुःख को अपना ही दुःख समझें।

दूसरा अध्ययन लोकविजय है। यह जो संसार है और पांचों इन्द्रियों के विषय हैं वही लोक है। लोक के जीव समझते हैं कि यह माता, पिता, भाई, बहिन, हाथी, घोड़े आदि मेरे हैं। जीव इनके प्रति ममत्वभाव धारण करके प्रवृत्ति कर रहा है। इनकी प्राप्ति के लिए षट्काय के प्राणियों का घात करता है। अपार भविष्य में इसके लिए यह अहितकर है, अतएव लोक

अर्थात् इन्द्रियों और उनके विषयानुराग पर विजय प्राप्त करना चाहिए।

तीसरा शीतोष्णीय अध्ययन है, जिसमें प्रतिपादन किया गया है कि साधना के दुर्गम पथ पर प्रयाण करने वाले साधक को फूलों पर कण्टकों पर चलना पड़ता है। उसके सामने सर्दी-गर्मी आदि के अनेक कष्ट मुख फाड़े खड़े रहते हैं। उसे उनसे उद्विग्न नहीं होना चाहिए। घबरा कर, निराश होकर, क्लान्त होकर स्वीकृत पथ से विमुख नहीं होना चाहिए। सुख-दुःख का समानभाव से स्वागत करना चाहिए।

चौथा सम्यक्त्व-अध्ययन है, इसमें बतलाया गया है कि जितने भी अतीत काल में तीर्थंकर हुए हैं, वर्त्तमान में हैं—महाविदेह क्षेत्र में विचर रहे हैं और भविष्य में होंगे, उन सब का यही उपदेश था, है और होगा कि किसी भी जीव की हिंसा मत करो, प्राणी मात्र की रक्षा करो, यही शुद्ध और शाश्वत धर्म है।

इसके अतिरिक्त पांचवां आवंती, छठा लोकसार अथवा धूताख्य, सातवां मोक्ष, आठवां उपधानश्रुत और नौवां महापरिज्ञा अध्ययन है।

पुरुषादानीय अर्थात् जगत् के पुरुषों में ग्राह्य स्वरूप वाले भगवान् पार्श्वनाथ की काया नौ हाथ ऊँची थी।

अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद उत्तरा भाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी, यह नव नक्षत्र नव मुहूर्त से कुछ अधिक समय तक चन्द्रमा के साथ उत्तर में योग करते हैं।

इस रत्नप्रभा नाम की पृथ्वी के बिलकुल सम और रमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन की ऊँचाई तक तारामंडल घूमता है। तात्पर्य यह है कि इस भूमि के समतल भाग से ७९० योजन ऊपर तारे हैं, उनसे दस योजन ऊपर सूर्य है, उससे अस्सी योजन ऊपर चन्द्रमा है, फिर चार योजन ऊपर नक्षत्र, उससे चार योजन ऊपर बुध, उससे तीन योजन ऊपर शुक्र, उससे तीन योजन ऊपर गुरु, उससे तीन योजन ऊपर मंगल और उससे तीन योजन ऊपर शनैश्चर माना गया है। इस प्रकार कुल ११० योजन के विस्तार में समस्त ज्योतिश्चक्र का समावेश हो जाता है. इस नौ सौ योजन की ऊंचाई पर मध्यलोक का अन्त आ जाता है और आगे ऊर्ध्वलोक प्रारम्भ हो जाता है।

यहां एक बात स्मरण रखने योग्य है। जैन सिद्धान्त के अनुसार शाश्वत वस्तुओं का नाप दो हजार कोस के योजन से होता है। यहां जिस योजन का कथन है, वह भी इसी हिसाब से समझना चाहिए।

आगे बतलाया गया है कि जम्बूद्वीप के अन्दर नौ योजन

के लम्बे मत्स्य ही लवणसमुद्र में से आते हैं। यद्यपि मत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन की मानी गई है और लवणसमुद्र में पांच सौ योजन तक के मत्स्य होते हैं, तथापि जम्बूद्वीप की जगती का जो नाला है, उसका छिद्र इतना बड़ा नहीं होता कि नौ योजन से अधिक अवगाहना वाले मत्स्य आ सकें, यों तो इस मध्य लोक में असंख्यात समुद्र हैं; मगर कच्छ मच्छ वाले समुद्र तीन ही हैं-लवणसमुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वयंभूरमण नामक अन्तिम समुद्र।

भाइयो ! शास्त्रों में अनेक विषयों का प्रतिपादन है जिनके विषय में हमारी बुद्धि और तर्क का प्रवेश हो सकता है और उन पर तर्क से विचार किया भी जाता है। परन्तु कुछ बातें ऐसी भी हैं जो तर्कगोचर नहीं होतीं। उनको आगम के प्रामाण्य के आधार पर ही स्वीकार करना चाहिए। जो वीतराग और सर्वज्ञ हैं, उनके कथन में कोई दोष नहीं आ सकता। वह मिथ्या नहीं हो सकता। सर्वज्ञ की वाणी जिन्होंने स्मरण रक्खी और बाद में सूत्रबद्ध की, वे महात्मा भी निरीह थे, निःस्वार्थ थे। उन्हें भी मिथ्या वस्तु का प्रचार करने का कोई प्रयोजन नहीं था। अतएव उनकी प्रामाणिकता में किसी प्रकार का सन्देह न करते हुए श्रद्धा रखना चाहिए। अनेक विषय ऐसे हैं जिनकी सत्यता को वर्त्तमान-कालीन वैज्ञानिकों ने भी पुष्टि प्रदान की है। कई विषय ऐसे भी हैं जिनके सम्बन्ध में वैज्ञानिक मान्यता भिन्न प्रकार की है,

परन्तु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि विज्ञान ने सत्य की कोई सीमारेखा नहीं खींच दी है। विज्ञान सत्य की खोज में लगा है और आज जो सत्य उसे प्रतीत होता है, कल अधिक खोज करने पर वह असत्य भी हो सकता है। वैज्ञानिक नम्रतापूर्वक अपनी मान्यता बदल लेता है। ऐसी स्थिति में हमें अपनी श्रद्धा से विचलित होकर अपना अहित नहीं करना चाहिए।

जम्बूद्वीप के चार द्वार हैं। इनमें पूर्व दिशा में जो विजय नामक द्वार है, उसकी एक-एक बाजू पर नौ-नौ भोमा अर्थात् एक प्रकार के विशिष्ट स्थान हैं।

वाणव्यन्तर देवों की सुधर्मासभा का भवन नौ योजन ऊँचा है।

फिर बतलाया गया है कि दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियां नौ हैं—

(१) निद्रा—सरलता से आने वाली और सरलता से उड़ जाने वाली नींद।

(२) निद्रानिद्रा—कठिनाई से आने वाली और कठिनाई से उड़ने वाली नींद।

(३) प्रचला—खड़े-खड़े या बैठे-बैठे आने वाली नींद।

(४) प्रचला प्रचला—चलते-फिरते आने वाली नींद।

(५) स्त्यानर्द्धि—जिस नींद में मनुष्य दिन में सो

कार्य कर डालता है। वज्रऋषभनाराच संहनन वाले को अगर यह निद्रा आती है तो उस समय उसमें वासुदेव का आधा बल आ जाता है। सामान्य मनुष्य में भी कई गुणा बल प्रकट हो जाता है। यह निद्रा जिसे आती है, वह नरकगामी होता है।

(६) चक्षुदर्शनावरण-नेत्रों से होने वाले दर्शन अर्थात सामान्य धर्म के ज्ञान को रोकने वाला कर्म।

(७) अचक्षुर्दर्शनावरण-शेष इन्द्रियों से होने वाले सामान्य ज्ञान को रोकने वाला कर्म।

(८) अवधिदर्शनावरण-अवधिज्ञान से पहले होने वाले दर्शन को आवृत करने वाला।

(६) केवलदर्शनावरण-केवलदर्शन को प्रकट न होने देने वाला कर्म।

इसके अनन्तर बतलाया गया है कि रत्नप्रभा नामक पृथिवी में कोई-कोई नारक ऐसे भी हैं जिनकी स्थिति नौ पल्योपम की है। चौथे नरक में किन्हीं २ नारकों की स्थिति नौ सागरोपम की है।

असुरकुमार देवों में किसी-किसी देवता की स्थिति नौ पल्योपम की है। प्रथम और द्वितीय देवलोक में भी किसी किसी देव की स्थिति नौ पल्योपम की है। पांचवें ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग के किसी-किसी देव की स्थिति नौ सागरोपम की है। (१) पद्म

(२) सुपद्म (३) पद्मावर्त्त (४) पद्मप्रभ (५) पद्मकान्त (६) पद्मवर्ण (७) पद्मलेश्य (८) पद्मध्वज (९) पद्मश्रृङ्ग (१०) पद्मसिद्ध (११) पद्मकूट (१२) पद्मोत्तरावतंसक (१३) सूर्य (१४) सुसूर्य (१५) सूर्यावर्त्त (१६) सूर्यप्रभ (१७) सर्यकान्त (१८) सूर्यवर्ण (१९) सूर्यलेश्य (२०) सूर्यध्वज (२१) सूर्यश्रृङ्ग (२२) सूर्यसिद्ध (२३) सूर्यकूट (२४) सूर्योत्तरावतंसक (२५) रुचिर (२६) रुचिरावर्त्त (२७) रुचिरप्रभ (२८) रुचिरकान्त (२९) रुचिरवर्ण (३०) रुचिरलेश्य (३१) रुचिरध्वज (३२) रुचिरश्रृङ्ग (३३) रुचिरसिद्ध (३४) रुचिरकूट और (३५) रुचिरावतंसक, इन पैंतीस विमानों में जो देवता उत्पन्न होते हैं, उनकी नौ सागरोपम की स्थिति होती है। यह सब विमान पांचवें देवलोक के हैं।

नौ सागरोपम की स्थिति वाले देव नौ पक्ष में अर्थात् साढ़े चार मास में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन्हें नौ हजार वर्ष में आहार की अभिलाषा होती है।

जगत् में कोई-कोई भव्य जीव ऐसे हैं जो नौ भव करके सिद्ध पद होंगे और परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे।

इसके बाद दसवां समवाय प्रारम्भ होता है। उसमें सर्वप्रथम बतलाया गया है कि श्रमणधर्म दस प्रकार का है। प्राणी मात्र पर समभाव रखने वाला श्रमण कहलाता है। इसके दस धर्म ये हैं—

(१) क्षमा—क्रोध की उपशान्ति। दस धर्मों के सम्बन्ध में एक कविता बनी हुई है। उसमें कवि कहता है—

पहला लक्षण साधुनो जी, क्षमा तणां भण्डार।
कठिन वचन सहे लोकना जी, क्रोध न आणे लगार॥
मुनीश्वर धन धन ते अणगार॥ टेर॥

जो साधक साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ है, उसका पहला कर्त्तव्य क्षमा धारण करना है। आप साधुओं को 'घणी खम्मा' कहते हैं। परन्तु भाइयो! कहने मात्र से ही कोई क्षमावान् नहीं बन जाता। क्षमा गुण का तो तब पता चले जब परीक्षा ली जाय और क्रोध भड़काने वाले शब्द कहे जाएँ और उन्हें सुन कर भी जिसे क्रोध न आवे, समझना चाहिए कि वह सच्चा क्षमावान् है और उसके चित्त में क्षमाधर्म का पुनीत वास है। परन्तु जीवन में क्षमा गुण आना बहुत कठिन है। आम तौर पर देखा जाता है कि कोई बात किसी के मन के प्रतिकूल हुई नहीं कि क्रोध भड़का नहीं। ऐसा क्रोधशील पुरुष अगर साधु है तो समझना चाहिए कि उसने साधुवेष धारण कर लिया है, मगर साधुता उसमें नहीं है। कहा है—

वेष बराबर होत है, भेद बराबर नांय।
तोल बराबर चीरमी, मोल बराबर नांय॥

वेष में तो सभी समान होंगे क्योंकि कपड़े सब ने समान·

शृंगार धारण करते हैं, मगर जब तक हृदय श्वेत-धवल-निर्मल नहीं हुए तब तक बाह्य वेष से क्या कल्याण होने वाला है। चिरमी और सोने का तोल बराबर हो सकता है, मगर क्या मोल भी बराबर होगा? नहीं। इसी प्रकार वेष से सब साधु समान हो सकते हैं, परन्तु गुणों में बराबर नहीं होते। किसी में सहनशीलता होती है, किसी में नहीं होती। मगर सहिष्णुता और शान्ति साधु का प्रधान धर्म है। कोई कैसा भी वचन कहे अथवा व्यवहार करे, साधु के चित्त में प्रशम भाव ही जागृत रहना चाहिए। और भी कहा है—

धरती तो खोदण खमे, काटन सहे बनराय।
कूड़ा वचन साधु खमे, औरों से सह्या न जाय॥

लोग धरती को खोदते हैं, फाड़ते हैं किन्तु वह क्षमा धारण करती है। वृक्षों को काटते हैं मगर वे भी कुछ नहीं कहते और न बदला लेने की भावना रखते हैं। इसी प्रकार जो सच्चा साधु है वह खराब से खराब वचनों को शान्तिपूर्वक सहन कर लेता है। हां, कई साधु ऐसे भी होते हैं कि वे दबते हैं तो लोग उन्हें अधिक दबाते हैं, अतएव कई ऐसे भी होते हैं जो सांप की तरह फुंकार मारते हैं। वे सांप के समान फुंकार मारते तो हैं परन्तु क्रोध नहीं करते। संसार में जीवों की परिणतियां नाना प्रकार की हैं। किसी ने क्रोध किया और साधु ने भी क्रोध किया तो दोनों में अन्तर ही क्या रहा? शास्त्र में कहा है—

उक्कोसेज्जा परे भिक्खुं, न तेसिं पडिसंजले।
सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू न संजले॥

—उत्तराध्ययन, अ० २ गा० २४

अर्थात्—हे साधु! यदि तू क्रोध करता है और सामने वाला भी क्रोध करता है तो दोनों ही बराबर हो गए। उसमें और तुझमें अन्तर क्या रहा? अतएव यदि तू अज्ञानी के समान नहीं बनना चाहता तो क्रोध मत कर।

जिसके पास जैसी वस्तु है वैसी ही वह दूसरों को दे या दिखला सकता है, जो बाटा-कम्पनी की दुकान पर जाएगा, उसे तरह २ के जूते दिखलाए जाएँगे, आप लेना चाहें तो ले लें, अन्यथा उसकी वस्तु उसके पास है, तो जैसे जूते वाले के पास जूते हैं वैसे ही क्रोधी के पास क्रोध भड़काने वाले शब्द हैं, तुम उसके शब्द मत ग्रहण करो, उसके उस शस्त्र का अपने चित्त पर आघात मत होने दो, वह गाली दे तो समझ लो कि बेचारा क्रोध से उन्मत्त होकर बेभान हो गया है, दया का पात्र है—क्रोध का नहीं, इस प्रकार सोचकर अगर तुम शान्ति धारण कर लोगे तो गाली वहीं की वहीं रह जाएगी! ऐसा करोगे तो उसमें और तुममें अन्तर रहेगा, अन्यथा दोनों में क्या अन्तर रह जाएगा?

धन्य हैं प्रातःस्मरणीय मेतार्य मुनि! उन्होंने लोकोत्तर क्षमा का जो आदर्श उपस्थित किया, उसकी रोमांचकारिणी कथा

आज भी हमारे हृदय में सात्विक भावना की मन्दाकिनी प्रवाहित कर देती है।

मेतार्य मुनि एक सुनार के घर भिक्षा के लिए गए, उस समय सुनार स्वर्ण के यव (जवा) बना रहा था, साधु को आते देख, रुककर उसने स्वागत किया और अन्दर आहार लाने चला गया। तब तक मुनि वहीं खड़े रहे मगर होनहार की बात कि इसी बीच एक मुर्गा उन सोने के जवों को चुग गया, आहार देकर वह अपने काम पर बैठा तो देखा कि जवा नहीं हैं! वह दौड़ा और मुनिराज को वापिस ले आया, पूछा-जवा कहां हैं? आपके सिवाय और कोई तो यहां आया नहीं है।

मुनि को पता था कि जवा मुर्गा निगल गया है, मगर कह देते तो मुर्गे की हत्या हो जाती। अतएव उसके संकट को टालने के इरादे से वे मौन रहे।

मुनि को मौन देख सुनार का क्रोध भड़क उठा। उसने सोचा-यह मक्कार मालूम होता है। यों पूछने से बोलने वाला नहीं है। इसे कड़ी सजा देनी चाहिए।

यह सोच कर सुनार मुनिराज को घर के भीतर ले गया। वहां उसने चमड़ा गीला करके मुनिराज के मस्तक पर कस कर लपेट दिया। परिणाम यह हुआ कि ज्यों-ज्यों चमड़ा सूखता गया,

मस्तक की नसें तड़ातड़ टूटने लगीं। अन्त में उनके प्राणपखेरू उड़ गए।

भाइयो! मृत्यु के अन्तिम क्षणों तक मुनिराज एकदम शान्त रहे। न उन्हें जीवन की कामना ने और न मृत्यु के भय ने अपने पथ से विचलित किया। अनुकम्पा का अखण्ड निर्झर उनके अन्तःकरण में वहता रहा। मुर्गा जैसे एक जीव के रक्षण के लिए उन्होंने अपने प्राणों की परवाह नहीं की।

भाइयो! जीवन में इस प्रकार के प्रसंग उपस्थित होते ही रहते हैं। जर, जोरू और जमीन के झगड़े हरेक के साथ लगे रहते हैं। इस लाल बाई (जीभ) के झगड़े भी लगे ही हैं। यह चुपचाप नहीं बैठी रहती मगर नाना प्रकार के रगड़े-झगड़े पैदा करके क्लेश कराती रहती है। परन्तु ज्ञानी पुरुष कहते हैं—हे साधक! तू अपने साधनाक्षेत्र में साधना कर रहा है और वह साधना तेरी क्षमा की है। तुझ पर कोई कितना ही क्रोध करे अपशब्द कहे, यहां तक कि लाठी आदि का भी प्रहार करे, मगर तू क्रोध मत करना और क्षमाभाव ही धारण करना।

शास्त्रों में जो बाईस परीषह बतलाए गए हैं, उनमें वध और बन्ध परीषह भी हैं। तो यदि कोई साधक को मारने लगे तब भी साधक को यही सोचना चाहिए कि—मेरी आत्मा अमर है। उसे विश्व की कोई शक्ति मार नहीं सकती। यह अधिक से

अधिक यही कर सकता है कि शरीर से पृथक् कर दे, मगर वह तो एक न एक दिन होने वाला ही है। आत्मा और शरीर स्वभाव से ही भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में इनके भिन्न होने पर मैं क्यों खेद का अनुभव करूं।

कृष्ण वासुदेव के छोटे भाई गजसुकुमारजी थे। उन्होंने भगवान् अरिष्टनेमि के निकट दीक्षा धारण की। जिस दिन दीक्षा धारण की, उसी दिन बारहवीं प्रतिमा अंगीकार कर ली। श्मशान-भूमि में जाकर ध्यानस्थ हो गए। उसी समय सोमिल ब्राह्मण ने उनके मस्तक पर गीली मिट्टी की पाल बांध कर धधकते हुए खदिर के अंगार भर दिये। कल्पना तो कीजिए जरा उस परिस्थिति की। कैसे दारुण वेदना का प्रसंग था वह। मगर धन्य मुनिवर गजसुकुमार। जिन्होंने उफ् तक नहीं किया, आंखों में ललाई तक नहीं आने दी। अपनी आत्मा को अजर अमर अविनाशी समझ कर वे प्रशम के सरोवर में ही अवगाहन करने लगे। परिणाम यह हुआ कि मस्तक जलने से पहले ही उनके समस्त आवरण जल गए और उनकी आत्मा सदा के लिए काया के कारागार से मुक्त हो गई।

भगवान् महावीर का उज्ज्वल जीवन आपको विदित ही है। देवों, मनुष्यों और पशुओं के भयानक उपसर्गों को किस क्षमा के साथ उन्होंने सहन किया। कानों में कीले ठोक देने पर

भी और पैरों पर खीर पकाने पर भी वे क्षमा से तिल भर भी नहीं डिगे।

साधक को इन महान् पुरुषों के चरण चिह्नों पर चलना है। हमारे साहित्य में यह घटनाएं इसीलिए ग्रथित की गई हैं और इसीलिए सुरक्षित है। इन्हें सुनने-सुनाने का यही प्रयोजन है कि हम इनसे अपने जीवन में प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

दूर न जाना चाहें तो चन्दन के वृक्ष से ही आप बहुत कुछ सीख सकते हैं। उसके मूल में सर्प ठुड्डो मारता है, लोग कुल्हाड़े से काटते हैं, बन्दर आदि उसे परेशान करते हैं, मगर क्या किसी को सुगन्ध देने में वह संकोच करता है? जब देगा, सुगन्ध ही देगा। इस प्रकार साधक प्रबल से प्रबल प्रतिकूल संयोगों में भी मन में क्रोध उत्पन्न नहीं होने देते।

मगर आज हम सब को अपने सम्बन्ध में विचार करना है। हमारी मानसिक भूमिका क्या है? क्या वह ऐसी है कि हम अपने को मेतार्य गजसुकुमार और भगवान् महावीर के मार्ग पर चलने वाला कह सकें? अगर नहीं है तो उसका निर्माण करना होगा और क्षमा भाव को जीवन में जगाना होगा। उसके अभाव में हमारी साधना फलवती कैसे होगी?

भाइयो! क्षमाश्रमण-साधु के दर्शन क्यों करते हो? साधु शरीर के दर्शन करने से तो कुछ भी नहीं होने वाला है।

उनमें जो क्षमा का गुण है, उसे अपने जीवन में उतारने के उद्देश्य से ही दर्शन किए जाते हैं। अगर दर्शन करने पर भी क्रोध-पिशाच से छुटकारा न मिला तो दर्शन किस काम आए? अतएव क्षमाधर्म को धारण करो और इसीसे आपका हित होगा।

(२) दूसरा धर्म मुक्ति अर्थात् निर्लोभता है। जीवन में सन्तोष का भाव जागृत करने से इस धर्म की आराधना होती है। साधु साधना में तत्पर होता है, उसे गृहस्थ के घर से ही अच्छी-बुरी वस्तु उपलब्ध होती है। मगर साधक किसी भी वस्तु में लुब्ध नहीं होता। न उपलब्ध होने पर भी उसी प्रकार सन्तुष्ट रहता है जैसा उपलब्ध होने पर।

साधु गृहस्थ के घर गया और वहां बादाम की कतली या दाल का हलुवा बना है तो पात्र फैलाकर सोचता है-आने दो; भरने दो, रोज-रोज कहां रक्खी है ऐसी चीज। ऐसी वृत्ति जिसकी है वह कभी ऊँचा नहीं उठ सकता। उसे सन्तोषशील होना चाहिए और संग्रहवृत्ति का लेश मात्र भी स्पर्श नहीं होने देना चाहिए। अगर साधु सन्तोषशील नहीं है तो उसमें और गृहस्थ में अन्तर ही क्या है?

एक बार कबीरदासजी साधुमण्डली में चले गए। वहां पानी के मटके भरे थे। देख कर उन्होंने पूछा-यह क्या है? उत्तर मिला-पानी के मटके हैं। फिर प्रश्न किया-किसलिए वह

पानी संग्रह करके रक्खा गया है? उत्तर मिला-कल के लिए। तब उन्होंने एक दोहे में कहा—

साधु हो संग्रह करे, दूजे दिन को नीर।
तिरे न तारे और को, कह गए दास कबीर॥

सन्तोषशील साधु का संग्रह से क्या वास्ता। उसे तो निर्लोभ होना चाहिए। कहा है—

दोनों संग्रह नहिं करें, पंखी औ दरवेश।
जिनको तकवा रब का, उनको रजक' हमेश॥

रजक कवि कहता है-जिसको भगवान् पर अथवा अपने पुरुषार्थ पर भरोसा होता है, वह संग्रह नहीं करता। एक तो पक्षी ऐसा है जो दूसरे दिन के लिए संग्रह करके नहीं रखता। वह दिन में इधर-उधर चुगता फिरता है और शाम होते ही अपने घौंसले में आ जाता है और रात भर आराम करता है। उसके पास दूसरे दिन के लिए भी कुछ जमा नहीं रहता। दूसरे, साधु भी अगले दिन के लिए जमा नहीं करता। कवि कहता है—जिसको परमात्मा पर भरोसा है, उसे परमात्मा रजक देता ही है। वह सोचता है-जिसने चोंच दी है वही चुग्गा भी देगा। कहा है-

कण वाला ने कण मिले, मण वाला मण खाय।
हंसा तो मोती चुगे, वाको भी मिल जाय॥

अर्थात् अपने भाग्य पर भरोसा रखने वालों को मिल ही जाता है। हाथी को मन और कीड़ी को कन मिलता ही है। मगर जिसे अपने भाग्य पर भरोसा नहीं है वह हाय हाय करता रहता है। मगर उससे बनने वाला क्या है ? कुछ भी तो नहीं।

तो निर्लोभवृत्ति मनुष्य मात्र के लिए सुख-शान्ति देने वाली है, मगर साधु को तो निर्लोभ होना ही चाहिए, निर्लोभता साधु का आवश्यक गुण है। अगर यह न हुआ तो गृहस्थ और साधु में क्या अन्तर है ? निर्लोभता से तत्काल आनन्द में वृद्धि होती है, यह साधु का दूसरा धर्म हुआ।

अमरसेन-वीरसेन चरित—

अब आप अमरसेन और वीरसेन के प्रभावशाली चरित पर ध्यान दें, कल बतलाया जा चुका है कि दोनों भाई देव सहायता से नगर के निकट पहुँचकर सरोवर के किनारे पहुँचे, दोनों भाई भूखे तो थे ही, हाथ मुँह धोकर ज्यों ही कुल्ला करने लगे, एक के मुँह से एकदम सोनैया निकल पड़े और सामने ढेर हो गया, गिनने पर पूरे पांच सौ निकले।

सोनैया पाकर कुमारों को अत्यन्त सान्त्वना मिली, तत्काल जो संकट उपस्थित था वह टल गया। यही नहीं अब उन्हें दूसरी बात के सत्य सिद्ध होने का भी पूरा विश्वास हो गया।

सोनैया प्राप्त करने वाले ने कहा-भाई, जब मुझे पांच सौ मोहरें मिल गई हैं तो आपको सातवें दिन राज्य भी अवश्य मिल जाएगा।

यह सोचकर दोनों को अत्यधिक प्रसन्नता हुई, उन्होंने कहा–अब चिन्ता की कोई बात नहीं रही, सब ठीक हो गया क्योंकि:—

जर है तो नर है,
जर नहीं तो खर है।

गृहस्थी में सम्पत्ति के बिना काम नहीं चलता, गृहस्थ को कदम-कदम पर अर्थ की आवश्यकता होती है। पंख हैं तो पक्षी उड़ सकता है, पंख नहीं तो उड़ नहीं सकता, इसी प्रकार गृहस्थ के पास यदि धन है तो वह मनचाही उड़ानें भर सकता है अगर धन नहीं है तो कुछ भी नहीं कर सकता।

तो दोनों भाई उस शुक के प्रति और उस देवता के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करने लगे, तत्पश्चात् वीरसेन ने अपने छोटे भाई अमरसेन से कहा–भैया, तुम बाजार जाओ और भोजन खरीदकर ले आओ। मगर देखना, नूतन नगर में जा रहे हो और वहां कई दर्शनीय और अद्भुत वस्तुएँ देखने में आ सकती हैं। उनको देखने में न रह जाना, अपना काम करके फौरन लौट आना।

अमरसेन ने कहा-अभी मिनिटों में आता हूं, आप चिन्ता न करें।

यह कहकर अमरसेन रवाना हुआ और ज्यों ही नगर के द्वार पर पहुंचा कि अचानक सामने की ओर से आती हुई एक वेश्या की दृष्टि उस पर पड़ी। वेश्या बड़ी चालाक थी और समस्त कलाओं में पारंगत थी, वह उड़ते पंछी को भांप लेती थी, अतएव देखते ही वह समझ गई कि यह कोई परदेशी युवक है और ऊँचे घराने का है। इस पर मेरा जादू चल गया तो मुझे सभी दृष्टियों से लाभ होगा, नौजवान है, अत्यन्त सुन्दर है और भाग्यशाली भी प्रतीत होता है। किसी भी प्रकार इसे कब्जे में करना चाहिए।

वेश्या को काम करने का ढङ्ग भी आता था, वह नखरे करती हुई अमरसेन के पास गई और हाथ जोड़ कर नम्र एवं मधुर शब्दों में कहने लगी-महाशय! मालूम होता है कि आप किसी परदेश से आ रहे हैं और परेशान है। आप मेरे यहां चलिए, वहां आपको सब प्रकार की सुविधाएँ और सुख मिलेंगे।

नगरों में अनेक प्रकार के चतुर ठग होते हैं, कोई अजनबी आदमी पहुँचा, किसी चीज के लोभ में फंसा और आकर्षित हुआ कि बस ठगा गया।

पन्नालालजी श्रीश्रीमाल नामक एक सज्जन एकबार बम्बई

गये तो ठग उनके पीछे लग गए। उन्होंने उंगलियों में दो अंगूठियां पहन रक्खी थी, पास में कुछ रुपये भी थे, ठगों ने सोचा-यह मारवाड़ी सेठ है लोभ देंगे तो अवश्य चक्कर में आ जाएगा। इस प्रकार सोचकर उन्होंने एक नकलो पासा, जो वास्तव में तांबे का था और जिस पर सोने का झोल चढ़ाया था, पटक दिया वे लोग पीछे २ चलने लगे।

चम्पालालजी की दृष्टि उस चमचमाती चीज पर पड़ी तो उन्होंने इधर-उधर देख कर चुपचाप उठा ली। ज्यों ही उन्होंने उसे उठाया, एक ठग फौरन उनके पास जा पहुँचा और बोला—सेठजी! तुम्हीं अकेले इसे हजम नहीं कर सकते। जब इस पर मेरी भी नजर पड़ चुकी है तो आधा हिस्सा मुझे भी देना होगा।

सेठजी पशोपेश में पड़ गए। सोचा-इसे आधा हिस्सा न दिया तो यह पुलिस को सूचना कर देगा और मैं परदेश में मुसीबत में फँस जाऊँगा। अतएव इसे कुछ रुपया देकर शान्त कर देना चाहिए।

सेठजी ने पूछा-तुम्हारे खयाल से यह चीज कितनी कीमत की होगी?

ठग-यह तो बहुत कीमती है, परन्तु आप मुझे जो कुछ भी दे देंगे, वही ले लूंगा और इस बात को प्रकट नहीं करूंगा।

सेठजी ने लोभ में फंस कर दोनों अंगूठियां और जेब के सब रुपये उसे दे दिए। ठग फौरन नौ दो ग्यारह हो गया। वहां सादड़ी वाले सेठजी की दुकान पर ठहरे थे। सीधे अपने ठिकाने पहुँचे। उनकी प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर लोगों ने कारण पूछा तो उन्होंने कहा-मेरा बम्बई आना सफल हो गया। अच्छा मुहूर्त्त देखकर घर से चला था। आज चौपाटी की तरफ सैर करने चला गया था सो यह चीज पड़ी हुई मिल गई। यह कह कर उन्होंने यह पासा उन लोगों को दिखलाया।

लोगों ने देखा और जांचा तो मालूम हुआ कि यह सोने का नहीं, तांबे का है।

सेठजी का चेहरा एकदम धक् हो गया। उन्होंने सब बत-लाया कि किस प्रकार एक आदमी अंगूठियां और रुपये ठग ले गया।

तात्पर्य यह है कि आजकल शहरों में बहुत ठगाई चल रही है। ठगाई कला का आश्चर्यजनक विकास हुआ है। अगर कोई रिटायर्ड ठग इस कला की बारीकियों का [illegible] करता हुआ एक ग्रन्थ लिख डाले तो निश्चय है [illegible] बड़ा अनुभव हो और वह ग्रन्थ बड़ा दिलचस्प हो।

तो मैं कह रहा था कि [illegible] गुणों को [illegible] और आरोपित करने में [illegible] यह [illegible]

उसकी इज्जत लेना और सर्वस्व छीन लेना अच्छी तरह जानती थी। उसने अमरसेन पर भी अपना कुचक्र चलाया और वह भोला राजकुमार उसे अपना हमदर्द समझ कर उसकी बातों में आ गया। वह राजकुमार को अपने घर ले गई और ऊँचे आसन पर बिठला कर बोली—यह मकान, यह वैभव और यह शरीर भी आपका ही है। आज से आप ही इस सब के स्वामी हैं। किसी भी प्रकार का संकोच रखने की आवश्यकता नहीं है। मुझे अपनी ही समझना। मैं समझती हूं कि आप बड़े ही पुण्यवान् हैं, इज्जतदार हैं और समझदार हैं, अतः मुझ पर कृपा करना और इस दासी को अपना लेना। यह तो आप जानते ही हो कि कोई पुरुष गृहस्थ तभी कहलाता है जब उसकी गृहिणी हो। गृहिणी के बिना कोई गृहस्थ कहलाने का अधिकारी नहीं होता। जो अकेला होता है वह तो दमादम कहलाता है।

भाइयो ! यह संसार बड़ा ही स्वार्थी है। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए लोग किस प्रकार कपट का जाल रचते हैं, यह सब देख कर आश्चर्य होता है। तो वह वेश्या बड़ी ही छँटी हुई रकम थी। उसने अमरसेन को अपने झांसे में ले लिया। वह फिर कहने लगी–परदेशी ! इस दासी की प्रार्थना स्वीकार करो। इस दासी से आपको सभी प्रकार के सांसारिक सुखों की प्राप्ति होगी और आपका जीवन और यौवन सार्थक हो जाएगा। अधिक

कहने की आवश्यकता नहीं है। अब मैं आपकी पत्नी हूँ और आप मेरे प्राणप्रिय पतिदेव हैं।

इस प्रकार वेश्या की बातें सुन कर अमरसेन पिघल गया। वह उसके चक्कर में आ गया। कहां तो वह अपने भाई को शीघ्र से शीघ्र भोजनसामग्री ले कर वापिस लौटने को कह आया था और कहां इस कुचक्र में फँस गया। अमरसेन वेश्या के घर में आ पहुंचा और वीरसेन सरोवर के तीर पर उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

किस प्रकार वीरसेन को राज्यप्राप्ति होती है और किस प्रकार अमरसेन वेश्या के घर मौज उड़ाता है, यह आगे सुनने से विदित होगा।

लोभ किस-किस प्रकार के अनर्थ उत्पन्न करता है, यह बात आप से छिपी नहीं है। अतएव लोभ में न पड़ कर, सावधान रह कर जो कार्य करेंगे, वही इह-पर लोक में सुखी होंगे।

कैन्टोनमेंट बैंगलोर
२४-६-४६

सदा सहायक धर्म



प्रार्थना—

नो रोगा नैव शोका न कलहकलना नाऽरिमारि प्रचारा,
नैवाधिर्नासमाधिर्न च दरदुरिते दुष्टदारिद्रता नो।
नो शाकिन्यो ग्रहा नो न हरि करिगणा व्यालवैतालजाला,
जायन्ते पार्श्वचिन्तामणिमतिवशतः प्राणिनां भक्तिभाजाम् ॥६



यह भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति है। इस पद्य में स्तुतिकार ने यह भाव व्यक्त किया हैं कि जो भक्तिमान् प्राणी श्री-चिन्तामणि के समान सर्वसमीहित संपूरक श्री पार्श्वनाथ भगवान् के चरण-कमलों में प्रणाम करते हैं, उन्हें नये रोग नहीं होते और उनके पुराने रोगों का नाश हो जाता है। भगवान् के चरणों का आश्रय लेने से द्रव्यरोग और भावरोग, दोनों का ही अन्त आ जाता है। उन्हें किसी प्रकार के शोक का सामना नहीं करना पड़ता। संसार में शोक के कारण पद-पद पर विद्यमान हैं, पर

भगवद्भक्तों को उनसे सहज ही छुटकारा मिल जाता है। भगवान् को प्रणाम करने से कलह और सब प्रकार के लड़ाई-झगड़े शान्त हो जाते हैं। शत्रुकृत उपद्रव और महामारी भी उन्हें नहीं होती। उन्हें न आधि-मानसिक पीड़ा होती है, न व्याधि होती है और न किसी प्रकार की असमाधि होती है। उसे किसी भी प्रकार की चिन्ता या दरिद्रता नहीं सताती।

भगवान् पार्श्वनाथ की भक्ति में बड़ी भारी शक्ति विद्यमान है। अगर किसी को कोई पूछने वाला भी न हो, परन्तु उसकी जिह्वा पर यदि भगवान् का नाम आ जाता है तो फिर उसके घर से दरिद्रता सदा के लिए दूर हो जाती है। वह लोकमान्य और लोक प्रिय बन जाता है। उसे समस्त सुख प्राप्त हो जाते हैं।

भाइयो ! आपने विनयचन्द चौबीसी पढ़ी या सुनी होगी। उसके रचयिता विनयचन्दजी का थोड़ा परिचय करा दूं। विनयचन्दजी एक प्रसिद्ध श्रावक हो गए हैं। वे कुंभटगोत्रीय ओसवाल थे। और जोधपुर के पास दहीघड़ा गांव के निवासी थे। वह आंखों से लाचार हो गए थे और आजीविका का कोई साधन उनके पास नहीं था। स्थिति इतनी खराब थी कि लोग उन्हें रोटी के लिए भी नहीं पूछते थे। मगर खाने के लिए अन्न तो चाहिए ही। और कुछ मिले या न मिले, अन्न के बिना जीवन नहीं टिक सकता। सन्तोषी जीव को पेट भर अन्न मिल जाय तो बस है। फिर उसे कोई चिन्ता नहीं रहती।

तो विनयचन्दजी बड़े परेशान थे, नेत्र होते तो पेटपूर्ति का मार्ग खोज लेते, मगर वह थे नहीं, किन्तु सुख-दुःख सदा बदलते रहते हैं। गाड़ी के पहिये की तरह वे स्थिर नहीं रहते।

एकबार उनके गांव में पूज्य गुमानमलजी म० का आगमन हो गया। उनकी कृपा हो गई तो विनयचन्दजी उनसे कुछ ज्ञान सम्पादन कर लिया, तब उनकी जबान पर प्यास आ गई और उन्होंने चौबीसों तीर्थङ्करों की पद्यबद्ध स्तुति रच डाली, आवाज उनकी बुलन्द और मधुर थी, सभी उसे सुनना पसंद करते थे और सुनते २ तन्मय हो जाते थे। अपनी चौबीसी के कारण और कंठ की मधुरता के कारण वे इतने प्रसिद्ध हो गए कि एक दिन उनकी प्रशंसा फैलते २ राजमहल तक जा पहुंची। जोधपुर नरेश ने उन्हें उनके मीठे राग को सुनने के लिए आमंत्रित किया, विनयचन्दजी ने महाराज के समक्ष अपनी स्वरलहरी प्रसारित की तो वे भी अत्यन्त मुग्ध हो गए, महाराज ने उन्हें पर्याप्त पारितोषिक प्रदान किया और आदर के साथ घर पहुंचा दिया। जब वह महाराज द्वारा सम्मानित होकर लौटे तो उनके परिवार के लोगों ने उनकी खूब खातिर की।

कहने का आशय यह है कि जिसकी जबान पर भगवान् का नाम आ जाता है और जिसका मस्तक भगवान् के चरणों में झुक जाता है, उसकी दरिद्रता भी दूर हो जाती है।

यही नहीं भगवान् पार्श्वनाथ के अपूर्व प्रभाव से शाकिनी (प्रेतयोनि-विशेष) का उपद्रव भी शान्त हो जाता है। अगर उसने शरीर में प्रवेश किया हो तो भगवान् के नाम लेते ही भाग जाती है। उनके पावन नाम के प्रभाव से अशुभ ग्रह भी शान्त हो जाते हैं।

आपको मालूम होगा कि ज्योतिष शास्त्र में नौ ग्रह माने गए हैं। ज्योतिषियों का कथन है कि इन ग्रहों का जीवन पर अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ज्योतिषी लोगों की कुण्डलियां देखते हैं और बतलाते हैं कि तुम्हें मंगल या शनि ग्रह लगा है, पनौती आई है, एक महीने का सूर्य चल रहा है या अठारह महीने का गुरु चल रहा है, आदि आदि। अमुक ग्रह का अमुक फल है या होगा। परन्तु भगवान् पार्श्वनाथ के नाम के प्रभाव से समस्त अशुभ ग्रहों की शान्ति हो जाती है।

ग्रह का असली अर्थ पकड़ना है। मनुष्य जब किसी भी पर पदार्थ को पकड़ता है-अपना बनाता है और ममता के बन्धन के द्वारा अपने साथ जोड़ता है तो उसे ग्रह लग जाता है। वह ग्रह ही उसके दुःख का कारण होता है, क्योंकि जहां ममता है वहां चिन्ता है और जहां चिन्ता है वहां दुःख है। अतएव यदि पर पदार्थों को अपना समझ कर ग्रहण न किया जाय तो कोई 'ग्रह' नहीं लगेगा और उस स्थिति में किसी प्रकार के दुःख की भी उत्पत्ति नहीं होगी। प्रभु के नाम से वह ग्रह नष्ट होता है

तो दूसरे कोई भी ग्रह पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। भावग्रह के नष्ट होने पर शनि मंगल आदि द्रव्यग्रह स्वतः निःसत्व होकर क्षीण हो जाते हैं।

भगवान् के नाम में ऐसी शक्ति है कि कदाचित् भूखा सिंह और मदोन्मत्त हाथी भी सामने आ जाए और वह मनुष्य को हानि पहुंचाना चाहता हो किन्तु वह मनुष्य यदि अविचल भक्ति-भाव से भगवान् के नाम का स्मरण करे तो उसका संकट तत्काल दूर हो जाता है। इसी प्रकार अन्य हिंसक जीव भी भगवद्भक्त पुरुष के समक्ष अप्रतिभ हो जाते हैं, कुंठित हो जाते हैं और उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हैं।

वैताल जाति के देवता, जो हीन प्रकृति के होते हैं, वे भी यदि दुःख देने के लिए आते हैं और शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तो मनुष्य को बहुत परेशान करते हैं। परन्तु भगवान् पार्श्वनाथ का नाम उनसे भी छुटकारा पाने का अमोघ मन्त्र है। भगवन्नाम से वे भी विवश होकर भाग जाते हैं। कहा है:—

पदमप्रभु का धरते ध्यान,
सुर नर माने तेहनी आन।

भाइयो! जयपुर से कुछ दूरी पर एक गांव में एक स्थान पर पद्मप्रभ के चिह्न वाली एक मूर्त्ति निकली। वहां कुछ भक्त जनों ने छतरी बनवा दी। जब लोगों को पता लगा कि इस मूर्त्ति

में चमत्कार है तो लोग दूर-दूर से आशाएँ लेकर आने लगे। स्त्री-पुरुष वहां बैठ कर पद्मप्रभ-पद्मप्रभ के नाम की माला फेरने लगे, जयपुर सं. २००१ का चौमासा समाप्त करके मैं भी वहां गया, मैंने देखा कि जिनके शरीर में प्रेतबाधा थी, वे वहां घूम रहे थे। मालूम पड़ा कि वहां जाने से लोगों को कुछ अंश तक लाभ भी मिलता है। अब वह मूर्त्ति नवनिर्मित मन्दिर में स्थापित कर दी गई है। खैर वहां जो कुछ भी हो, मेरे कहने का आशय तो यह है कि तीर्थङ्करों के नाम से शारीरिक बाधा भी दूर हो जाती है।

आप दूर क्यों जाएँ, यहीं आपके दक्षिण प्रान्त में तपस्वी श्री गणेशीलालजी म० विचरते हैं। आप लोग उनके दर्शन के लिए आते रहते हैं। वहां भी भूत-भूतनियां निकलती हैं या नहीं? वे तपस्या करवाते हैं। तपस्या के और भगवान् नाम के प्रताप से कइयों की भूत-प्रेतबाधा दूर हो जाती है। असल में वीतराग जिनेश्वर के नाम का माहात्म्य अचिन्त्य है। जिनके नामस्मरण से समस्त सांसारिक दुःखों का समूल क्षय हो जाता है और प्राणी जन्म-मरण के अनादिकालीन चक्र से छुट्टी पा लेता है और अनन्त आत्मिक सुखों का भोक्ता बन जाता है, उनके नाम से साधारण दुःख दूर हो जाए, इसमें विस्मय की बात ही क्या है? मगर होना चाहिए आन्तरिक भक्ति। मन में दूसरे प्रकार की उधेड़बुन चलती रहे और जीभ से भगवान् का नाम उच्चारित होता रहे, यह सच्चा स्मरण नहीं है। तीनों योगों को समाहृत

करके श्रद्धापूर्वक किया जाने वाला स्मरण ही सच्चा स्मरण है। इस प्रकार के स्मरण से समस्त दुःखों का अन्त आ जाता है।

एक बार मैंने १९९६ में अम्बाला चौमासा किया था। वहां लाला लच्छीरामजी नाम के एक श्रावक थे। उनके चार लड़के थे और एक लड़की थी। लड़की के बाल-बच्चा होने वाला था; अतएव उसे उन्होंने अस्पताल में भर्त्ती करा रक्खा था। समय पर लड़की ने बच्चे का प्रसव किया, मगर लड़की की हालत चिन्ताजनक हो गई। दर्शन देने के लिए वे मुझे ले गए। ज्यों ही मैंने मांगलिक सुनाया, उसके प्राण निकल गए।

कुछ समय बाद उनके घर में अद्भुत घटनाएँ होने लगीं। घर में भोजन बनता तो कोई अदृश्य शक्ति चूल्हे में पानी डाल देती। कपड़े सुखाये जाते तो कोई गुप्त रूप से उन्हें कैंची से काट देता। मगर इस प्रकार की हरकत करने वाला कोई दृष्टिगोचर नहीं होता था।

लोगों ने आकर मुझसे यह बात कही। मैंने उन्हें बतलाया भाइयों! नित्यनियम बराबर करते रहो और सामायिक प्रतिदिन नियमित रूप से करते रहो।

वे लोग जब तक ऐसा करते रहते तब तक कुछ नुकसान नहीं होने पाता था और छोड़ देने पर फिर वही वातावरण शुरु हो जाता था। यह भगवान् के नाम के ही अमोघ मन्त्र का प्रताप

था। अतएव इस श्लोक में भी यही कहा गया है कि व्यक्ति के सामने कोई भी दुःख क्यों न हो और वह किसी की भी ओर से उत्पन्न किया हुआ क्यों न हो, जो भक्तिभाव से भगवान् को याद करेगा, उसके समस्त दुःख दूर हो जाएँगे। उसके सामने आई हुई सारी बाधाएं शान्त हो जाएंगी। किसी भी स्थिति में आप भगवान् का नाम लें, वह निरर्थक या निष्फल जाने वाला नहीं है। चाहे आशासहित होकर नाम का स्मरण करें, चाहे आशारहित हो कर, आपकी भावना के अनुसार फल की प्राप्ति होगी। खेत में किसी भी रूप में बीज बिखेर देते हैं, उसका अंकुर तो फूट ही निकलता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जिन्होंने प्राकृत संस्कृत भाषा का अध्ययन नहीं किया, उनके उच्चारण में अशुद्धि हो जाती है, यद्यपि अशुद्ध उच्चारण होना ठीक नहीं है, फिर भी अगर भावना शुद्ध है और अन्तःकरण भक्ति के रस में ओतप्रोत है तो उन्हें उसका फल मिलता ही है। वैष्णव परम्परा में प्रसिद्ध है कि राम राम को 'मरा-मरा' कहने वाले भी पार हो गए।

मैं आपको व्याख्यान सुनाता हूं और छद्मस्थ होने के कारण शब्द ऊँचे नीचे भी हो जाते हैं और कभी उच्चारण अशुद्ध भी हो जाता है मगर भावना दूषित नहीं होना चाहिए।

मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि शुद्ध उच्चारण

करना सीखने की कोशिश न की जाय। कोशिश तो करना ही चाहिए, क्योंकि अशुद्ध उच्चारण करना भी ज्ञान का अतिचार माना गया है; मगर अशुद्ध उच्चारण हो जाने के भय से पाठ ही न पढ़ा जाय, यह उचित नहीं है।

तो जो मुमुक्षु भक्तियुक्त होकर भगवान् का स्मरण करेगा और भगवत् चरणों में प्रणत होगा, उसके समस्त दुःख दूर हो जाएंगे।

समवायांगसूत्र—

दुःखों को दूर करने के लिए ही मैं आपको तीर्थङ्कर भगवन्तों की वाणी सुना रहा हूं। अगर आप यह वाणी एकाग्रचित्त हो कर सुनेंगे तो अपने तीनों प्रकार के तापों को दूर करने में समर्थ हो सकेंगे।

कल यतिधर्मों का विवेचन करते हुए क्षमा और मुक्ति (निर्लोभता) के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया था। उनके बाद तीसरा धर्म आर्जव है। आर्जव का आशय है ऋजुता—अर्थात् सरलता है। मानसिक, वाचिक और कायिक कुटिलता का परित्याग करने से आर्जवधर्म की आराधना होती है। जो बात मन में हो वही कहना और जो कहा हो उसी के अनुसार काय का व्यापार होना सरलता है। सरलता महात्मा का खास लक्षण है और नीतिकार भी उस पर जोर देते हैं। एक कवि कहते हैं—

मनस्येकं वचस्येकं, काय एकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद्वचस्यन्यद् , काये अन्यद् पुरात्मनाम् ॥

महात्मा पुरुषों की पहचान यही है कि उनके मन, वचन, और कार्य में एकरूपता होती है। जो व्यक्ति सोचता कुछ है, कहता कुछ और है और करता कुछ और ही है; वह दुरात्मा है।

वास्तव में सरलता में ही साधुता का वास होता है। जिसमें साधुता है उसमें सरलता होगी ही और यदि सरलता नहीं है तो समझना चाहिए कि उसमें साधुता ही नहीं है।

(४) चौथा धर्म मद्दवे-मार्दव अर्थात् निरभिमानिता है, साधु यदि मान करता है तो उसके सब गुण नष्ट हो जाते हैं, अतएव साधु को सब प्रकार के अभिमान से बचना चाहिए, और पूर्ण निरभिमान होना चाहिए। शास्त्र में कहा है कि साधु को भी छह कारणों से अभिमान आ जाता है— (१) दीक्षा (२) शिष्य (३) सूत्र (४) तप (५) लाभ और (६) सत्कार, मगर सच्चा साधक वही है जो इन छह बातों की विशिष्टता से युक्त होकर भी अभिमान को अपने पास नहीं फटकने देता. जो अभिमानी है, वह अपने आपको चाहे कुछ भी समझे, लोगों की दृष्टि में तुच्छ ही प्रतिभासित होता है, इसके विरुद्ध, निरभिमान का सर्वत्र आदर होता है, सभी उसकी प्रशंसा करते हैं।

करना सीखने की कोशिश न की जाय। कोशिश तो करना ही चाहिए, क्योंकि अशुद्ध उच्चारण करना भी ज्ञान का अतिचार माना गया है; मगर अशुद्ध उच्चारण हो जाने के भय से पाठ ही न पढ़ा जाय, यह उचित नहीं है।

तो जो मुमुक्षु भक्तियुक्त होकर भगवान् का स्मरण करेगा और भगवत् चरणों में प्रणत होगा, उसके समस्त दुःख दूर हो जाएंगे।

समवायांगसूत्र–

दुःखों को दूर करने के लिए ही मैं आपको तीर्थङ्कर भगवन्तों की वाणी सुना रहा हूं। अगर आप यह वाणी एकाग्रचित्त हो कर सुनेंगे तो अपने तीनों प्रकार के तापों को दूर करने में समर्थ हो सकेंगे।

कल यतिधर्मों का विवेचन करते हुए क्षमा और मुक्ति (निर्लोभता) के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया था। उनके बाद तीसरा धर्म आर्जव है। आर्जव का आशय है ऋजुता–अर्थात् सरलता है। मानसिक; वाचिक और कायिक कुटिलता का परित्याग करने से आर्जवधर्म की आराधना होती है। जो बात मन में हो वही कहना और जो कहा हो उसी के अनुसार काय का व्यापार होना सरलता है। सरलता महात्मा का खास लक्षण है और नीतिकार भी उस पर जोर देते हैं। एक कवि कहते हैं—

मनस्येकं वचस्येकं, काय एकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद्वचस्यन्यद्, काये अन्यद् दुरात्मनाम् ॥

महात्मा पुरुषों की पहचान यही है कि उनके मन, वचन और कार्य में एकरूपता होती है। जो व्यक्ति सोचता कुछ है, कहता कुछ और है और करता कुछ और ही है, वह दुरात्मा है।

वास्तव में सरलता में ही साधुता का वास होता है। जिसमें साधुता है उसमें सरलता होगी ही और यदि सरलता नहीं है तो समझना चाहिए कि उसमें साधुता ही नहीं है।

(४) चौथा धर्म मद्दवे-मार्दव अर्थात् निरभिमानिता है, साधु यदि मान करता है तो उसके सब गुण नष्ट हो जाते हैं, अतएव साधु को सब प्रकार के अभिमान से बचना चाहिए, और पूर्ण निराभिमान होना चाहिए। शास्त्र में कहा है कि साधु को भी छह कारणों से अभिमान आ जाता है— (१) दीक्षा (२) शिष्य (३) सूत्र (४) तप (५) लाभ और (६) सत्कार, मगर सच्चा साधक वही है जो इन छह बातों की विशिष्टता से युक्त होकर भी अभिमान को अपने पास नहीं फटकने देता, जो अभिमानी है, वह अपने आपको चाहे कुछ भी समझे, लोगों की दृष्टि में तुच्छ ही प्रतिभासित होता है, इसके विरुद्ध, निरभिमान का सर्वत्र आदर होता है, सभी उसकी प्रशंसा करते हैं।

(५) पांचवां धर्म लाघव है, साधु को द्रव्य से भी और भाव से भी हल्का होना चाहिए, अर्थात् वह वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि-आदि उपकरणों से भी हल्का हो, कम से कम उपधि का धारक हो और भाव से अर्थात् कषायों से भी हल्का हो, आखिर गृहस्थ और साधु में दिखाई देने वाला अन्तर यह है कि गृहस्थ के पास बहुत संग्रह होता है जब कि साधु के पास संयमोपकारी साधनों के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ नहीं होते, साधु हल्का होगा तभी साधुता का रुप नजर आएगा, जो साधु भारी होता है, वह देखने में भी अच्छा नजर नहीं आता।

स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० कहा करते थे एक साधु था, वह अपने शरीर पर सामान लादे हुए था, उससे पूछा गया-अजी, आपने इतना भार क्यों उठा रक्खा है ? उसने उत्तर दिया-मेरे गुरुजी का स्वर्गवास हो गया है, अतएव उनका भी सामान मैं ही उठाये फिर रहा हूँ। उससे कहा गया-जब गुरुजी रहे ही नहीं तो इस भार को उठाने से क्या लाभ है ?

तो आशय यह है कि साधु को सदैव अल्प से अल्प उपधि ही रखना चाहिए, उपधि अधिक होगी तो उपाधि भी अधिक होगी और उससे नाना प्रकार के अनर्थ होंगे, उसके प्रति ममता जागृत होगी, उसकी सार-संभाल की चिन्ता करनी पड़ेगी, चोरी हो जाने का भय रहेगा, प्रति लेखना में अधिक समय लगाना पड़ेगा तो ध्यान-स्वाध्याय में विघ्न होगा, आदि।

अतएव सच्चे साधु को ममत्व की भावना से सर्वथा मुक्त होकर लाघवसम्पन्न होना चाहिए।

(६) छठा धर्म बतलाया गया है—सत्य। साधु को सत्यवादी होना चाहिए, यदि वह मौन भाव से आराधना करता है तो अत्युत्तम है। ऐसा न हो तो असत्य से दूर रहकर सत्य वचनों का ही प्रयोग करना चाहिए, साधु चाहे अकेला हो या सबके बीच में हो, गांव में हो, नगर में हो या जंगल में हो, यदि वह सत्यवादिता से ही काम ले रहा है, और प्राण जाएँ तो भले जाएँ किन्तु असत्य का आश्रय नहीं ले रहा है। तो वह सच्चा साधु है।

(७) सातवां धर्म संयम है, विषयों की ओर धावित होने वाली इन्द्रियों को रोकना, इन्द्रिय विषयों के प्रति अनासक्त होना और षट्काय के जीवों की हिंसा से बचना संयम है। संयम साधु जीवन का प्राण है। जो संयमी नहीं, असंयत है, उसमें साधुता का कोई भी गुण नहीं टिक सकता, अतएव साधु की प्रत्येक क्रिया में संयमशीलता परिव्याप्त रहनी चाहिए।

(८) तप साधु का आठवां धर्म है, तपस्या के सम्बन्ध में कुछ दिन पूर्व कहा जा चुका है। कर्मक्षय का सर्वोत्तम और समर्थ साधन तप ही है। अतएव साधु का जीवन तपोमय ही होना चाहिए।

(६ नौवां धर्म है त्याग। त्याग की भावना से ही साधुता अंगीकार की जाती है और त्याग की भावना से ही साधु जीवन चलता है। जिस साधक में जितनी ज्यादा त्याग भावना है और त्याग है, उसमें उतनी ही उत्कृष्ट साधुता है, यह त्याग धर्म ही तो है जो गृहस्थ और साधु में अन्तर करता है, अतएव साधु को त्यागी होना चाहिए।

(१०) दसवां धर्म ब्रह्मचर्य है। साधु को मन, वचन और काय से ब्रह्मचर्य धर्म की आराधना करना चाहिए, साधु सब प्रकार के मैथुन का त्यागी होता है। जहां ब्रह्मचर्य की परिपालना नहीं है वहां साधुता के लिए किंचित् भी अवकाश नहीं है।

यद्यपि इन धर्मों को यतिधर्म कहा गया है, मगर इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि इनके साथ गृहस्थ का कोई सरोकार ही नहीं है, यति धर्म कहने का अर्थ यही है कि साधु को इनका पालन करना अनिवार्य है, परन्तु श्रावक को भी अपनी परिस्थिति और शक्ति के अनुसार पालन करता है। वस्तुतः श्रावक धर्म और साधु धर्म मूलतः भिन्न नहीं हैं जिस धर्म को साधु तीन करण और तीन योग से पालते हैं, उसी धर्म का श्रावक आंशिक रूप से पालन करते हैं, अतएव उसे भी इन धर्मों का पालन करना चाहिए।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में आठ दिन तक पर्युषणपर्व मनाया

जाता है और दिगम्बर सम्प्रदाय में दस दिन तक। इसे ही दश-लक्षणपर्व भी कहते हैं। इन दस दिनों में इन्हीं दस धर्मों का विवेचन, व्याख्यान किया जाता है और इनके पालन की प्रेरणा की जाती है। मगर इन धर्मों का सम्बन्ध किसी भी सम्प्रदाय या पन्थ से नहीं है। संसार के सभी सम्प्रदाय इनकी सराहना करते हैं और इन्हें उपादेय मानते हैं।

आगे बतलाया गया है कि चित्त की समाधि के दस स्थान हैं। समाधि का अर्थ है-शान्ति या स्वस्थता। यदि शरीर का निग्रह है तो शरीर की समाधि है और यदि मन में शान्ति है, संकल्प-विकल्प नहीं चल रहे हैं और मन स्वस्थ है तो मन की समाधि है। पर दस बातें यदि जीवन में आ जाती हैं तो चित्त में समाधि रहती है।

यहां चित्तसमाधि के दस कारणों का उल्लेख किया गया है। वे इस प्रकार हैं—

(१) धर्मचिन्तावास-जिसके अन्तःकरण में पहले धार्मिक भावना नहीं थी, उसमें धर्मभावना जब उत्पन्न हो जाती है तो चित्त में समाधि-उल्लास की उत्पत्ति होती है।

धर्म दो प्रकार का है—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। नौ तत्वों का द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय से, निश्चय और व्यवहार नय से, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप स्वभाव को जानना

श्रुतधर्म है और अशुभ व्यापार से निवृत्त होकर शुभ एवं शुद्ध व्यापार में तत्पर होना चारित्रधर्म है। जीवन की शान्ति के लिए इन दोनों प्रकार के धर्मों का आचरण करना अनिवार्य है। धर्म के बिना व्यक्ति, समाज या राष्ट्र में शान्ति नहीं रह सकती। जब तक जीवन में धर्मभाव नहीं आता, एक प्रकार की अशान्ति और असंतुष्टि बनी रहती है। मगर शुभकर्म के उदय से मनुष्य जब धर्मभावना को प्राप्त करता है तब उसे अपूर्व आह्लाद का अनुभव होता है। यही प्रथम धर्मचिन्तावास नामक समाधि है।

गीता में एक श्लोक आता है–

सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

यहां श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—हे अर्जुन! सर्व धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा।

यहां चिन्तनीय है कि क्या श्रीकृष्ण सब धर्मों को त्यागने की सलाह देकर अर्जुन को अधर्मी बनाने की प्रेरणा कर रहे हैं? जिसने धर्म का परित्याग कर दिया हो, वह परमात्मा की शरण में क्यों जाएगा? फिर धर्म को त्याग देने वाले को मोक्ष की प्राप्ति स प्रकार हो सकती है? धर्म के बिना कृष्णजी किस जादू से पने शरणागत को मुक्तिधाम में भेज देंगे? अगर मोक्ष प्राप्त

करने के लिए धर्म को त्याग देने की आवश्यकता है तो दुनिया से धर्म हट ही जाना चाहिए ? इसकी उपादेयता ही क्या है ।

मगर इस प्रकार की मान्यता को कोई भी विचारशील व्यक्ति प्रश्रय नहीं दे सकता । धर्म के स्वरूप में अन्तर हो सकता है और आचारपद्धति में भी भेद हो सकता है, किन्तु मोक्ष के लिए धर्म को त्याग देने की हिमायत कोई नहीं कर सकता । तब स्वतः ही यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि तब गीता में कथित 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' अर्थात् 'सब धर्मों को छोड़ कर' इन शब्दों का आशय क्या है ?

सब धर्मों का आशय यहां पांचों इन्द्रियों के विषयों से है । इन्द्रियों के जो विषय हैं, उनसे चित्त को हटा लेना और शुद्ध परमात्मस्वरूप में लीन होना, यही मुक्ति का मार्ग है ।

कान हैं तो अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के शब्द सुनाई देंगे, आंखें हैं तो सभी प्रकार के रूप दिखाई देंगे, नाक है तो अच्छी बुरी गंध सूंघेंगे, जीभ से इष्ट-अनिष्ट रसों का आस्वादन होगा और स्पर्शेन्द्रिय है तो मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों का अनुभव भी होगा, किन्तु ऐसे प्रसंगों पर राग और द्वेष की परिणति उत्पन्न नहीं होने देना चाहिए । यही 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' शब्दों का आशय है । जैन आगम भी बतला रहे हैं कि विषयों के प्रति राग-द्वेष का परित्याग कर देने से आत्मा शान्त और स्थिर होती है ।

पहले वस्तुस्वरूप को जानना चाहिए और फिर जो उपादेय हो उसे ग्रहण करना और जो हेय हो उसे त्यागना चाहिए। हिंसा के स्वरूप को समझ कर छोड़ दोगे तो अहिंसा को आदर लोगे। असत्य को त्यागोगे तो सत्य अपने आप ही जीवन में आ जाएगा। इसी प्रकार असंयम चला जाएगा तो संयम स्वतः प्रकट हो जाएगा। इस प्रकार जीवन में पहली समाधि यह है कि वस्तुस्वरूप को मालूम करो और तत्पश्चात् ग्राह्य को ग्रहण करो और त्याज्य को त्यागो।

(२) दूसरी समाधि है अपूर्व शुभ स्वप्न देखना, अर्थात् ऐसा स्वप्न देखना जो जिंदगी में पहले कभी न देखा हो। जैसे भगवान् महावीर स्वामी ने केवलज्ञान उत्पन्न होने से पहले दस स्वप्न देखे थे। वह दस स्वप्न कौन से थे और उनका क्या फल होने वाला है, यह सब वर्णन ठाणांगसूत्र में, दसवें स्थानक में किया गया है।

श्रीभगवतीसूत्र में भी सोलह प्रकार के स्वप्नों का उल्लेख आता है। चौदह स्वप्न तो ऐसे हैं कि उन्हें देखने वाला एक ही भव में मोक्ष में चला जाता है और दो स्वप्न ऐसे हैं जिन्हें देख ले तो दो भव करके जीव मोक्ष में जाता है।

श्रीभगवतीसूत्र के १६वें शतक के छठे उद्देशक में पांच प्रकार के स्वप्न कहे गए हैं, यथा—

१– अहातच्चे (यथातथ्य)–जिस तरह की वस्तु स्वप्न में देखी है, जागने पर वैसी ही दिखना या उसी के अनुसार फल की प्राप्ति होना।

२– पयाणे (प्रतान)–विस्तृत रूप से स्वप्न आना।

३– चिंतासुमणे–जागृत अवस्था में जो चिन्तन किया हो, वही स्वप्न में देखना।

४– तव्विवरीए (तद्विपरीत)–स्वप्न में जो वस्तु देखी हो, जागने पर उससे विपरीत वस्तु की प्राप्ति होना।

५– अव्वत्तदंसणे (अव्यक्त स्वप्नदर्शन)–स्वप्नविषयक वस्तु का स्पष्ट न होना–साफ साफ समझ में न आना।

भाइयो ! कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई स्वप्न में हाथी पर आरूढ़ हुआ है तो जागने के बाद, दिन में हाथी पर चढ़ता है, कभी कभी हाथी पर चढ़ने का स्वप्न देखता है, मगर गधे पर चढ़ना पड़ता है। इस प्रकार कभी स्वप्न तथ्य भी होता है और कभी उसका फल विपरीत भी हो जाता है, जैसा कि पूर्वोक्त पांच भेदों से स्पष्ट है।

कभी-कभी शरीर की प्रकृति की विशेषता से भी स्वप्न आ जाता है। जिस समय पित्त का उठाव होता है और शरीर में गर्मी व्याप्त हो रही होती है, उस समय मनुष्य स्वप्न देखता है कि मैं

पानी में तैर रहा हूँ और सर्वत्र पानी ही पानी हो रहा है। वात का विकार प्रबल होता है तो मनुष्य स्वप्न में आकाश में उड़ता है, जैसे मैं हवाईजहाज में उड़ रहा हूं।

शास्त्रों में स्वप्नों के सम्बन्ध में बहुत-सा विवेचन मिलता है, मगर उस सब को यहां कहने की आवश्यकता नहीं है। यहां तो सिर्फ यही बतलाना है कि स्वप्न भी चित्तसमाधि का एक कारण है। जब कोई अपूर्व और शुभ स्वप्न दिखाई देता है तब उसके कारण चित्त में समाधि उत्पन्न होती है। हृदय हर्ष से भर जाता है।

(३) तीसरा समाधिस्थान है—अपूर्व जातिस्मरण आदि ज्ञान की प्राप्ति। इससे भी चित्त में शान्ति और स्थिरता उत्पन्न होती है। जातिस्मरण ज्ञान पांच ज्ञानों में से मतिज्ञान का विशिष्ट भेद है। जब मतिज्ञानावरण का विशेष क्षयोपशम होता है, लेश्या विशुद्ध होती है और शुभ अध्यवसाय होता है, और अनुकूल बाह्य कारण मिल जाता है, जैसे किसी बाह्य पदार्थ को देखना आदि, तो सहसा जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। यह ज्ञान अपने ९०० पूर्वभवों को भी जान सकता है। मगर इस ज्ञान की यह मर्यादा है कि जहां तक संज्ञी के भव होंगे वहीं तक जान सकेगा। असंज्ञी भव को नहीं जानता।

आजकल भी समाचारपत्रों में पुनर्जन्म के समाचार आया

करते हैं। कई पश्चिमी विद्वानों ने पुनर्जन्म की विशेष घटनाओं की परीक्षा की है और उनका यह विश्वास हो चला है कि पुनर्जन्म अवश्य होता है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि पूर्वजन्म में जो काम अधूरा रह गया हो, जातिस्मरण होने पर मनुष्य उसे पूरा करने को तैयार हो जाता है। ऐसे कई उदाहरण उत्तराध्ययनसूत्र में मिलते हैं। समुद्रपाल चम्पा नगरी के निवासी थे। उनके पिता व्यापार के लिए विदेश गए तो वहीं रुक्मणी नामक कन्या के साथ उनका विवाह हो गया। धनोपार्जन करके जब वह वापस लौट रहे थे तो समुद्र में ही उनकी पत्नी रुक्मिणी ने पुत्र का प्रसव किया। अतएव पुत्र का नाम समुद्रपाल रख दिया गया। समुद्रपाल अनुक्रम से बड़े हुए और उनका भी विवाह हो गया।

एक दिन समुद्रपाल अपने भवन के झरोखे में बैठे नगर का दृश्य देख रहे थे। उन्होंने देखा कि कुछ राजकर्मचारी एक व्यक्ति को, जिसे प्राणदण्ड दिया गया था; बड़ी बुरी तरह ले जा रहे हैं। उसकी दुर्दशा को देखकर समुद्रपाल के चित्त में विचार आया—इस मनुष्य ने अशुभ कर्मों का उपार्जन किया है, उन्हीं के फलस्वरूप इसे यह घोर वेदना भुगतनी पड़ रही है। इस प्रकार विचार करते-करते उन्हें जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया। इससे उन्हें पूर्वभव का स्मरण हो आया। तत्पश्चात् वे माता-पिता की अनुमति लेकर साधु हो गए।

मृगापुत्र युवराज का भी वर्णन आता है। वे अपनी पत्नियों के साथ महल के गवाक्ष में क्रीड़ा कर रहे थे। अकस्मात् राजपथ से जाते हुए एक मुनिराज पर उनकी दृष्टि पड़ गई। उन्हें देखकर मृगापुत्र को कुछ-कुछ ऐसा आभास होने लगा कि ऐसा रूप मैंने पहले भी कभी देखा है। यह मेरा पूर्वपरिचित रूप है। इस प्रकार विचार करते-करते उन्हें अपने पूर्वजन्म की स्मृति आ गई। जब पूर्वजन्म की स्मृति जाग उठी तो उन्होंने विचार किया- यह उत्तम जीवन आमोद-प्रमोद में, भोग-विलास में नष्ट करने के लिए नहीं है। इसका सच्चा सदुपयोग अधूरे कार्य को पूरा करने में है।

इस प्रकार विचार करते-करते उनके अन्तःकरण में वैराग्य की लाल लहरें लहराने लगीं. माता-पिता के निकट जाकर मुनिजीवन अपनाने की अनुज्ञा मांगी, मगर माता-पिता अपने सुयोग्य पुत्र को भला कब सहज ही आज्ञा देने वाले थे। उन्होंने मुनिजीवन की अनेक कष्टकथाएँ अपने पुत्र के समक्ष रखीं और भरपूर चेष्टा की कि यह भयभीत होकर अपने संकल्प को बदल दे, परन्तु राजकुमार को तो ज्ञान का आलोक प्राप्त हो गया था। वह भुलावे में कैसे आ सकता था ? अतएव उसने कहा—माताजी और पिताजी मैं अनेको वार नरक की सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, ताड़ना, तर्जना, वध, बंध आदि दुस्सह वेदनाएँ सहनकर चुका हूं। उन वेदनाओं की तुलना में साधु जीवन के कष्ट तो पर्वत की

तुलना में राई के समान हैं। मैं इनसे तनिक भी विचलित न होऊँगा।

तात्पर्य यह है कि राजकुमार मृगापुत्र को पूर्वभवका स्मरण हुआ, इसी कारण उन्होंने अपने अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने का संकल्प किया। इसी तरह किसी को कुछ और किसी को कुछ देख कर जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो जाता है और इससे भी चित्त में समाधि उत्पन्न होती है।

(४) चौथी चित्तसमाधि का कारण अपूर्व देवदर्शन है। पहले कभी देवता का दर्शन नहीं हुआ हो और जब प्रथम बार देव का दर्शन होता है तो उसकी ऋद्धि, दीप्ति और प्रभाव देख कर दर्शक के चित्त में समाधि उत्पन्न होती है।

जीवन में साधना होती है तो देवता भी किसी-किसी को दर्शन देते हैं और वे सेवा भी करते हैं। किसको देवदर्शन होते हैं इस विषय में दशाश्रुतस्कंधसूत्र की दश समाही अध्ययन में कहा गया है—

पंताइ भयमाणस्स, विवित्तं सयणासणं।
अप्पाहारस्स दंतस्स, देवा दंसेति ताइणो ॥४॥

अर्थात्—देवता का दर्शन करने की उत्कंठा किसे नहीं होती ? सब देव का साक्षात्कार करना चाहते हैं, परन्तु वे गलियों

में भटकते नहीं फिरते कि चाहे जिसको और चाहे जब उनके दर्शन हो जाएँ। जो अन्त-प्रान्त अर्थात् रूखे सूखे, ठण्डे बासी एवं निःस्वाद भोजन का सेवन करते हैं, जो एकान्त शय्या (स्थानक) और आसन का सेवन करते हैं, जो शरीर को टिकाए रखने मात्र के उद्देश्य से अल्प आहार करते हैं और जिन्होंने अपनी इन्द्रियों का भलीभांति दमन किया है, ऐसे तपोमूर्त्ति महात्माओं को ही देवताओं का साक्षात्कार होता है। एक कवि ने कहा है—

कम खाना कम बोलना, कम सोना कम डोल।
चारों गुण जिसमें हुए, वही पुरुष अनमोल॥

अर्थात्—जो अनासक्त मनोवृत्ति से अल्प आहार करता है, अल्प निद्रा लेता है, प्रयोजन होने पर परिमित भाषण करता है और गम खाता है या अनावश्यक रूप से भटकता नहीं है, वही अनमोल—महान् पुरुष है।

तात्पर्य यह है कि गाथा में कथित विशेषताओं से जो सम्पन्न है उसी को देव का दर्शन होता है और जब देवदर्शन होता है तो चित्त में समाधि उत्पन्न होती है।

(५) पांचवाँ चित्तसमाधि का स्थान अभिनव अवधिज्ञान उत्पन्न होना है। अवधिज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व जीव स्थूल पुद्गलों को ही देख पाता है और वह भी जो व्यवधानरहित हों

और दूर न हों। परन्तु अवधिज्ञान उत्पन्न होते ही लोक नाना प्रकार के जीवों और पुद्गलों से परिपूर्ण दिखाई देने लगता है। जो स्थान पहले खाली नजर आता था, वहां भी अनन्त पुद्गल दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इस अद्भुत दृश्य को देख कर भी चित्त में समाधि उत्पन्न होती है।

(६) छठा समाधिस्थान अवधिदर्शन की नवीन प्राप्ति होना है। जिसे अवधिज्ञान प्राप्त होता है उसे अवधिदर्शन भी अवश्य प्राप्त होता है। अवधिज्ञान के उपयोग से पहले, पदार्थों का सामान्य अवलोकन अवधिदर्शन कहलाता है। इसकी प्राप्ति से भी चित्त में समाधि उत्पन्न होती है।

(७) सातवां समाधिस्थान मनःपर्यव ज्ञान की अपूर्व प्राप्ति है। पहले मनः पर्यव ज्ञान प्राप्त नहीं था और जब वह पहले-पहल प्राप्त होता है तो जीव को अपूर्व आह्लाद होता है। मनःपर्यव ज्ञान प्राप्त होने पर संयमी पुरुष अढ़ाई द्वीप के संज्ञी जीवों द्वारा गृहीत मनोवर्गणा के पुद्गलों को प्रत्यक्ष जानने लगता है। तब उसका चित्त समाधियुक्त हो जाता है।

(८) आठवां समाधिस्थान नया-नया केवलज्ञान प्राप्त होना है। केवलज्ञान के प्राप्त होते ही जब सम्पूर्ण विश्व हस्तामलकवत् आत्मा को ज्ञान होता है, तब भी लोकोत्तर समाधि प्राप्त होती है।

(९) नौवां समाधिस्थान केवलदर्शन प्राप्त होना है। जिसे

अब तक केवलदर्शन प्राप्त नहीं था, उसे जब अभिनव केवलदर्शन प्राप्त हुआ तो वह तीनों लोकों की समस्त वस्तुओं को एक साथ देखने लगा। यह भी समाधि का एक कारण है।

(१०) दसवीं समाधि केवलमरणसमाधि है। केवलज्ञान-दर्शन से सम्पन्न होकर शरीर का त्याग करना केवलमरणसमाधि है। इससे समस्त दुःखों का सदा के लिए अन्त हो जाता है, जन्म-मरण की परम्परा समाप्त हो जाती है और आत्मा समस्त उपाधियों से मुक्त हो जाता है। अतएव यह समाधि सर्वोत्तम समाधि है।

श्रीठाणांगसूत्र में भी दस प्रकार की समाधि का उल्लेख किया गया है। दशवैकालिक सूत्र में चार प्रकार की समाधि का वर्णन मिलता है। एक भाषा कविता में भी चार समाधियों का कथन है-

सूत्र विनय आचार तपस्या,
चार प्रकार समाधि रे प्राणी।
ते करिये भव-सागर तरिये,
एम कहे जिनराज रे प्राणी।
श्रीमहावीर नमो वर नाणी ॥ टेक ॥

भाइयों! चित्त में जब तक विक्षेप बना रहता है तब तक । ला। नहीं होता और जब तक चित्त में शान्ति नहीं तब क संसार का उत्तम से उत्तम वैभव भी सुखदायी नहीं होता।

अतएव चित्त को समाधियुक्त—विक्षेपहीन बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे तत्काल परमशान्ति की प्राप्ति होगी और प्रतिकूल परिस्थितियां भी दुःखी नहीं बना सकेंगी।

अमरसेन-वीरसेन चरित—

कल बतलाया गया था कि भोजन सामग्री लेने के लिए गये हुए अमरसेनकुमार को किसी प्रकार एक वेश्या ने अपने चंगुल में फँसा लिया? उसकी प्रेमपूर्ण मीठी-मीठी बातों पर अमरसेन भी मुग्ध हो गया, वह वेश्या के घर चला गया और वहीं रहने लगा।

अमरसेन वेश्या के अनुराग में अन्धा हो गया और इस बात को भूल गया कि वह अपने दुःख के साथी और सहोदर भाई को भूखा छोड़कर आया है।

वेश्या ने अमरसेन की बगल में पोटली देखकर और असलियत को भांपकर कहा—प्राणनाथ, इस पोटली में क्या है? इसे तो दिखलाइए, अमरसेन ने उसे दिखलाने में आनाकानी की तो वह बोली-नाथ, क्या अब तक आप मुझसे दुराव रखते हैं? मैं तो आपकी हो चुकी हूँ, क्या आप मुझे अपनी नहीं मानते?

आखिर अमरसेन ने पोटली खोलकर दिखला दी। मोहरें

देखकर वह अत्यधिक प्रसन्न हुई, उसने बातों ही बातों में मोहरें अपने कब्जे में कर लीं, फिर उसने सोचा–इसके मन पर विश्वास जमाने के लिए मुझे भी अपना माल इसे दिखा देना चाहिए, और उसने पेटियां खोल-खोलकर सारी मूल्यवान् वस्तुएँ अमरसेन को दिखला दीं, इस प्रकार दोनों सुख चैन से रहने लगे।

अमरसेन को प्रतिदिन कुल्ला करते ही पांच सौ मोहरें मिल जाती थीं और वे वेश्या के भंडार को बढ़ाने के काम आती थीं। वेश्या सोच-सोचकर चकित थी कि इतनी मोहरें कहां से आ जाती हैं ? उसने सोचा–कुछ भी हो मेरे पास सैकड़ों पुरुष आए हैं, मगर ऐसा कल्पवृक्ष प्रथमबार ही आया है। अब मैं धन्य हो गई और मेरा यह पेशा करना भी सफल हो गया। उधर वीरसेन, अमरसेन की प्रतीक्षा करता तालाब के तीर पर बैठा रहा, जब काफी समय हो गया और अमरसेन न आया तो उसे चिन्ता होने लगी, उसे किसी नवीन विपत्ति की आशंका होने लगी। कभी सोचता–क्या अमरसेन सारे का सारा शहर ही देखने में लग गया ! मगर वह तो शीघ्र ही लौटने को कह गया था वह पराधीनता में पड़े बिना इतनी देर नहीं रुक सकता।

एक घण्टा बीता, दो बीते और चार घण्टे भी निकल गए। अब तक न लौटने का क्या कारण हो सकता है ? इस प्रकार वीरसेन चिन्ता से व्याकुल होने लगा, क्या अमरसेन रास्ता

भूल गया ? क्या कोई नवीन दुर्घटना हो गई ? क्या कोई परिचित व्यक्ति मिल गया और वह आग्रह करके उसे अपने घर ले गया ? कहीं मोहरों के कारण ठगों के चंगुल में तो नहीं फँसा गया ? किसी खेल को देखने में नहीं विलम गया ?

भाइयो ! जब मनुष्य बेकार बैठ जाता है तो उसे विविध प्रकार के संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं, काम में लग जाने पर व्यर्थ की चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं, वीरसेन उस समय किसी कार्य में व्यग्र नहीं था, यही, नहीं, वह विपदा का मारा, भूखा, थका हुआ और अशान्तचित्त था। नवीन अपरिचित प्रदेश में आया हुआ था, ऐसी परिस्थिति में उसे चिन्ता होना स्वाभाविक ही था। बैठे २ वह चिन्तातुर हो गया। अतीत जीवन के नाना दृश्य उसके दिमाग में तेजी के साथ घूमने लगे। बचपन में ही माता की वात्सल्यमयी गोद से वंचित होना पड़ा, विमाता ने पालन-पोषण किया! कुछ समय बीता कि माता पिता ही दुश्मन हो गए। अपने पराये से बढ़कर हो गए। चाण्डालों के हाथ से कत्ल कराने का हुक्म पिता ने दिया! चाण्डालों की दया से किसी प्रकार प्राण बच सके। कहां कम्पिलपुर और कहां यह सिंहलद्वीप भाग्य ने हमें यहां लाकर पटक दिया है। अब तक हम दोनों भाई साथ थे, संकट के समय एक दूसरे को सान्त्वना देते थे। मगर दैव को यह भी सहन न हुआ। मेरा प्यारा भाई भी बिछुड़

देखकर वह अत्यधिक प्रसन्न हुई, उसने बातों ही बातों में मोहरें अपने कब्जे में कर लीं. फिर उसने सोचा–इसके मन पर विश्वास जमाने के लिए मुझे भी अपना माल इसे दिखा देना चाहिए. और उसने पेटियां खोल-खोलकर सारी मूल्यवान् वस्तुएँ अमरसेन को दिखला दीं, इस प्रकार दोनों सुख चैन से रहने लगे।

अमरसेन को प्रतिदिन कुल्ला करते ही पांच सौ मोहरें मिल जाती थीं और वे वेश्या के भंडार को बढ़ाने के काम आती थीं। वेश्या सोच-सोचकर चकित थी कि इतनी मोहरें कहां से आ जाती हैं ? उसने सोचा–कुछ भी हो मेरे पास सैकड़ों पुरुष आए हैं, मगर ऐसा कल्पवृक्ष प्रथमबार ही आया है। अब मैं धन्य हो गई और मेरा यह पेशा करना भी सफल हो गया। उधर वीरसेन, अमरसेन की प्रतीक्षा करता तालाब के तीर पर बैठा रहा, जब काफी समय हो गया और अमरसेन न आया तो उसे चिन्ता होने लगी, उसे किसी नवीन विपत्ति की आशंका होने लगी। कभी सोचता–क्या अमरसेन सारे का सारा शहर ही देखने में लग गया ! मगर वह तो शीघ्र ही लौटने को कह गया था वह पराधीनता में पड़े बिना इतनी देर नहीं रुक सकता।

एक घण्टा बीता, दो बीते और चार घण्टे भी निकल गए। अब तक न लौटने का क्या कारण हो सकता है ? इस प्रकार वीरसेन चिन्ता से व्याकुल होने लगा, क्या अमरसेन रास्ता

भूल गया ? क्या कोई नवीन दुर्घटना हो गई ? क्या कोई परिचित व्यक्ति मिल गया और वह आग्रह करके उसे अपने घर ले गया ? कहीं मोहरों के कारण ठगों के चंगुल में तो नहीं फँसा गया ? किसी खेल को देखने में नहीं विलम गया ?

भाइयो ! जब मनुष्य बेकार बैठ जाता है तो उसे विविध प्रकार के संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं, काम में लग जाने पर व्यर्थ की चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं, वीरसेन इस समय किसी कार्य में व्यग्र नहीं था, यही, नहीं, वह विपदा का मारा, भूखा, थका हुआ और अशान्तचित्त था। नवीन अपरिचित प्रदेश में आया हुआ था, ऐसी परिस्थिति में उसे चिन्ता होना स्वाभाविक ही था। बैठे २ वह चिन्तातुर हो गया। अतीत जीवन के नाना दृश्य उसके दिमाग में तेजी के साथ घूमने लगे। बचपन में ही माता की वात्सल्यमयी गोद से वंचित होना पड़ा, विमाता ने पालन-पोषण किया ! कुछ समय बीता कि माता पिता ही दुश्मन हो गए। अपने पराये से बढ़कर हो गए। चाण्डालों के हाथ से कत्ल कराने का हुक्म पिता ने दिया ! चाण्डालों की दया से किसी प्रकार प्राण बच सके। कहां कम्पिलपुर और कहां यह सिंहलद्वीप भाग्य ने हमें यहां लाकर पटक दिया है। अब तक हम दोनों भाई साथ थे, संकट के समय एक दूसरे को सान्त्वना देते थे। मगर दैव को यह भी सहन न हुआ। मेरा प्यारा भाई भी बिछुड़

गया दिखता है, निष्कारण वह रुकने वाला नहीं था, अवश्य किसी संकट में फँस गया होगा।

वीरसेन के नेत्र आंसुओं से भर जाते हैं। वह सोचने लगता है-हाय मैं कितना मूर्ख हूँ कि अकेले भाई को अपरिचित नगर में भेज दिया। मैं भी साथ चला गया होता तो यह अवसर क्यों आता? मुझे यहां हांडे थोड़े ही गढ़ने थे। मगर—

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।

मेरी मती मारी गई थी। उस समय इस संकट की कल्पना आ गई होती तो अब पछताना न पड़ता।

सोचते-सोचते वीरसेन व्यग्र हो उठता है। वह धीरे धीरे आसपास चहलकदमी करता है, परन्तु शोक और सन्ताप की तीव्रता के कारण कुछ भी निर्णय नहीं कर पाता कि क्या करूं-क्या न करूं।

आखिर वीरसेन को भरोसा हो गया कि यहां बैठे रहने से अमरसेन मिलने वाला नहीं। उसे अवश्य किसी ने रोक लिया है। कहीं चलना चाहिए और पता लगाना चाहिए।

सामने कुछ दूरी पर एक उद्यान दिखाई दिया। वीरसेन वहां चला गया। उसने वृक्षों की सघन छाया में विश्राम किया और कुछ फलों से पेट की ज्वाला शान्त की। थोड़ी देर में उद्यान

की शीतल वायु के कारण उसे नींद आ गई और वह रात्रि यहीं व्यतीत हुई। जब सूर्योदय होने ही वाला था तो उसने सोचा— मुझे सरोवर के किनारे पर ही जाना चाहिए। कदाचित् अमरसेन आ गया होगा तो वह वहीं मेरी प्रतीक्षा करता होगा। यह सोच कर वह फिर सरोवर पर आ पहुँचा। इधर-उधर नजर दौड़ाई पर अमरसेन का कहीं पता न लगा। वह दिन भर उसकी वहीं प्रतीक्षा करता रहा। वह यही कल्पना करता रहा कि भाई अब आता होगा, अब आता होगा।

वीरसेन नगर की ओर से आने वाले राहगीरों को अमर-सेन की हुलिया बतलाकर पूछता—आपने कहीं उसे देखा तो नहीं है? मगर अन्त तक वह निराश ही रहा। इस प्रकार सरोवर पर प्रतीक्षा करते-करते छह दिन बीत गए। वह फल-फूल खाकर निर्वाह कर लेता और भाई की राह देखा करता। सातवां दिन खाई हुई गुठली के प्रभाव से उसकी राज्यप्राप्ति का दिन था। तथापि उपस्थित संकट की खिन्नता के कारण उसे तनिक भी प्रसन्नता नहीं थी।

भाइयो! मानवजीवन में पुण्य और पाप का चक्र चलता ही रहता है। पुण्य का उदय होता है तो किंचित् सुख का आभास होने लगता है और पाप का उदय आने पर दुःख का वज्र आ गिरता है। इन कुमारों को ही देखो। कितना उतार-चढ़ाव आया!

पुण्य के उदय से राजमहल में जन्मे, सोने के पालने में झूले, और सर्वोत्तम सुख में पले। फिर पाप का चक्र चला तो मस्तक कटने की नौबत आ गई। चाण्डालों से प्राणभिक्षा मांगनी पड़ी। फिर पुण्य की एक किरण प्रकट हुई तो महान् फल देने वाली गुठलियां मिल गईं और देवता की सहायता ने नगर के निकट पहुंचा दिया। लेकिन भाग्याकाश में पुनः पाप की काली घटा आई और दोनों भाइयों का वियोग हो गया।

इन घटनाओं से हमें यह पाठ सीखना है कि दुःख आ पड़ने पर निराश होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि दुनियां का कोई भी दुःख अनन्त नहीं है। उसका अन्त अवश्यंभावी है। इसी प्रकार सुख आने पर फूल जाना भी उचित नहीं है, क्योंकि सुख के अनन्तर दुःख आने वाला है।

चक्रवत्परिवर्तन्ते, दुःखानि सुखानि च।

संसार में सुख और दुःख चक्र की भांति घूमते ही रहते हैं।

दो सगे भाइयों की किस्मत भी एक-सी नहीं होती। उनके अपने-अपने संचित पुण्य-पाप होते हैं। आज आप प्रत्यक्ष देखते हैं कि दो भाइयों में से एक की हजारों लोग तारीफ करते हैं और दूसरे को कोई जानता भी नहीं है। एक कवि ठीक ही कहता है—

एक घर में दो विरादर, किस्मत जुदा जुदा है।

एक उदर से दो भाई पैदा हुए हैं मगर भाग्य उनका अलग-अलग होता है। एक हीरा ताज में जड़ा जाता है और दूसरा पैरों तले रौंदा जाता है। दो पाषाणों की किस्मत का करिश्मा देखिए कि एक कलाकार के हाथों में पहुंच कर प्रतिमा के रूप में परिणत हो गया जिसे हजारों-लाखों हाथ जोड़ते और प्रणाम करते हैं। दूसरा दरवाजे में लगाया गया है जिस पर आने-जाने वाले पैर रख कर चले जाते हैं। इस प्रकार संसार के जीवों को पुण्य-पाप के अनुसार फल की प्राप्ति होती रहती है।

सातवें दिन सिंहलद्वीप के राजा का स्वर्गवास हो गया। उसे अचानक कोई गम्भीर रोग हुआ। बड़े-बड़े अनुभवी राजवैद्य आए। उन्होंने अपनी सारी बुद्धि खर्च कर दी और उत्तम से उत्तम चिकित्सा की, परन्तु फल कुछ भी नहीं निकला।

भाइयो! आयु की रस्सी एक बार टूट जाती है तो फिर नहीं जुड़ती। इसी को कहते हैं—मौत को रोकने का कोई उपाय नहीं है। टूटी की बूटी नहीं है। आखिर राजा की मृत्यु हो गई।

राजा की आकस्मिक मृत्यु के समाचार फैलते ही राजमहल में अनेक गद्दी के उत्तराधिकारी उमड़ पड़े। पुराने जमाने में यह नियम था कि जब तक उत्तराधिकारी का राज्याभिषेक न हो जाय तब तक राजा का दाहसंस्कार नहीं किया जाता था। मगर अचानक मृत्यु होने के कारण राजा ने अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित

नहीं किया था। इसी कारण अनेक दावेदार खड़े हो गए। कोई मूंछों पर ताव देने लगे, कोई तलवार पर हाथ फेरने लगे और कोई वाग्युद्ध करने लगे। जब निपटारे की कोई सूरत नजर न आई और मृत महाराज के शव की दुर्दशा होने लगी तो वयोवृद्ध दीवान ने एक सुझाव रक्खा। उसने कहा—आपस में झगड़ने का परिणाम बड़ा ही दारुण होगा। आप सब अपने अपने भाग्य पर भरोसा कीजिए। राज्य के पाटवी हाथी की सूंड में माला दे दीजिए। वह माला जिसके गले में डाल दे, वही राज्य का अधिकारी समझा जाए।

दीवान का सुझाव सब ने स्वीकार कर लिया। हाथी को सजाया गया और उसकी सूंड में माला दे दी गई। गाजे-बाजे और भारी भीड़ के साथ हाथी रवाना हुआ। राजगद्दी के इच्छुक लोग उसके आगे-आगे चलने लगे, इस आशय से कहीं हाथी हमारे गले में माला पहना दे। मगर हाथी किसी की ओर दृष्टि डाले बिना ही सीधा आगे चलता गया और नगर के बाहरी भाग में जा पहुंचा। राज्य के इच्छुक निराशा के गर्त्त में गिरने लगे और अपने दुर्भाग्य को कोसने लगे। फिर भी हाथी के साथ तो चलते ही जा रहे थे। कदाचित् उसके मन में आ जाय और माला डाल ही दे।

चलता-चलता हाथी उसी जगह जा पहुंचा जहां वीरसेन सो रहा था। ज्यों ही लोगों का कोलाहल उसके कानों में पड़ा,

उसकी निद्रा भंग हो गई। हाथी को अपनी ओर आते देख एक बार वह भयभीत-सा हो गया और एक ओर भागने लगा। मगर दीवान ने कहा—भीत न होओ पथिक! यह राज्य का पाटवी हाथी है। आपको कोई क्षति नहीं पहुँचाएगा। यह राजा को वरण करने के लिए छोड़ा गया है। जिसके गले में माला डाल देगा, वही यहां के राज्य का अधिपति होगा।

वीरसेन अपने भाग्य की परीक्षा के लिए निश्चल भाव से वहीं का वहीं खड़ा रह गया। उसे स्मरण आया कि आज मेरी राज्यप्राप्ति का दिन है।

हाथी सब को निराशा में छोड़ कर सीधा वीरसेन के पास आया, मानो उसी को लक्ष्य करके चला हो। वीरसेन के गले में पुष्पमाला अर्पित करके वह वहीं खड़ा हो गया। यह देख कर सभी लोग आश्चर्यान्वित हो गए और कहने लगे—इसे कहते हैं भाग्य।

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सभी वीरसेन को राजा मानने के लिए विवश थे। अतएव लोगों ने एक साथ गगनभेदी घोष से कहा-'महाराज की जय, महाराज की जय।'

इस उच्च घोष से दिशामंडल गूंज उठा। अधिकांश लोग हर्षातिरेक से खिल उठे। कुछ के वदन म्लान हो गए।

दीवान ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया—महाराज! आप

इसी गजराज पर आरूढ़ होकर राजमहल पधारें। वीरसेन हाथी पर सवार हो गया। वाद्यों की मंगलध्वनि और जय विजय के घोष के साथ वह नगर में लाया गया। स्नान-मण्डनादि के पश्चात् उसे सिंहासन पर आसीन कर दिया गया। सभी सामन्त सेनापति, दीवान आदि ने हाथ जोड़ कर कहा—आज से आप हमारे राजा हैं, हम आपके आज्ञाकारी सेवक हैं। आपके आज्ञानुवर्त्ती रहेंगे।

राज्यारोहण के संक्षिप्त समारोह के पश्चात् महाराज वीरसेन के आदेश से मृतक राजा के शव का परम्परागत विधि से दाहसंस्कार किया गया। राजा वीरसेन योग्यता के साथ राज्य-संचालन करने लगा।

भाइयो ! पुण्य की महिमा अगार है। वीरसेन का एक राज्य गया तो दूसरा मिल गया। ठीक ही कहा है—

कबिरा करणी आपणी, कभी न निष्फल जाय।
सौ कोसां पीछे धरी, मिली अगाड़ी आय॥

कबीरदास कहते हैं—मानव, करणी कर। शुभ करणी करेगा तो रिजर्व बैंक में जमा होती जाएगी और नियत समय पर उससे लाभ उठा सकेगा।

हम भी आपको यही प्रेरणा करते हैं। मनुष्य का जीवन मिला है तो कुछ सार निकाल लो। दान देकर, ब्रह्मचर्य का पालन

करके, तपस्या करके और भावों की शुद्धता रख कर सार निकाला जा सकता है।

वीरसेन ने मुनिराज को पूर्वभव में दान दिया था। उसके फलस्वरूप उसे राज्य की प्राप्ति हुई। दूसरा भाई वेश्या के चंगुल में पड़ा हुआ है। किस प्रकार दोनों का मिलाप होता है और आगे क्या क्या गुल खिलते हैं, यह आगे सुनने से पता चलेगा।

केन्टोनमेंट बैंगलोर
२५-६-५६

उत्तम आचार



प्रार्थना—

गीर्वाणद्रुमधेनुकुम्भमणयस्तस्यांगणे रंगिणो-
देवा दानवमानवाः सविनयं तस्मै हितध्यायिनः ।
लक्ष्मीस्तस्य वशाऽवशेव गुणिनां ब्रह्माण्डसंस्थायिनी,
श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथमनिशं संस्तौति यो ध्यायति ॥१०॥



भाइयो ! स्तुतिकार कहते हैं—जो भव्य जीव निरन्तर चिन्तामणि स्वरूप श्री पार्श्वनाथ भगवान् का स्तवन और ध्यान करता है, उसे इस संसार में किसी भी वस्तु का अभाव नहीं रहता, उसके सभी मनोवांछित कार्य सहज ही सिद्ध हो जाते हैं, कल्पवृक्ष, कामधेनु, कामकुंभ और चिन्तामणि रत्न उसके आंगन में डोलते हैं, अनायास उसकी सेवा में उपस्थित हो जाते हैं, और वे क्यों उपस्थित न होंगे जब कि देव, दानव और मानव नम्रता के साथ उसके हितचिन्तन में तल्लीन रहते हैं, तीनों

लोकों की वरिष्ठ विभूति विवश होकर उसकी वशवर्त्तिनी बन जाती है।

यह पार्श्वनाथ भगवान् के स्तवन और ध्यान का लौकिक फल है, लोग लक्ष्मी को प्राप्त करना चाहते हैं मगर उसे प्राप्त करने का जो अचूक उपाय है उससे दूर दूर रहते हैं। यही कारण है कि अधिकांश को उसकी प्राप्ति से वंचित ही रहना पड़ता है किसी को पूर्वार्जित पुण्य के योग से मिल भी जाती है तो वह तुच्छ ही प्राप्त होती है। लक्ष्मी को अपनी दासी बनाने का सफल उपाय भगवान् पार्श्वनाथ के चरणों का आश्रय लेना है। जिसके अन्तःकरण में पार्श्वप्रभु विराजमान रहते हैं, लक्ष्मी विवश होकर उसके पास आती है और उसके आंगन में क्रीड़ा करती है। भगवान् का स्मरण और ध्यान समस्त दुःखों का अन्त करके सब-सुखों का जनक है। देव दानव सभी उसके वश में हो जाते हैं और किंकर के समान व्यवहार करते हैं।

मगर एक बात ध्यान में रहनी चाहिए, भगवान् का स्तवन और ध्यान उसी का सच्चा है जो उनके आदेशों का अतिक्रमण नहीं करके अनुसरण करता है। जो व्यक्ति वाणी से पार्श्वनाथ का गुणगान करता है मगर व्यवहार में उनकी आज्ञा उल्लंघन करता है, समझना चाहिए कि वह भगवान् का
है, उसे भक्ति का परिपूर्ण फल नहीं मिलता।

भगवान् के आदेशों को मन वचन काय से शिरोधार्य करते हुए जो भव्य जीव पार्श्व प्रभु का गुण गान और ध्यान करेंगे, वे न केवल लौकिक सम्पत्ति के वरन् लोकोत्तर–आध्यात्मिक सम्पत्ति के भी अधिकारी बनेंगे।

समवायांग सूत्र—

भगवान् के आदेश और उपदेश क्या हैं, जिनका अनुसरण करना जीवन व्यवहार में आवश्यक है और जिनका पालन किये बिना भगवान् की आराधना पूर्ण नहीं हो सकती; यह समझाने के लिए समवायांगसूत्र का विवेचन कर रहा हूं, कल दस चित्तसमाधि के कारणों पर प्रकाश डाला गया था, उसे आगे बतलाया गया है कि मेरु पर्वत, जो मध्यलोक और जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित है, मूल में दस हजार योजन का विस्तार वाला है। उसकी समग्र उँचाई एक लाख योजन की है।

भगवान् अरिष्टनेमि की काया दस धनुष ऊँची थी, कृष्ण वासुदेव की तथा राम बलदेव का शरीर भी दस धनुष ऊँचा था।

दस नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले हैं, अर्थात् इन नक्षत्रों में ज्ञानाभ्यास प्रारम्भ करने वाले को शीघ्र ही ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, वे ये हैं–(१) मृगशिर (२) आर्द्रा (३) पुष्य (४) पूर्वा फाल्गुनी (५) पूर्वाषाढ़ा (६) पूर्वा भाद्रपदा (७) मूल (८) आश्लेषा (९) हस्त, और (१०) चित्रा नक्षत्र।

इसके बाद बतलाया गया है कि अकर्मभूमिज मनुष्यों का निर्वाह दस प्रकार के कल्पवृक्षों से होता है, दस प्रकार के कल्पवृक्ष उनकी समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण कर देते हैं; वे इस प्रकार है—

(१) मत्तांग–मद्य व बलवीर्य वर्धक वस्तुएँ देने वाले।

(२) भृंगांग–जिनसे नाना प्रकार के पात्र प्राप्त होते हैं।

(३) त्रुटितांग–जिनसे वाद्य प्राप्त हों।

(४) दीपांग–दीपक के समान प्रकाश करने वाले।

(५) ज्योतिरंग–सूर्य के समान प्रकाश करने वाले या आग का काम देने वाले।

(६) चित्रांग–विविध प्रकार के पुष्प देने वाले।

(७) चित्ररसांग–जिनसे अनेक प्रकार के भोजन प्राप्त हों।

(८) मण्यंग–आभूषण प्रदान करने वाले।

(९) गेहाकार–मकान के रूप में आश्रय देने वाले।

(१०) अणियणा–वस्त्र देने वाले।

अकर्मभूमि में जो युगल होते हैं, इन्हीं वृक्षों से अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, उनकी आवश्यकताएँ बहुत परिमित होती हैं और जो होती हैं, इन्हीं से पूर्ण हो जाती हैं।

तत्पश्चात् कहा गया है कि रत्नप्रभा नामक नरकभूमि में जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है, इस भूमि के किसी २ नारक की स्थिति दस पल्योपम की है।

चौथी नरकभूमि में दस लाख नारकावास हैं और वहां के नारकों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है, पांचवें नरक के नारकों की जघन्य स्थिति दस सागर की है।

असुरकुमारों में किसी-किसी देव की स्थिति दस सागरोपम की है असुरकुमारों के इन्द्र को छोड़कर अन्य भवनपति देवों की स्थिति दस हजार वर्ष की है, किसी-किसी असुरकुमार देव की स्थिति दस पल्योपम की कही गई है।

बादर वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की होती है।

वाणव्यन्तर देवों की भी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की होती है।

प्रथम और द्वितीय देवलोक में किसी-किसी देव की स्थिति दस पल्योपम की है। पांचवें ब्रह्मलोक नामक देवलोक में उत्कृष्ट दस सागरोपम की स्थिति है। लान्तक नामक छठे देवलोक में जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है। पांचवें देवलोक में

रमणीक, मंगलावर्त्त तथा ब्रह्मलोकावतंसक नामक विमानों में जो देव उत्पन्न होते हैं, उनकी स्थिति दस सागरोपम की है।

दस सागरोपम की स्थिति वाले देव दस पक्ष अर्थात् पांच मास में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन्हें दस हजार वर्ष में आहार की अभिलाषा होती है।

कोई-कोई भव्य जीव ऐसे भी हैं जो दस भव करके सिद्ध-बुद्ध होंगे और समस्त कर्मों को नष्ट करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।

इसके बाद ग्यारहवां समवाय प्रारम्भ होता है। इसमें सर्वप्रथम उपासक (श्रावक) की ग्यारह प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है। (१) दंसणसावए—पहली प्रतिमा में श्रावक एक मास तक अपने दर्शन-सम्यक्त्व का निर्मल-निरतिचार रूप से पालन करता है और उसे विशुद्ध-विशुद्धतर बनाने का प्रयत्न करता है। सम्यक्त्व की विशुद्धता उसके निर्दोष पालन पर निर्भर है और सम्यक्त्व के मुख्य दोष पांच हैं। पहला दोष शंका है। श्रावक के अन्तःकरण में जिन भगवान् के वचनों में लेश मात्र भी शङ्का नहीं होना चाहिए। दूसरा दोष है कांक्षा अर्थात् विषयभोगों की आकांक्षा करना। वह जो साधना करे, निष्काम भाव से करे। करणी कभी निष्फल नहीं जाती। उसका फल मिलता ही है। ऐसी स्थिति में कामना का कालकूट घोल कर अपनी करणी को विषाक्त बनाना उचित नहीं है। तीसरा दोष विचिकित्सा अर्थात्

धर्म के फल में सन्देह करना या मुनि के मलीन तन को देख कर घृणा करना है। यह भी श्रावक के लिए उचित नहीं है। जिन महात्माओं का देहाध्यास हट गया है, जो शरीर के प्रति निर्मम हैं, वे उसका साज शृङ्गार नहीं करते। शरीर उनके लिए आकर्षण का नहीं, सिर्फ संयम का साधन मात्र है। उनके शरीर को न देख कर उसमें विराजमान प्रतिबुद्ध और तेजोनिधि आत्मा को ही देखना चाहिए। सम्यक्त्व का चौथा और पाचवां दोष परपाषण्डीप्रशंसा और परपाषण्डीसंस्तव है। जिनकी श्रद्धा और आचारप्रणाली हमारी श्रद्धा और आचारप्रणाली से मेल नहीं खाती, बल्कि उलटी है, न तो उनका गुणगान ही करना चाहिए और न उनके साथ घनिष्ठता बढ़ानी चाहिए। अन्यथा अपनी श्रद्धा और आचारनिष्ठा में शिथिलता आने का भय रहता है। उनके प्रति मध्यस्थ भाव रखना ही उचित है।

लोक में कहावत है—काले के साथ धोला बैठेगा तो वर्ण नहीं तो प्रकृति में अन्तर आ ही जाएगा। अस्तु, तात्पर्य यह है कि श्रावक को ऐसा कोई कार्य या विचार नहीं करना चाहिए जिससे सम्यक्त्व दूषित हो।

(२) कयव्वयकम्मे—श्रावक की दूसरी प्रतिमा है बारह व्रतों का निर्मल रूप से पालन करना। जो-जो भी नियम अंगीकार करे उनमें दोष न लगने दे। यह प्रतिमा दो मास की होती है।

(३) सामाइयकडे--तीसरी सामायिक प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारक श्रावक पहली और दूसरी प्रतिमा सम्बन्धी नियमों के साथ सामायिक व्रत की विधिपूर्वक आराधना करता है।

(४) पोसहोववासनिरए-पौषधप्रतिमा-इसमें श्रावक पूर्वोक्त सब क्रियाओं को करता हुआ अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन पौषधव्रत का आचरण करता है। यह प्रतिमा चार मास की होती है।

(५ दिवबंभयारी-पांचवीं प्रतिमा में श्रावक पूर्वोक्त प्रतिमाओं के आचरण के साथ एकरात्रिकी उपासकपडिमा का भी पालन करता है। वह स्नान का त्याग कर देता है, रात्रिभोजन का त्याग करता है, धोती की लांग नहीं लगाता, दिन में ब्रह्मचर्य का पालन करता है और रात्रि में विषयसेवन का परिमाण करता है।

(६) दिवा रात्रिब्रह्मचारी—छठी प्रतिमा में पूर्वोक्त समस्त नियमों एवं व्रतों के साथ नौ बाड़ सहित पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इसका काल छह मास का है।

(७) सच्चित्तपरित्याए—सातवीं प्रतिमा में पूर्ण ब्रह्मचर्य आदि पूर्वोक्त सब प्रतिमाओं के आचार पालन के साथ श्रावक सचित्त आहार का भी त्याग कर देता है। इसका समय सात मास का है।

(८) आरम्भपरित्याए—आठवीं प्रतिमा में सचित्त आहार

आदि के त्याग के साथ आरम्भ का भी त्याग कर देता है। इस प्रतिमा की मर्यादा आठ मास की है।

(६) पेस्सपरिएणाए—नौवीं प्रतिमा का धारक श्रावक पूर्वोक्त समस्त आचार का पालन करता हुआ आरम्भ कराने का भी त्याग कर देता है। न स्वयं आरम्भ करता है; न दूसरे से करवाता है। इसकी कालमर्यादा नौ मास की है।

(१०) उद्दिट्ठभत्तपरिएणाए-दसवीं प्रतिमा को वहन करने वाला श्रावक पूर्वकथित समग्र नियमों के पालन के साथ उद्दिष्ट आहार का अर्थात् अपने निमित्त से बने भोजन का भी त्यागी होता है। इस प्रतिमा का धारक श्रावक त्याग की उच्चता पर पहुंच जाता है, अतएव उस्तरे से या तो पूरा मस्तक मुँड़वा लेता है या चोटी रखता है। कोई सम्बन्धी जमीन में गड़े हुए धन आदि के विषय में पूछे तो वह नहीं बतलाता। आरम्भ-समारम्भ के कार्य में अनुमति भी नहीं देता।

(११) समणभूए-इस अन्तिम प्रतिमा को वहन करने वाला श्रावक श्रमण न होते हुए भी श्रमण सरीखा आचार पालता है। मस्तक मुँडवाता है या हाथ से केशलुंचन करता है। साधु का वेष धारण करता है। साधु के ही उपकरण रखता है। उसकी समस्त क्रियाएँ साधु के समान ही होती हैं। भिक्षावृत्ति से शरीर का निर्वाह करता है, मगर अपने सम्बन्धियों के घरों से ही

लिया लेता है। पूछने पर स्पष्ट उत्तर देता है कि 'मैं साधु नहीं, ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक श्रावक हूं।' इस प्रतिमा का काल ग्यारह मास का है।

जिस प्रतिमा की जो संख्या बतलाई गई है, उतने ही मास की उसकी कालमर्यादा है। सब प्रतिमाओं के वहन करने में साढ़े पांच वर्ष लगते हैं।

उपासकदशांगसूत्र में जिन दस श्रावकों का वर्णन किया गया है, उन्होंने इन प्रतिमाओं को वहन किया था। उन्होंने पहले संसार का सामान्य व्यवहार चलाया और जब काफी अर्सा हो गया तो सोचा-अब भावी जीवन के लिए ही कुछ करना चाहिए। यह सोच कर उन्होंने अपने कुटुम्बियों एवं सम्बन्धियों को बुलाया। उन्हें भोजन करवाया जो देना था सो दिया और कहा-कुटुम्बी जनों! अभी तक मैं आपके साथ सम्बन्ध रखता आया हूं। आपके लिए कार्य करता रहा और समय-समय पर आपको परामर्श देता रहा हूं। परन्तु अब मुझे अपनी आत्मा का कार्य करना है और उसके लिए निवृत्तिमय जीवन यापन करना है। अतएव कुटुम्ब का उत्तरदायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्र के सिपुर्द करता हूं। मुझे अब घर-गिरस्ती की उलझनों में न फंसाना और शान्ति के साथ धर्माराधना करने देना। मेरी निवृत्ति में कोई बाधक मत बनना।

इस प्रकार वे निवृत्त होकर उन्होंने पौषधशाला में जाकर धर्माराधन किया। प्रतिमा वहन की और अन्त में समाधिपूर्वक शरीर का त्याग करके देवलोक प्राप्त किया।

भाइयो! सच्चे श्रावक के जीवन में यही बात होती है। वह मरते दम तक पिशाच की तरह धन-दौलत और परिवार से चिपटा नहीं रह सकता। श्रावक दीर्घदृष्टि होता है और वह जानता है कि मुझे पुनर्जन्म धारण करना है। अतएव वह आगामी जीवन की उपेक्षा न करके उसे भी सुखमय बनाने का प्रयत्न करता है। किन्तु आज वह परम्परा कहां दृष्टिगोचर होती है? आज जो श्रावक कहलाते हैं उनमें से कितनों के चित्त में निवृत्ति ग्रहण करने की भावना उत्पन्न होती है? बेटे-पोते हो गए हैं और वे कहते हैं—दादा, अब तो धर्मध्यान करो। घर का काम-काज हम सँभाल लेंगे। मगर दादाजी के कानों पर जूं नहीं रेंगती। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है वैसे-वैसे तृष्णा भी बढ़ती जाती है। और उसी तृष्णा की आग में जलता हुआ वह प्राण छोड़ देता है। मोह की लीला कितनी अद्भुत है! समझदार भी उसके प्रभाव से कितने नासमझ बन जाते हैं।

जो श्रावक इन प्रतिमाओं को धारण करते हैं, वे धर्म में अडिग हो जाते हैं। जगत् की कोई भी शक्ति उन्हें पथभ्रष्ट नहीं कर सकती। देवता भी आ जाए और घोर कष्ट देकर धर्मविमुख

करना चाहे तो उसे भी हार माननी पड़ती है। उसे भी इस धर्मनिष्ठ श्रावक के सामने नतमस्तक होना पड़ता है।

आप लोग भी इन श्रावकों के चरणचिह्नों पर चलो। उतना नहीं हो सकता तो जितनी शक्ति है, उतना करो। मगर भविष्य का विचार करो और आगे के लिए कुछ जुगाड़ कर लो जिससे पीछे पछताना न पड़े।

इसके बाद शास्त्रकार कहते हैं—श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमणों को सम्बोधन करके फर्माया-हे आयुष्मान् श्रमणो! आकाश में जो ज्योतिष्क देव नजर आते हैं, लोक के छोर से ग्यारह सौ ग्यारह योजन पर उनका अन्त कहा गया है।

जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत से ११२१ योजन दूर ज्योतिषचक्र घूमता है।

तदनन्तर बतलाया गया है कि-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर थे। उनके नाम इस प्रकार हैं-(१) इन्द्रभूति (२) अग्निभूति (३) वायुभूति (४) व्यक्त (५) सुधर्मा (६) मंडितपुत्र (७) मौर्यपुत्र (८) अकम्पित (९) अचलभ्राता (१०) मेतार्य और (११) प्रभास।

भगवान् महावीर के चौदह हजार मुनियों में यह ग्यारह गणधर प्रधान थे और समस्त मुनि नौ गणों में विभक्त थे।

मूल नक्षत्र के ग्यारह तारे माने गए हैं।

यह लोक पुरुष के आकार का है। पुरुष के शरीर में ग्रीवा (गर्दन) का जो स्थान है, लोक में उस स्थान पर जो देवविमान हैं, वे ग्रैवेयक कहलाते हैं। ग्रैवेयक नौ हैं और उनके तीन पटल हैं। पहिले पटल में देवताओं के निवास के लिए एक सौ ग्यारह विमान हैं।

जम्बूद्वीप के मध्य में एक लाख योजन ऊँचा जो सुमेरु पर्वत है, वह मूल से शिखर पर्यन्त ग्यारहवें ग्यारहवें भाग कम होता गया है। अर्थात् मूल में उसकी चौड़ाई दस हजार योजन की है। वहां से ग्यारह अंगुल ऊपर एक अंगुल चौड़ाई कम हो गई है। ग्यारह कोस की ऊँचाई पर एक कोस कम है और ग्यारह योजन की ऊँचाई पर एक योजन कम हो गई है। नब्वे हजार योजन की ऊँचाई पर नौ हजार योजन की कमी होने से एक हजार योजन चौड़ा ही रह गया है।

पहली रत्नप्रभा नामक नरकभूमि में किसी-किसी नारक की स्थिति ग्यारह पल्योपम की है। पांचवीं नरकभूमि में कोई-कोई नारक ऐसे हैं जिनकी आयु ग्यारह सागरोपम की कही गई है।

प्रथम और द्वितीय देवलोक में किसी-किसी देवता की स्थिति ग्यारह पल्योपम की है। छठे देवलोक—लान्तक—में किसी-किसी देवता की आयु ग्यारह सागरोपम की है। इस देवलोक

के ब्रह्म, सुब्रह्म, ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मप्रभ, ब्रह्मकान्त, ब्रह्मवर्ण ब्रह्मलेश्य, ब्रह्मध्वज, ब्रह्मशृङ्ग, ब्रह्मसिद्ध, ब्रह्मकूट, ब्रह्मोत्तरावतंसक नामक विमानों के देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की होती है।

ग्यारह सागरोपम की आयु वाले देवों को ग्यारह हजार वर्ष में आहार करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। वे ग्यारह पक्ष अर्थात् साढ़े पांच मास में एक बार श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

कोई-कोई भव्य जीव ऐसे भी हैं जो ग्यारह भव करके सिद्ध-बुद्ध होंगे और समस्त दुःखों का अन्त करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।

अमरसेन-वीरसेन चरित—

मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग सरलता से समझने के लिए चरितग्रंथ बहुत सहायक होते हैं. इसी दृष्टि से आपको यह चरित पिछले कुछ दिनों से सुनाया जा रहा है, आशा है आप इसे ध्यानपूर्वक सुनेंगे और इसमें रहे हुए आत्महित के तत्त्व को ग्रहण करेंगे और अपने जीवन को उज्ज्वल एवं पावन बनाने का प्रयत्न करेंगे।

भाइयो! बतलाया जा चुका है कि अमरसेन वेश्यागृह में पहुँचकर और अपने भाई की सुधि भूलकर मौज करने लगा और वीरसेन पाटवी हाथी के द्वारा राजा के रूप में वरण किया

जाकर राजा बन गया। उसका विधिपूर्वक राज्यारोहण-समारोह हुआ और सामन्तों आदि ने वफादार रहने की प्रतिज्ञा की।

वीरसेन पुण्य के प्रबल उदय से राजा बन गया और बड़ी योग्यता के साथ राजकाज का संचालन करने लगा, राजकुल में जन्म लेने और राजमहल में रहने से तथा राजनीतिक वातावरण में पलने के कारण उसे बहुत कुछ नया सीखने की आवश्यकता नहीं थी। अतः वह कुशलतापूर्वक शासन करता था और राजसी वैभव का उपभोग कर रहा था।

कुछ दिनों तक उसे अमरसेन की याद बराबर आती रही, मगर जब उसकी कोई खोज खबर न मिली और राजकाज की अधिकता के कारण वह व्यग्र रहने लगा तो वीरसेन भी अमरसेन को भूलने लगा। यहां तक कि उसके मस्तिष्क में यह भी विचार न आने लगा कि मेरा भाई कहां है? वह सुख में है या दुःख में है?

उधर अमरसेन वेश्या के घर में आनन्दपूर्वक रहता था, काफी अर्सा हो गया। अकस्मात् एक दिन अमरसेन को खयाल आया—यह वेश्या मुझे प्रेम तो करती है या प्रेम प्रदर्शन का अभिनय करती है, मगर अपना कोई भेद नहीं देती।

एक बार अमरसेन के पास वेश्या आकर बैठ गई और मीठे शब्दों में कहने लगी—मेरा अहोभाग्य है, मैं धन्य हूँ, ईश्वर

की मुझ पर बड़ी दया हुई है कि आप जैसे पारस-पुरुष का मुझे संयोग प्राप्त हुआ। बिना पुण्य के ऐसा संयोग नहीं मिलता। परन्तु नाथ! एक बात मेरी समझ में नहीं आई और न आपने बतलाने की कृपा की, जब आपका और मेरा जीवन एकात्मक बन गया है और बीच में कोई व्यवधान नहीं रहा, तब वह बात भी मैं जान लेना चाहती हूं, क्या कृपा करके आप मुझे वह बात जानने का अवसर देंगे?

भाइयो! बात करने का भी ढङ्ग हुआ करता है और वह ढङ्ग भी अवसर-विशेष पर काम आता है। कोई मनुष्य महत्त्वपूर्ण कार्य में पूरे अवधान के साथ लगा हो और उससे कोई दूसरी बात पूछने लगे तो स्वभावतः उसे क्रोध आ जाता है, झुंझलाहट होती है और वह चिढ़ जाता है। अतएव अपनी बात का ठीक प्रभाव डालने के लिए और अपने प्रश्न का शान्तिपूर्ण उत्तर पाने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य उचित अवसर देखकर ढङ्ग से बात करे।

वेश्या ने सोचा—यह बड़ा अच्छा अवसर है। इस समय अमरसेन खुश नजर आ रहा है, जो प्रश्न करूंगी उसका ठीक उत्तर मिल जाएगा।

तो वेश्या के शब्द सुनकर अमरसेन ने कहा—प्रिये! मैंने अपना सभी कुछ तुम्हें समर्पित कर रखा है, मेरे पास तुमसे

छिपाने योग्य कोई चीज नहीं है, फिर तुम्हारे चित्त में दुविधा क्यों है ? मैंने अपने जीवन में इस सूत्र को अपनाया है—

प्रीति जहां पर्दा नहीं, पर्दा जहां नहिं प्रीत।
प्रीति करी पर्दा रखे, प्रीति नहीं विपरीत ॥

यह सुनकर वेश्या बोली—हां-हां प्राणनाथ ! यह तो मैं देख ही रही हूँ, आपके और मेरे बीच में कोई पर्दा नहीं, कुछ गोपनीय नहीं है, इसी कारण तो पूछने का साहस ही किया है। मैं यह पूछना चाहती हूं कि आप प्रतिदिन पांच सौ मोहरें कहां से लाते हैं ? आपके हार्दिक प्रेम को पाकर मैं कृतार्थ हो सकी हूं। इसी कारण आपकी पूरी महत्ता को समझने का प्रयत्न कर रही हूं और इसी लिए यह प्रश्न किया है।

भाइयो ! यह संसार अत्यन्त विलक्षण है। यहां जो अमृत प्रतीत होता है, उसमें भी जहर मिला रहता है, अमरसेन बेचारा भोला-भाला सरल हृदय नवयुवक है और वेश्या कुटिलता की पुतली ! वह साफ दिल से बातें करता है जब कि वेश्या के पेट में पाप छिपा है। अमरसेन उसकी असलियत को नहीं समझ सका। वह नहीं सोच सका कि वेश्या की बातों में नहीं आना चाहिए, अन्यथा धोखा होने की संभावना है। वेश्या अनेकों की होती है, अतएव किसी एक की नहीं होती, अगर तू इस पर विश्वास कर बैठेगा तो बुरी तरह धोखा खाएगा। जीवन में इससे बड़ी कोई भूल नहीं हो सकती।

मगर भाइयो! 'कामान्धो नैव पश्यति।' जो मनुष्य काम-वासना में अन्धा हो जाता है, वह नेत्र होते हुए भी कुछ नहीं देख सकता। उसे कोई भान नहीं रहता। उसकी विचारशक्ति कुण्ठित हो जाती है और चेतना सुषुप्त हो जाती है। उसे तो मात्र प्रेमी ही प्रेमी नजर आती है। तिस पर अमरसेन को दुनियादारी का कोई अनुभव नहीं था। वह दुनिया के बाजार में नया-नया ही आया था। राजमहल में ही उसका जीवन व्यतीत हुआ था और विभिन्न प्रकार के लोगों से उसे पाला नहीं पड़ा था। अतएव वह समझने में असमर्थ था कि यह वेश्या धोखेबाज है। वह समझता था कि जैसे मैं इसके प्रति सच्चा हूं, उसी प्रकार यह भी मेरे प्रति सच्ची है।

हां तो अमरसेन ने सोचा—जब यह मेरे प्रति इतना अनुराग रखती है तो इससे कोई बात छिपा रखना उचित नहीं है। छिपाने से कोई लाभ और प्रकट कर देने से कोई हानि नहीं है।

जब दो प्रेमियों के दिल मिल जाते हैं तो वे एक दूसरे को सारी बातें कह देते हैं। जब सारा भेद दे दिया जाता है तो कभी कभी धोखा भी हो जाता है। संसार में ऐसी अनेक घटनाएँ आए दिन घटती रहती और प्रकाश में आती रहती हैं।

मन्दसौर में एक [illegible] नामा [illegible] जौहरी [illegible]। वह

उसके प्रेम में इतना पागल हो गया कि उसने अपना सर्वस्व उसे सौंप दिया। मगर कुछ समय बाद एक दिन मौका देख कर वह उसके घर से चली गई। उसने घर आकर देखा तो स्त्री गायब थी। उसे कितना दुःख और परिताप हुआ होगा, यह कल्पना आप कर सकते हैं। वह खाली हाथ भी नहीं गई थी, बल्कि उसका सार-सर्वस्व भी लेकर गई थी। पूर्ण विश्वास का नतीजा इस प्रकार घोर विश्वासघात हो तो प्रत्येक को दुःख होना स्वाभाविक है।

वह स्त्री कहां चली गई, पता नहीं लगा। मगर सब कुछ जो वह साथ ले गई थी, जब गँवा चुकी तो इधर उधर भटक कर एक दिन फिर उसी घर में आ पहुंची। मगर उस पुरुष ने फिर उसे आश्रय नहीं दिया।

भाइयो! सीधे सादे और सरल प्रकृति के लोग कुटिल जनों के हृदय की कुटिलता को समझ नहीं सकते। वे समझते हैं कि जैसे मेरा मन साफ है, वैसा दुनिया का है। अपनी इसी धारणा के कारण वे ठगे जाते हैं।

अमरसेन भोला नौजवान। सोचता है—जब इसने मुझसे कोई बात नहीं छिपाई है तो मैं भी कोई बात इससे क्यों गुप्त रक्खूं? परन्तु अरे भोले भाई! तुझे क्या पता है कि तू घोर अन्धकार में भटक रहा है। तू इस संसार की कठोर वास्तविक-

बातों से परिचित नहीं है। दुनिया के ठग बड़ी सफाई से अपना काम करते हैं।

भोला अमरसेन वेश्या के मायाजाल को समझने में असमर्थ था। उसने वेश्या पर विश्वास किया और मोहरें प्राप्त होने का सारा भेद उसे बतला दिया। उसने अतीत की कहानी सुनाते हुए कहा—प्रिये! हम दो भाई थे। जंगल में जा रहे थे। चलते-चलते थक कर हम एक आम्र वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। हम भूखे-प्यासे थे और पास में फूटी कौड़ी भी नहीं थी। वृक्ष के ऊपर तोता-तोती का एक जोड़ा रहता था। हम दोनों भाइयों की बातचीत सुन कर उन्हें दया उपजी। तोती के अनुरोध से तोते ने दो गुठलियां कहीं से ला कर हमें दे दीं। उसने उनका महत्त्व समझाते हुए कहा—जो पहली गुठली खाएगा वह सात दिन में राज्य पाएगा। जो दूसरी गुठली खाएगा, वह प्रतिदिन पांच सौ मोहरें उगलेगा।

मेरे बड़े भाई ने पहली गुठली खाई और मैंने दूसरी। उस गुठली का ही यह प्रताप है कि जब प्रातःकाल मैं कुल्ला करता हूं तो पांच सौ मोहरें निकल पड़ती हैं। जब तक यह गुठली मेरे पेट में है तब तक ये मोहरें निकलती ही रहेंगी।

इस प्रकार सारा वृत्तान्त, बिना कुछ छिपाए, अमरसेन ने वेश्या को बतला दिया।

इस गुप्त रहस्य को जान कर वेश्या ने कहा—प्रियतम! आपने जो बात कही, उसे मैंने सुन लिया है। परन्तु दुनिया बड़ी ही विचित्र है। इस पर भरोसा नहीं करना चाहिए। और खास तौर से स्त्री जाति का भरोसा करना तो अपने लिए घोर विपत्ति को निमन्त्रण देना है।

वेश्या ने तरकीब से अमरसेन की गुप्त बात जान ली और उसने भी अपनी समझ कर सब कुछ बतला दिया। जब उसने सब भेद जान लिया तब कहा—किसी को अपना भेद मत देना।

भाइयो! यह अर्थ किस प्रकार अनर्थ का कारण बनता है और इसकी बदौलत कैसी-कैसी दारुण घटनाएँ घटित होती हैं, यह आप देखते-सुनते ही हैं। धन के लिए मनुष्य घोर से घोर पाप करते भी नहीं हिचकता। यह जानते हुए भी कि जीवन अल्पकालीन है, धन के लिए मनुष्य क्या-क्या नहीं कर गुजरता? सारा प्रेम, स्नेह, अनुराग, सगाई एक ओर धरी रह जाती है और मनुष्य धन के लिए पिशाच बनते देर नहीं करता।

गुठली के प्रभाव को सुन कर वेश्या का हृदय ललचा उठा। उसके हृदय में एक नवीन हलचल मच गई। वह सोचने लगी-प्रतिदिन पांच सौ मोहरें देने वाली तो यह गुठली है। अगर किसी उपाय से वह गुठली मिल जाय तो मुझे इस पुरुष की दया पर निर्भर नहीं रहना पड़े। पुरुषों के चित्त का क्या ठिकाना है?

खास प्रेम करता है, पन पहन जाए। कहीं इधर-उधर चल दे। गुदड़ी मिल जाने पर सारा संकट ही टल जाएगा। मेरा सब मनोवांछित कार्य सिद्ध हो जाएगा।

इस प्रकार विचार करके उस गणिका ने आखिर निश्चय कर लिया कि किसी भी उपाय से मुझे यह गुदड़ी प्राप्त कर लेना चाहिए।

आप जानते हैं कि विनय एक वशीकरण मंत्र है, इसका प्रयोग करने से दुर्लभ वस्तु भी दूसरों के पास से प्राप्त की जा सकती है, विनय कभी निष्कपट भाव से भी किया जाता है और कपट से भी कहा है—

नमन नमन में फेर है, सब सरीखा मत जान।
दगाबाज दूनो नमे, चीता चोर कमान॥

भाइयो! किसी की नम्रता देखकर ही उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। नमने वाले सब एक से नहीं होते। कभी-कभी नमने वालों में कपट भी छुपा होना मानना पड़ता है। ऐसा नमता है तो समझना चाहिए कि संकट सिर पर आ गया है। वह हमला करने से पहले नमता है और नमते ही हमला कर बैठता है। चीता भी नमता है, परन्तु उसके बाद चोट हुई पर मालूम पड़ती है।

एक सर्प उसके दिल में [illegible] कर रहा था, इतने में

इस गुप्त रहस्य को जान कर वेश्या ने कहा—प्रियतम! आपने जो बात कही, उसे मैंने सुन लिया है। परन्तु दुनिया बड़ी ही विचित्र है। इस पर भरोसा नहीं करना चाहिए। और खास तौर से स्त्री जाति का भरोसा करना तो अपने लिए घोर विपत्ति को निमन्त्रण देना है।

वेश्या ने तरकीब से अमरसेन की गुप्त बात जान ली और उसने भी अपनी समझ कर सब कुछ बतला दिया। जब उसने सब भेद जान लिया तब कहा—किसी को अपना भेद मत देना।

भाइयो! यह अर्थ किस प्रकार अनर्थ का कारण बनता है और इसकी बदौलत कैसी-कैसी दारुण घटनाएँ घटित होती हैं, यह आप देखते-सुनते ही हैं। धन के लिए मनुष्य घोर से घोर पाप करते भी नहीं हिचकता। यह जानते हुए भी कि जीवन अल्पकालीन है, धन के लिए मनुष्य क्या-क्या नहीं कर गुजरता? सारा प्रेम, स्नेह, अनुराग, सगाई एक ओर धरी रह जाती है और मनुष्य धन के लिए पिशाच बनते देर नहीं करता।

गुठली के प्रभाव को सुन कर वेश्या का हृदय ललचा उठा। उसके हृदय में एक नवीन हलचल मच गई। वह सोचने लगी-प्रतिदिन पांच सौ मोहरें देने वाली तो यह गुठली है। अगर किसी उपाय से वह गुठली मिल जाय तो मुझे इस पुरुष की दया पर निर्भर नहीं रहना पड़े। पुरुषों के चित्त का क्या ठिकाना है?

आज प्रेम करता है, कल बदल जाए। कहीं इधर-उधर चल दे। गुठली मिल जाने पर सारा संकट ही टल जाएगा। मेरा सब मनोवांछित कार्य सिद्ध हो जाएगा।

इस प्रकार विचार करके उस गणिका ने आखिर निश्चय कर लिया कि किसी भी उपाय से मुझे वह गुठली प्राप्त कर लेना चाहिए।

आप जानते हैं कि विनय एक वशीकरण मंत्र है, उसका प्रयोग करने से दुर्लभ वस्तु भी दूसरों के पास से प्राप्त की जा सकती है, विनय कभी निष्कपट भाव से भी किया जाता है और कपट से भी कहा है—

नमन नमन में फेर है, सब सरीखा मत जान।
दगाबाज दूनो नमे, चीता चोर कमान॥

भाइयों ! किसी की नम्रता देखकर ही उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। नमने वाले सब एक से नहीं होते। कभी-कभी नमने वालों से मनुष्य को बड़ा धोखा खाना पड़ता है। चीता नमता है तो समझना चाहिए कि संकट सिर पर आ गया है। वह हमला करने से पहले नमता है और नमते ही हमला कर बैठता है। बिल्ली भी नमती है, परन्तु उसके बाद फौरन चूहे पर झपट पड़ती है।

एक सर्प अपने बिल में आराम कर रहा था, उधर से

एक ब्राह्मण निकला। उसने सर्प की बांबी देखी और वहीं खड़े होकर सांप की तारीफ की। सांप अपनी प्रशंसा सुनकर बाहर निकला और कहने लगा—पण्डितजी! आपके मुखारविन्द से अपनी प्रशंसा सुनकर मैं अत्यधिक प्रसन्न हूं, उस प्रशंसा के उपलक्ष्य में आपको दो स्वर्णमुद्राएँ उपहार स्वरूप प्रदान करता हूँ। आप इन्हें ले जाइए और अपनी दरिद्रता दूर कीजिए। मगर शर्त यह है कि आप प्रतिदिन यहां आया करें और मेरी प्रशंसा किया करें।

ब्राह्मण देवता की प्रसन्नता का पार न रहा, वह बोला—हां बाबजी! मैं प्रतिदिन सेवा में उपस्थित होऊँगा और स्तुति किया करूँगा।

ब्राह्मण प्रतिदिन वहां हाजिर होता और सर्प की प्रशंसा करता। सर्प प्रसन्न होकर प्रतिदिन उसे दो स्वर्णमुद्राएँ भेंट कर देता। प्रतिदिन दो मुद्राएँ मिलने से धीरे-धीरे ब्राह्मण के पास खासा धन संचय हो गया। उसने नया मकान भी बनवा लिया। आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करने लगा। दरिद्र के पास संपत्ति बढ़ जाती है तो प्रायः उसका अभिमान भी बढ़ जाता है। ब्राह्मण के विषय में यही हुआ। उसका अहंकार इतना बढ़ गया कि पंचायत का बुलावा आने पर भी वह वहां नहीं जाता था, एकबार [illegible]चों ने उसे दस-बारह बार बुलावा भेजा, फिर भी वह नहीं [illegible]। तब लोगों ने विचार किया—यह आता क्यों नहीं है?

इसका कारण ज्ञात करना चाहिए। क्या सम्पत्ति बढ़ने मात्र से मनुष्य इतना बड़ा हो जाता है कि पंचायत को भी अपने से हीन समझने लगे ?

भाइयो ! मनुष्य का मूल्य पैसे से नहीं होना चाहिए। मानवता का वास धन में नहीं है। अकसर धन तो मानवता का घुन साबित होता है। जब धन बढ़ जाता है और उसी परिमाण में मानवता की वृद्धि नहीं होती तो धन मानवता पर हावी हो जाता है और उसे कुतर-कुतर कर खत्म कर देता है मगर आज प्रायः देखा जाता है कि धन से ही मनुष्य की प्रतिष्ठा हो रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अधिकांश मनुष्य धन को ही अपने जीवन का प्रधान ध्येय मान बैठे हैं और उनका समग्र जीवन धन के लिए ही समर्पित है। वे यह नहीं सोचते कि हमें कितने धन की वास्तविक आवश्यकता है और आवश्यकता से अधिक संचय करके हम लाभ उठाएँगे। बस, धन, धन और धन्य ही उनका एक मात्र उपास्य है। वे इस तथ्य को समझने का प्रयत्न ही नहीं करते कि मानव का असली मूल्य और बड़प्पन धनवान् होने में नहीं, बल्कि चरित्रवान् बनने में है। मनुष्य के जीवन में जितनी अधिक नैतिकता और चरित्रशीलता होगी, उसमें उतना ही अधिक बड़प्पन समझा जाएगा।

वह ब्राह्मण इस तथ्य को विस्मृत कर चुका था, अतः उसमें अहंकार का उद्रेक हो गया और वह पंचायत को भी अपने

सामने कुछ न समझने लगा। तब सब लोगों ने परामर्श करके उसे एक पत्र लिखा, जिसका आशय यह था कि आपको अमुक-अमुक जगह बुलवाया गया पर आप नहीं आए, सिर्फ अपने लड़के को भेज दिया। इससे मालूम होता है कि आप बिरादरी की परवाह नहीं करते। अगर हमारा निकाला हुआ यह निष्कर्ष सही नहीं है तो इस उपेक्षा का कारण लिखिए।

इस पत्र को पाकर ब्राह्मण दुविधा में पड़ गया। सोचने लगा—क्या करना चाहिए। पंचायत में जाता हूं तो सर्प के पास नहीं पहुँच सकता और दो मोहरें मारी जाती हैं। यदि पंचायत में नहीं जाता तो पंच नाराज होते हैं। बिरादरी से बिगाड़ करना भी उचित नहीं है। कहीं जातिवहिष्कार की नौबत आ गई तो संकट में पड़ जाऊँगा। बेटा-बेटी का विवाह कहां और कैसे होगा?

ब्राह्मण इस दुविधा में पड़ कर चिन्ताग्रस्त हो गया। उसे चिन्तातुर देख कर लड़के ने पूछा—पिताजी, किस कारण से आप चिन्तित हो रहे हैं?

ब्राह्मण ने सारा किस्सा सुनाया तो लड़के ने कहा—आप आज्ञा दें तो पंचायत में मैं चला जाऊँ? ब्राह्मण ने कहा—बेटा, तुझे नहीं मुझे बुलाया है। तब लड़के ने सहज भाव से कहा—तो चिन्ता की क्या बात है? आप स्वयं चले जाइए और पंचों के मन का समाधान कर दीजिए।

ब्राह्मण फीकी हँसी हँस कर बोला—बेटा, तू समझता नहीं मैं प्रतिदिन जंगल में जाकर नागदेव की स्तुति करता हूँ और दक्षिणा में दो मोहरें लाता हूँ। पंचायत में जाऊँ तो वहां नहीं पहुंच सकता। दो मोहरों का घाटा होता है। यह घाटा कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है ?

लड़के ने कहा-तो इतनी सी बात के लिए चिन्तित होने की क्या आवश्यकता है ? आपके बदले मैं सर्प की स्तुति करने चला जाता हूं। और आप पंचायत में चले जाइए। ऐसा करने से दोनों काम हो जाएंगे।

ब्राह्मण की समझ में बात आ गई। वह पंचायत में गया और लड़का सर्प के पास गया। पंचायत में पहुंचने पर लोगों ने अब तक न आने का कारण पूछा। उसके उत्तर में उसने कहा-मैं एक गृहस्थ हूं। गृहस्थ के पीछे कई काम लगे रहते हैं। उनके कारण मैं उपस्थित नहीं हो सका।

उधर लड़के ने सर्प की स्तुति की और पहले की भांति सर्प ने दो मोहरें दे दीं। लड़के ने मोहरें तो ले लीं किन्तु सोचा-दो-दो मोहरों के लिए प्रतिदिन आना पड़ता है। अगर इस सर्प को ही खत्म कर दिया जाय तो सारी मोहरें एक ही साथ मिल जाएँ। इस प्रकार सोच कर भी कुछ दिनों तक आता रहा और मोहरें लाता रहा। एक दिन जब उसकी लोलुपता और कृतघ्नता प

काष्ठा पर पहुंच गई तो वह दूध का भरा कटोरा साथ लेकर गया। सर्प बाहर आया और कटोरे का दूध पीने लगा। उसी समय लड़के ने उस पर डंडे का आघात किया, मगर डंडा पूंछ में लगा। सर्प ने क्रुद्ध हो कर लड़के को डँस लिया। लड़का मूर्छित हो कर गिर पड़ा और मर गया। सर्प पुनः बांबी में चला गया।

पण्डितजी ने घर आकर लड़के के विषय में पूछा तो पता चला कि वह अभी तक नहीं लौटा। पण्डितजी सर्प के स्थान पर गए। देखा, लड़का मरा पड़ा है। उसने सर्प की स्तुति की और वह बाहर आया। तब पण्डितजी ने कहा—महाराज, आपने यह क्या किया? मुझ गरीब को एकदम ही निराधार कर दिया। यह मेरा एकलौता बेटा था। जो आपकी सेवा में आया था, उसके प्रति क्या यही व्यवहार करना चाहिए?

तब सर्प ने लड़के की कृतघ्नता की कथा सुनाई और कहा–तेरे लड़के ने लोभ के वशीभूत होकर मेरी जान लेने का प्रयत्न किया। मैंने आत्मरक्षा के साथ उसे उचित शिक्षा दी है।

इस दृष्टान्त का आशय यही है कि लोभान्ध होकर मनुष्य अकर्त्तव्य कर्म करने को उद्यत हो जाता है। वह उपकारी के उपकार को भूल जाता है और सौजन्य को भी जलांजलि दे बैठता है। लोभ अन्त में विनाश का कारण बनता है।

वह वेश्या भी इसी प्रकार लोभ के चक्कर में पड़ गई है।

वह उस पुतली को प्राप्त करने की सोच रही है। वह क्या उपाय करती है और उसका क्या फल होता है, यह आगे सुनने से विदित होगा।

इस कथानक को सुन कर जो लोभ और धोखेबाजी को त्याग देंगे और संतोष तथा सरलता से जीवन व्यतीत करेंगे, वही इह परलोक में सुखी होंगे।

केन्टोनमेंट बैंगलोर
२६-६-५६

अर्थ-पिशाच



प्रार्थना—

इति जिनपतिपार्श्वः पार्श्वपार्श्वाख्ययक्षः,
प्रदलितदुरितौघः प्रीणितप्राणिसार्थः।
त्रिभुवन जनवाञ्छादानचिन्तामणिर्वा,
शिवपदतरुबीजं बोधिबीजं ददातु ॥११॥



यह कि कर्पूरमय स्तोत्र का अन्तिम पद्य है। स्तुतिकार महोदय ने यहां फर्माया है—पार्श्व नामक यक्ष जिनके पास जिनकी सेवा में सदा प्रस्तुत रहता है, जो समस्त पापों के समूह को नष्ट करने वाले हैं, समस्त प्राणियों के समूह को आह्लाद उत्पन्न करने वाले हैं और तीनों जगत् के प्राणियों को इच्छित सुख प्रदान करने में चिन्तामणि के समान हैं, वे श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र मुझे वह बोधिबीज सम्यक्त्व प्रदान करें जो मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज है।

भाइयो! आचार्यश्री ने भगवान् पार्श्वनाथ से जगत् के किसी प्रकार के वैभव की याचना न करके केवल बोधिबीज की याचना की है। यह बोधिबीज क्या है? बोधिबीज और कुछ नहीं, आत्मा की तत्त्वरुचि है, जिसे आप सम्यक्त्व के नाम से जानते हैं। यह आत्मा की एक महान् सम्पदा है जो सर्वप्रथम जीव को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करती है और जिसके उत्पन्न हो जाने पर अन्तर्नेत्र खुल जाते हैं, हेय-उपादेय का विवेक जागृत हो जाता है एवं आत्मविशुद्धि प्राप्त करने की पूर्ण अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है।

सम्यक्त्व मोक्ष का प्राथमिक सोपान है। वह ज्ञान और चारित्र में समीचीनता का जनक है। सम्यक्त्व के अभाव में उपार्जित किया हुआ विपुल से विपुल ज्ञान और कठोर से कठोर क्रिया भी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की पदवी प्राप्त नहीं कर सकते। सम्यक्त्व जिसके जीवन में आ जाता है, वह आत्मा निश्चय ही मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। 'लोगस्स' के पाठ में भी भगवान् से यही याचना की गई है।

आरुग्ग-बोहिलाभं समाहिवर मुत्तमं दिंतु।

चौबीसों तीर्थङ्करों की स्तुति करने के बाद भक्त ने यही मांग की है कि—भगवन्! आप मुझे आरोग्य प्रदान करें। जो स्वयं नीरोगता प्राप्त कर चुका है, वही दूसरे का रोग नष्ट कर

अर्थात् जिसके शरीर का बन्ध असाधारण रूप से सुदृढ़ होता है और जिसे कम से कम नौवें पूर्व की तीसरी वस्तु का ज्ञान होता है। ऐसा साधु गुरु की आज्ञा प्राप्त करके इन प्रतिज्ञाओं का पालन कर सकता है। कमजोर शरीर वाले से इनका आचरण होना सम्भव नहीं होता। वे प्रतिमाएँ इस प्रकार हैं—

पहली पडिमा में साधु एक मास तक एक दात आहार की और एक दात पानी की लेवे।

साधु को आहार-पानी देते समय जब तक देय वस्तु की धारा खण्डित न हो तब तक ही एक दत्ति कहलाती है। धारा अगर खण्डित हो जाय तो वह दत्ति समाप्त हो जाती है। इस प्रतिमा का धारक साधु उसी जगह से भिक्षा ग्रहण कर सकता है जहां सिर्फ एक आदमी के लिए भोजन बना हो। दो चार अथवा अधिक के लिए जहां भोजन बना हो वहां से नहीं ले सकता। दाता के दोनों पैर देहली से बाहर हों या भीतर हों तो उससे भी भिक्षा नहीं ले सकता। जिस दाता का एक पैर भीतर और एक पैर बाहर हो, उसी से ले सकता है। पडिमाधारी साधु के लिए भिक्षा के तीन समय हैं—दिन का आदि भाग, मध्यभाग और अन्तिम भाग। इन तीन में से किसी एक ही भाग में भिक्षा के लिए जाना चाहिए, शेष दो भागों में नहीं। जो आहार गर्भवती स्त्री के लिए या छोटे बच्चे वाली के लिए बना हो, वह नहीं लेना चाहिए। इत्यादि अनेक नियमों का प्रतिमाधारी साधु को पालन

करना पड़ता है। यह सब नियम आगे भी लागू होते हैं, मगर इनमें कतिपय विशेषताएँ भी हैं जो यथास्थान बतलाई जाएँगी।

दूसरी प्रतिमा का समय दो मास का है। इसमें साधु दो दत्ति आहार की और दो दत्ति पानी की ले सकता है। शेष सब नियम प्रथम प्रतिमा के समान हैं।

तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी और सातवीं प्रतिमा में अनुक्रम से तीन, चार, पांच, छह और सात दत्तियां आहार की और सात दत्तियां पानी की ले सकता है। इन सब का समय एक एक महीने का है। इनमें भी पूर्वोक्त नियमों का पालन करना पड़ता है।

आठवीं प्रतिमा का काल सात दिन का है। इसमें एकान्तर उपवास करना चाहिए। बस्ती से बाहर जाकर उत्तानासन अर्थात् चित हो कर लेटना, पार्श्वासन अर्थात् एक पसवाड़े से लेटना या निषद्यासन अर्थात् पैरों को बराबर रख कर बैठना, इन तीन आसनों में से किसी एक आसन से ध्यान करना चाहिए।

नौवीं प्रतिमा का समय सात दिन-रात का है। इसमें चौविहार बेले-बेले पारणा की जाती है। बस्ती से बाहर जाकर दंडासन, लगुडासन या उत्कटुकासन से ध्यान किया जाता है।

दसवीं प्रतिमा का काल भी सात दिन-रात का है। इसमें

चौविहार तेले-तेले की पारणा की जाती है। वस्ती से बाहर जाकर गोदोहासन, वीरासन या आम्रकुब्जासन से ध्यान किया जाता है।

ग्यारहवीं पडिमा का काल एक अहोरात्र का है। चौविहार तेला करके इसकी आराधना की जाती हैं। वस्ती से बाहर जाकर दोनों पैरों को सिकोड़ कर तथा हाथों को लम्बा करके कायोत्सर्ग किया जाता है।

बारहवीं पडिमा एकरात्रिकी कहलाती है। इसका समय सिर्फ एक रात्रि है। इसकी आराधना बेले को आगे बढ़ा कर चौविहार तेला करके करनी होती है। वस्ती से बाहर जाकर शरीर को किंचित आगे की ओर झुकाकर, किसी भी एक वस्तु पर अपनी अनिमेष दृष्टि जमा कर और इन्द्रियों का गोपन करके कायोत्सर्ग किया जाता है।

इस प्रतिमा का समीचीन रूप से वहन करने पर इतनी अधिक कर्मनिर्जरा होती है कि अवधिज्ञान, मनःपर्येय ज्ञान अथवा केवलज्ञान की अवश्य प्राप्ति हो जाती है। अगर इस प्रतिमा की आराधना करते समय उपस्थित हुए देवी आदि उपसर्गों से साधक विचलित हो जाय तो उसे उन्माद अथवा दीर्घकालीन रोग हो जाता है या वह केवलिप्रतिपादित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

आपने पर्युषण पर्व के दिनों में, अन्तगडसूत्र में सुना है

कि गजसुकुमार मुनि ने भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा धारण की और श्मशान में जाकर ध्यान किया। इसमें सोमिल ब्राह्मण की तरफ से उपसर्ग किया गया। उसने उनके सिर पर गीली मिट्टी की पाल बांध कर अग्नि के खीरे रख दिए। फिर भी मुनिराज विचलित नहीं हुए तो केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त कर लिया।

इसके पश्चात् बतलाया गया है कि साधुओं के संभोग अर्थात् समाचारी की एकरूपता के कारण होने वाला पारस्परिक व्यवहार बारह प्रकार का है। यथा—

१- उपधिसंभोग—समान समाचारी होने से एक साधु दूसरे साधु से उपधि अर्थात् वस्त्र-पात्र आदि ले-दे।

२- श्रुतसंभोग—अर्थात् शास्त्र की वाचना-पृच्छना आदि करना।

३- भक्तपान—परस्पर में एक दूसरे का आहार-पानी का आदान-प्रदान करना।

४- अञ्जलिप्रग्रह—परस्पर वन्दना-नमस्कार करना।

५- दान—कारण उपस्थित होने पर शिष्य का लेन-देन करना।

६- निमन्त्रण—वस्त्र, पात्र, शय्या, आहार आदि के लिए आमंत्रण करना।

७- अभ्युत्थान—बड़े साधु के आने पर खड़ा होना।

८- कृतिकर्म–बारह आवर्त्तों से युक्त वन्दना करना।

९- वैयावृत्य-आहारादि लाकर देना, रुग्णावस्था में सेवा करना, पगचंपी करना आदि।

१०- समवसरण–एक साथ निवास करना।

११- सन्निषद्या-एक साथ बैठ कर शास्त्रचिन्तन करना।

१२- कथाप्रबन्ध–एक पाट पर बैठ कर धर्मकथा-व्याख्यान करना।

भाइयो ! सब साधुओं के साथ सभी संभोग नहीं होते। जिनकी समाचारी पूरी तरह एक ही प्रकार की होती है वे परस्पर सभी व्यवहार करते हैं। अगर समाचारी में कुछ भिन्नता होती है तो कोई संभोग नहीं होता या कम संभोग होते हैं। किसी समय साधुओं की समाचारी में एकरूपता थी, मगर सम्प्रदायवाद के पनपने से उसमें कुछ भिन्नता आ गई। सादड़ी-साधु सम्मेलन में इस भिन्नता को मिटाने का यत्न किया गया। लम्बे अर्से से जिनका संभोग बंद था, उनका पुनः चालू हुआ, क्योंकि सम्मेलन में एक समाचारी का निर्माण किया गया था।

पहले बाईस सम्प्रदाय थे, वे बढ़ते-बढ़ते बत्तीस हो गए और फिर चौंतीस तक संख्या जा पहुंची, फूट का क्रम चलता और ता ही गया, मगर संघ और धर्म के प्रेमी कुछ लोगों ने इस रस्थिति को शासन के लिए अहितकर समझ कर एकता के

लिए प्रयत्न किया। उस प्रयत्न के परिणाम स्वरूप साधु परस्पर मिले। विचारणा हुई और यह निश्चय किया गया कि परस्पर ग्यारह संभोग चालू कर दिये जाएँ और बारहवां संभोग-जो आहार-पानी विषयक है, उसे अभी छोड़ दिया जाय।

सादड़ी सम्मेलन से पूर्व ब्यावर में नो सम्प्रदायों का जो सम्मेलन हुआ था, उसमें छह सम्प्रदायों ने बारहों संभोग खोल दिये गये थे, शेष सम्प्रदायों ने, जो सादड़ी में सम्मिलित हुए साधु ने ग्यारह संभोग चालूकर दिए।

भाइयो ! संसार में दो प्रकार से व्यवहार होता है-नीति से और प्रीति से। जब पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय थे, उस समय अनेक स्थानों में विचरते समय विभिन्न सम्प्रदायों के साधुओं का समागम होता था। तब मैं उनसे यही कहता था कि नीति के अनुसार हम आपके साथ बैठें या नहीं बैठें, ठहरें अथवा नहीं ठहरें, परन्तु प्रीति से तो सभी कुछ हो सकता है-साथ बैठा जा सकता है और ठहरा भी जा सकता है। मैंने सौराष्ट्र में भी और पंजाब में भी परिभ्रमण किया है और वहां विचरने वाले साधुओं से सभी तरह का यथोचित ताल्लुक रक्खा है। किसी के पूछने पर यही पूर्वोक्त उत्तर दिया करता था कि नीति में तो अभी कुछ भी नहीं है, जो ताल्लुक रखता हूँ वह प्रीति से ही रखता हूं।

किसी समय का मालदार वीरसंघ आज दरिद्र हो गया

है, उसकी शक्ति बँट गई है और उसमें से बहुत-सी शक्ति आपस के संघर्ष में ही समाप्त हो जाती है, विभिन्न सम्प्रदायों का आचार-विचार पृथक् रहे, फिर भी यदि आपस में प्रेमभाव हो तो शासन की विशेष उन्नति हो सकती है। सम्मिलित शक्ति से महान् कार्य किया जा सकता है। इस प्रकार के विचार से प्रेरित होकर कोटा में एक नूतन प्रयत्न किया गया था। वि० सं० २००७ में वहां जैनदिवाकर श्री चौथमलजी म० का चौमासा था, वहां श्वेताम्बर संवेगी सम्प्रदाय के आचार्य आनन्दसागरजी म० तथा दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्य सूर्यसागरजी म० भी वहीं थे। तीनों महान् पुरुषों का दिल जैन समाज में एकता की भावना उत्पन्न करने के लिए बढ़ा हुआ था। वे कहते-हम बातें करते हैं प्रेम बढाने की, मगर आपस में ही प्रेम प्रदर्शन नहीं कर सकते, एक दूसरे से कतराते हैं, न पास में बैठते हैं, न वार्त्तालाप करते हैं। यह संगठन का है, अगर हम विभिन्न जैन सम्प्रदायों में भी आपस में प्रेम उत्पन्न नहीं कर सके तो कितनी बुरी बात है।

आखिर तीनों सम्प्रदायों के उन महान् सन्तों ने एक साथ एक ही स्थान पर उपदेश देने का निश्चय किया, तीनों महानुभाव एक ही स्थान पर पधारे और व्याख्यान दिया। इस एकता की भावना को आगे बढ़ाने का उन्होंने विचार किया मगर काल को वह मंजूर न हुआ। आज उनमें से एक भी मौजूद नहीं है।

भाइयो! पारस्परिक संघर्ष, क्लेश, कलह और फूट को उत्पन्न कर देने में कोई कठिनाई नहीं होती, जरा भड़को को भड़काया और क्लेश की ज्वालाएँ फैलने लगीं। मगर प्रेम, मैत्री, एकता और संगठन के लिए प्रयत्न करना पड़ता है, शास्त्र में कहा है कि संघ में जो विभेद पैदा करता है वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है। संघ में भेद होने से उसमें कमजोरी आती है, एक के अङ्क के साथ एक का अङ्क और लगा दिया जाय तो ग्यारह हो जाते हैं, उनके साथ एक और लगा दें तो एक सौ एक की संख्या होती है, इसी प्रकार अलग २ में जो शक्ति है सम्मिलित होने पर वह कोई गुनी बढ़ जाती है।

एकता सब प्रकार से शान्ति और समृद्धि को बढ़ाने वाली है। जिस देश में, समाज में और जाति में एकता होती है, वहां लक्ष्मी का वास होता है, कहा भी है—

जहां सुमति तहं संपति नाना।
जहां कुमति तहं विपति निदाना॥

भगवान ने साधुओं के लिए जो बारह प्रकार के संभोग बतलाए हैं, वह भी पारस्परिक प्रेम और एकता के लिए ही हैं, इससे संघ और शासन की उन्नति होती है और पारस्परिक प्रेम की पुष्टि होती है। जहां प्रेम नहीं वहां कुछ भी नहीं है; कहा है—

सब से चढ़ता प्रेम है, प्रेम उतरता नेम।
जा घर प्रेम न नेम है ता घर कुशल न क्षेम ॥

एक कवि कहते हैं—

पोथा पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥

बहुत-से लोग पुस्तकों के कीड़े होते हैं, वे ढेर की ढेर पुस्तकें पढ़ते हैं और संसार से विदा हो जाते हैं, कवि कहता है कि उन्हें पण्डित नहीं माना जा सकता। मैं तो उसी को पण्डित मानता हूं जिसने अढ़ाई अक्षर वाले 'प्रेम' शब्द के मर्म को समझ लिया है, जिसने प्रेम के अढ़ाई अक्षर नहीं पढ़े हैं, उसने कुछ भी नहीं पढ़ा है। सारी पढ़ाई का सार यही है कि प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और मैत्री का प्रकाश और विकास हो, क्योंकि जैसी अपनी आत्मा है वैसी ही दूसरों की भी है। संसार में हजारों पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, उन्हें पढ़कर अगर प्रेमभाव नहीं जागा तो उनका पढ़ना क्या काम आया ?

पुराने जमाने में जो दीपक जलाए जाते थे, उनमें रुई की बत्ती और तेल होता था। जब तक दीपक में तेल (स्नेह) रहता था, वह प्रकाश करता रहता था। जब उसका स्नेह समाप्त हो जाता तो वह गुल हो जाता था। इसी प्रकार जब तक संसार के लोगों में स्नेह बना रहता है, तब तक हृदय में रोशनी रहती है और स्नेह न रहा तो रोशनी भी समाप्त हो जाती है।

जो कवि भी यही कहता है कि प्रेम सब से बड़ी चीज है। वास्तव में प्रेम जगत का एक महान वरदान है, एक दिव्य सम्पत्ति है। ज्ञानी पुरुष तो यहां तक कहते हैं कि प्रेम त्रस-चलते-फिरते प्राणियों से ही नहीं, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति काय के एकेन्द्रिय जीवों से भी करना चाहिए। संसार के प्रत्येक प्राणी को अपना-अपना जीवन प्रिय है। आज तो 'स्वयं जीओ और दूसरों को जीने दो' का नारा अधिक सुनाई दे रहा है। मगर दूसरों का यह नारा संकीर्ण अर्थ में प्रयुक्त होता है, केवल मनुष्यों तक ही सीमित है। जैनधर्म प्राणी मात्र के लिए, जिनमें पशु पक्षी, जलचर आदि भी सम्मिलित हैं, इस नारे को लागू करने की हिमायत करता है। वह समस्त आत्माओं को अपनी ही आत्मा के समान समझने की प्रेरणा करता है।

तो इसी एकता और प्रेम की भावना से प्रेरित हो कर ब्यावर और सादड़ी में मुनिराजों ने मिलकर संगठन किया और अपनी अपनी पदवियों का परित्याग करने में संकोच नहीं किया।

भाइयो! जिसने वीतराग प्ररूपित धर्म को शिरोधार्य किया है, वह कीड़ों-मकोड़ों तक से प्रेम करता है तो क्या वह अपने भाइयों से प्रेम नहीं कर सकता? और जहां अन्तःकरण में प्रेम होगा वहां ऐसी कौन सी वस्तु रह जाती है जिसका त्याग न किया जा सके?

सब से चढ़ता प्रेम है, प्रेम उतरता नेम।
जा घर प्रेम न नेम है ता घर कुशल न क्षेम॥

एक कवि कहते हैं—

पोथा पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥

बहुत-से लोग पुस्तकों के कीड़े होते हैं, वे ढेर की ढेर पुस्तकें पढ़ते हैं और संसार से विदा हो जाते हैं, कवि कहता है कि उन्हें पण्डित नहीं माना जा सकता। मैं तो उसी को पण्डित मानता हूं जिसने अढ़ाई अक्षर वाले 'प्रेम' शब्द के मर्म को समझ लिया है, जिसने प्रेम के अढ़ाई अक्षर नहीं पढ़े हैं, उसने कुछ भी नहीं पढ़ा है। सारी पढ़ाई का सार यही है कि प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और मैत्री का प्रकाश और विकास हो, क्योंकि जैसी अपनी आत्मा है वैसी ही दूसरों की भी है। संसार में हजारों पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, उन्हें पढ़कर अगर प्रेमभाव नहीं जागा तो उनका पढ़ना क्या काम आया?

पुराने जमाने में जो दीपक जलाए जाते थे, उनमें रुई की बत्ती और तेल होता था। जब तक दीपक में तेल (स्नेह) रहता था, वह प्रकाश करता रहता था। जब उसका स्नेह समाप्त हो जाता तो वह गुल हो जाता था। इसी प्रकार जब तक संसार के लोगों में स्नेह बना रहता है, तब तक हृदय में रोशनी रहती है और स्नेह न रहा तो रोशनी भी समाप्त हो जाती है।

तो कवि भी यही कहता है कि प्रेम सब से बड़ी चीज है। वास्तव में प्रेम जगत् का एक महान् वरदान है, एक दिव्य सम्पत्ति है। ज्ञानी पुरुष तो यहां तक कहते हैं कि प्रेम त्रस-चलते-फिरते प्राणियों से ही नहीं, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति काय के एकेन्द्रिय जीवों से भी करना चाहिए। संसार के प्रत्येक प्राणी को अपना-अपना जीवन प्रिय है। आज तो 'स्वयं जीओ और दूसरों को जीने दो' का नारा अधिक सुनाई दे रहा है। मगर दूसरों का यह नारा संकीर्ण अर्थ में प्रयुक्त होता है, केवल मनुष्यों तक ही सीमित है। जैनधर्म प्राणी मात्र के लिए, जिनमें पशु पत्ती, जलचर आदि भी सम्मिलित हैं, इस नारे को लागू करने की हिदायत करता है। वह समस्त आत्माओं को अपनी ही आत्मा के समान समझने की प्रेरणा करता है।

तो इसी एकता और प्रेम की भावना से प्रेरित हो कर ब्यावर और सादड़ी में मुनिराजों ने मिलकर संगठन किया और अपनी-अपनी पदवियों का परित्याग करने में संकोच नहीं किया।

भाइयो! जिसने वीतराग प्ररूपित धर्म को शिरोधार्य किया है, वह कीड़ों-मकोड़ों तक से प्रेम करता है तो क्या वह अपने भाइयों से प्रेम नहीं कर सकता? और जहां अन्तरंग में प्रेम होगा वहां ऐसी कौन-सी वस्तु रह जाती है जिसका त्याग न किया जा सके?

ज्ञानी कहते हैं-जहां प्रेम नहीं और नेम भी नहीं, वहां कुशल-क्षेम भी नहीं है।

बराबर सम्पर्क रहने से धीरे-धीरे प्रेम भी बढ़ जाता है और जहां किसी प्रकार का सम्पर्क ही नहीं होता वहां प्रेमवृद्धि के लिए कोई अवकाश भी नहीं रहता। पारस्परिक सम्पर्क से बहुत-सी गलतफहमियां दूर हो जाती हैं, भ्रान्त धारणाएँ मिट जाती हैं, शंकाओं का समाधान हो जाता है और सम्बन्ध मधुर हो जाते हैं। एक कवि ने कहा है—

यह मीठा प्रेम का प्याला,
कोई पिएगा किस्मत वाला।
प्रेम गुरु है प्रेम है चेला,
प्रेम धर्म है प्रेम है मेला।
प्रेम की फेरो माला,
कोई फेरेगा किस्मत वाला।

भाइयो! आज संसार को आपस में बांधने वाला यदि कोई सूत्र है तो वह प्रेम ही है।

पतंगा एक अबोध जानवर है मगर दीपक से वह इतना प्रेम करता है कि उसके लिए प्राणों का भी उत्सर्ग कर देता है। वह अपनी प्रीति को भंग नहीं होने देता। ऐसी स्थिति में समझदार मानव का यदि धर्म से और मानवजाति से प्रेम हो जाएगा

तो क्यों वह अपने भीतर सब को नहीं समा लेगा ? वर्षाकाल में छोटी-छोटी नदियां उमड़ी-उमड़ी जाती हैं परन्तु विशाल सागर कभी नहीं उमड़ता। वह सब नदियों को अपने में समा लेता है। इसी प्रकार विशाल हृदय का धनी प्राणी मात्र को अपने में समा लेता है। आप भी तो बोला करते हैं-

मित्ती मे सव्वभूएसु,
वेरं मज्झं न केणइ।

अर्थात् संसार के सभी प्राणियों पर मेरा मैत्रीभाव है। किसी भी प्राणी से मेरा वैरभाव नहीं है।

तो जैसे कहते हो वैसे ही विश्व के समस्त प्राणियों से प्रेम भी करो। जब सब से प्रेम करोगे तो अपने लिए कुशल-क्षेम का भी निर्माण कर लोगे।

मोती जब तक धागे में पिरोए रहते हैं तब तक एक माला के रूप में रहते हैं, परन्तु जब धागा टूट जाता है तो सारे मोती बिखर जाते हैं और माला का अस्तित्व नहीं रह जाता। इसी प्रकार समाज में भी जब तक यह प्रेम रूपी धागा है तब तक समाज एक है और जब प्रेम का धागा टूट जाता है तो मोती बिखर जाते हैं और फिर लोग कहते हैं-जब तक अमुक मुखिया था तब तक समाज एक था, परन्तु उसके मरते ही समाज बिखर गया। परिवार के विषय में भी यही कहा जा सकता है।

तो प्रत्येक जाति, समाज, देश या परिवार में प्रेम की आवश्यकता है। जहां परस्पर प्रेम होता है वहां अशक्य कार्य भी सुशक्य हो जाता है। जहां प्रेम नहीं होता वहां एक दूसरे के छल-छिद्र देखता रहता है। वहां द्वेष का दावानल दहकते देर नहीं होती। अतएव महापुरुष कहते हैं कि प्रेम संसार का अमृत तत्व है और इसमें महान् शक्ति रही हुई है।

भाइयों! अगर आपको मुक्ति की अभिलाषा है तो प्राणी मात्र को अपना मित्र मानो, किसी का अहित न करो। किसी का अनिष्ट मत करो। जितना सुख पहुंचा सको, पहुंचाओ, मगर किसी को कष्ट न पहुंचाओ। यही आपके सुख का मार्ग है।

अमरसेन-वीरसेन चरित—

यही बात चरित के द्वारा आपके समक्ष रक्खी जा रही है। बतलाया जा चुका है कि उधर वीरसेन राज्य का अधिकारी हो गया और अमरसेन ने वेश्या के पास रहते हुए प्रतिदिन पांच सौ मोहरें प्राप्त करने का रहस्य उसे बतला दिया। उसे जान कर वेश्या इसी उधेड़बुन में रहने लगी कि किस उपाय से वह गुठली इसके पेट में से निकाल लूं तो सुखी हो जाऊँ और इस पुरुष पर निर्भर न रह कर स्वाधीनतापूर्वक मोहरें प्राप्त कर लिया करूं फिर अमरसेन को धक्के देकर कभी भी घर से निकाल सकती हूँ।

आप जानते हैं कि जब किसी कार्य को सम्पादित करने

की तीव्र लगन मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होती है तो वह कोई न कोई उपाय निकाल ही लेता है। उसकी बुद्धि उसी दिशा में काम करने लगती है।

वेश्या अमरसेन के सामने जबान से तो मीठी रहती है परन्तु उसके हृदय में हलाहल भरा हुआ है। वह अत्यन्त मधुर भाषण करती है और गहरा प्रेम प्रदर्शित करती है परन्तु दिन-रात यही सोचती रहती है कि कब और कैसे गुठली प्राप्त कर लूँ।

भाइयो ! गर्मी के दिन थे। एक दिन वेश्या ने अवसर देख कर एक पेय तैयार किया। उसने पानी में कुत्ते का मल घोल दिया और शक्कर मिला कर अमरसेन को देते हुए कहा-नाथ ! गर्मी बहुत पड़ रही है। इसे पी लीजिए। शान्ति रहेगी। यह बनारस का बना शर्बत है।

अमरसेन के मन में कोई आशंका नहीं थी, कपट नहीं था और वह वेश्या को हृदय से प्रेम करने लगा था, अतएव उसने उस पेय को पी लिया। मगर आप जानते होंगे कि कई चीजें ऐसी होती हैं जिन्हें जठराग्नि स्वीकार नहीं करती। और जिन्हें स्वीकार नहीं करती उन्हें वमन के रूप में बाहर निकाल कर फैंक देती है। वेश्या जानती थी कि यह चीज पेट में टिकने वाली नहीं है। इसी उद्देश्य से उसने वह पेय उसे पिलाया भी था कि जोरदार वमन हो और गुठली इसके पेट में से निकल पड़े।

अमरसेन ने ज्यों ही वह बनारसी शर्बत पिया कि उसका जी मचलाने लगा। तुरन्त उसे वमन हो गया। वेश्या ने पीकदानी उसके सामने पहले से ही रख दी थी। अतएव उसने पीकदानी में उलटी की और उसी के साथ वह गुठली भी निकल पड़ी।

वेश्या ने पीकदानी उठा कर एक ओर रख दी और उसे ढंक दिया। तत्पश्चात् उसने अमरसेन को मुँह साफ करने के लिए पानी दिया। फिर बोली-नाथ ! बड़े ही आश्चर्य की बात है कि मैं आपके लिए बढ़िया से बढ़िया चीज लाई, मगर आपको उससे तकलीफ हुई। मालूम होता है किसी दुष्ट की नजर लग गई है। इसी करण ऐसा हुआ।

भाइयो ! एक साधु थे तपस्वी छोटेलालजी, उन्होंने पात्र को रंग कर सूखने के लिए रख दिया। इतने ही में किसी व्यक्ति ने उसे देखकर कहा-कितना बढ़िया पात्र है। एकदम चमचमा रहा है।

और उसके ऐसा कहते ही वह पात्र तड़क कर टूट गया।

भीलवाड़ा की घटना है, किसी गृहस्थ ने काफी खर्च करके एक सुन्दर मकान बनवाया। उसकी छत पर अठारह सिलाएँ चढ़ाई जा रही थी। उसे देखकर किसी ने कह दिया-बहुत ही ... हवेली बनी है। उसके ऐसा कहते ही सबकी सब शिलाएँ गई।

यह दृष्टि-दोष है, इससे बचाने के लिए कई लोग दरवाजे पर नीबू या कोयला लगा देते हैं। बच्चे के ललाट पर काजल का चांद या सूर्य बना देते हैं। कोई गाय बहुत बढ़िया और दुधारू होती है तो उसके गले में फटा-पुराना जूता बांध देते हैं।

तो उस चालाक गणिका ने भी वमन का एक बहाना खोज निकाला और कहा—किसी की नजर लग जाने के कारण ही आपको वमन हो गया जान पड़ता है। इसी से यह शर्बत आपके पेट में नहीं टिक सका। फिर उसने कहा—घबराइए नहीं और न चिन्ता कीजिए, सौ टट्टी के बराबर एक उलटी मानी गई है। अभी आपकी तबियत दुरुस्त हो जाती है।

यह कह कर वेश्या कुछ अजवाइन और कोई चूर्ण लेकर आई और बोली—प्रियतम ! थोड़ा यह ले लीजिए तो शान्ति हो जाएगी।

अमरसेन ने चूर्ण फांक लिया और अजवाइन ले ली, उससे उसका जी अच्छा हो गया।

वेश्या ने गुठली वमन में से निकाली और धोकर अपने पास रख दी। वह सोचने लगी—यह चीज तो मेरे हाथ आ गई, मगर परीक्षा करके देखना चाहिए कि वास्तव में इसमें वह करामात है या नहीं ? और जब तक इसकी आजमाइश न कर ली जाए

और मोहरें प्राप्त न कर ली जाएँ तब तक अमरसेन को यहां से भगाना उचित नहीं होगा।

अमरसेन को पता नहीं चला कि गुठली उसके पेट में से निकल गई है। वह रात हमेशा की तरह आराम से सोया। सुबह शौचादि से निवृत्त होकर जब उसने कुल्ला किया तो प्रतिदिन की भांति पांच सौ मोहरों का ढ़ेर नहीं लगा, वेश्या तो इसी टोह में थी। उसने समझ लिया कि अब सोने के अण्डे देने वाली यह मुर्गी बंध्या हो चुकी है और मेरे किसी काम की नहीं रह गई है तो उसे भगा देने का उपक्रम किया। वेश्या को केवल पैसे से प्रेम होता है, किसी व्यक्ति से नहीं चाहे वह कितना ही गुणवान् और कलाविद् क्यों न हो। अतएव उसने अमरसेन से कहा-नाथ! मेरे पास पैसा नहीं है। आप मुझे पांच सौ मोहरें दीजिए ताकि मांगने वालों के देकर उनसे छुट्टी पा सकूं।

अमरसेन दोहरा परेशान हुआ। प्रथम तो मोहरें न निकलने के कारण और दूसरे वेश्या के तकाजे के कारण। उसने मुँह में दूर तक उंगलियां डाल कर कुल्ला करने की चेष्टा की, तथापि मोहरें न निकलीं। आखिर निकलती भी कैसे। जिसकी बदौलत अब तक मोहरें निकला करती थीं, वह करामाती चीज तो चली गई थी।

वेश्या बार-बार उससे मोहरों का तकाजा करने लगी।

मगर वह दे तो कहां से दे ? उसने अपने पास कुछ भी नहीं रक्खा था। प्रतिदिन सारी मोहरें वह दे दिया करता था। फिर भी जब वेश्या न मानी तो उसने कहा-देखो, मैंने तुम्हें प्रतिदिन पांच सौ मोहरें दी हैं। उनसे चाहो तो जिंदगी भर सुख-चैन से रह सकती हो। अब मेरे पेट में गुठली नहीं रही तो और मोहरें कैसे दे सकता हूँ ? शायद वह गुठली वमन के साथ निकल गई है। वमन जहां फैंका हो वहां देखो। वह मिल जाए तो ले आओ। उसे खाकर फिर मोहरें दे सकूँगा।

वेश्या बोली-वह वमन तो मैंने उसी समय गटर में फैंक दिया था। वह बह कर कहीं का कहीं पहुँचा होगा। अब उस गुठली की आशा छोड़ो। वह मिलने वाली नहीं है। कुछ और उपाय करना ही पड़ेगा और घर का खर्च चलाना ही पड़ेगा।

अमरसेन ने कहा-उस गुठली के बिना मैं मोहरें देने में असमर्थ हूं।

वेश्या ने तड़क कर कहा-अगर तुम्हारे पास मोहरें नहीं हैं तो तुम्हारे लिए इस घर में स्थान भी नहीं है। जो पैसा नहीं दे सकता, मैं उसकी पत्नी बन कर नहीं रह सकती। जिसके पास पैसा न हो उसे इस घर से फौरन बाहर चला जाना चाहिए।

यह सुनते ही अमरसेन की छाती पर सांप लोट गया। उसके दुःख और सन्ताप की सीमा नहीं रही। हृदय ग्लानि से

भर गया। मगर लाचार था, निराधार था। कहीं ठौर ठिकाना नहीं था। उसे पिछले दिन याद आ गए। उसने अत्यन्त उदास हो कर वेश्या से कहा—देखो; संसार में धन की कीमत है, यह सत्य है, मगर मैंने तुम्हें कम धन नहीं दिया है। इतने दिनों तक प्रतिदिन देता रहा हूं और मैंने तुम्हें तथा तुमने मुझे प्यार किया है। तुम्हारे पास धन की कमी नहीं है. यह मैं बखूबी जानता हूँ। ऐसी स्थिति में तुम मेरा परित्याग न करो। ऐसा करना तुम्हारे लिए शोभा की बात न होगी।

किन्तु भोले अमरसेन ! तुम नहीं समझते कि यह दुनियां किस प्रकार छल-प्रपंच और स्वार्थ से भरी है। यहां सौजन्य का मूल्य नहीं। कृतघ्नता की जड़ें दूर-दूर तक फैली हुई हैं। फिर वेश्या के हृदय में अनुराग कहां ? वह पैसे की दासी है, कपट की पुतली है. कृतघ्नता का भण्डार है, निर्दयता का कोष है। उससे स्वर्गीय प्रेम की आशा करना विषधर की दाढों से अमृत की आशा करने के समान है।

जहां देखो जहां मतलब बात,
विना मतलब नहीं बूझे बात।

भाइयो ! दुनिया अपने मतलब से बात करती है। बिना मतलब कोई किसी को नहीं पूछता। नीतिकार ठीक ही कहते हैं—

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।

जहां पैसा है वहां सब गुण हैं। पैसा नहीं तो कोई गुण नहीं है। अमरसेन पांच सौ मोहरें दे सकता था तो प्राणों से भी अधिक प्यारा था। प्राणनाथ और प्रियतम था। आज कुछ भी नहीं है। कुत्ते के बराबर भी उसकी कीमत नहीं है। वह दुत्कारा जा रहा है।

(तर्ज-आसावरी)

पैसा देखो जगत में ऐसा,
यह तो काम बनावे फैसा ॥ टेक ॥
जो जो वस्तु चाहत दिल में, ते ते ही जोग बनावे;
जो पैसा नहीं पास हुवे तो कोई नहीं बतरावे ॥ १ ॥
राज्यादिक को वश कर लेवे, न्याय अन्याय करावे ।
वैर विरोध करावन वाला, पैसा ही झूठ बुलावे ॥ २ ॥

आज के भौतिकता के युग में पैसा परमात्मा के समान है। पास में पैसा है तो जंगल में भी मंगल है। जिसके पास पैसा नहीं उस गृहस्थ की कोई पूछ नहीं है। कहावत है-साधु के पास कौड़ी हो तो वह साधु कौड़ी का है और गृहस्थ के पास कौड़ी न हो तो वह कौड़ी का है। पैसे के बिना सगा भाई भी भाई की तरफ नहीं देखता। यह पैसा ही तो है जो राजा को भी अपने वश में कर लेता है। राजा का कलेजा भी पैसे को देख कर ठंडा हो जाता है। पैसा अन्याय को भी न्याय में परिणत कर

देता है। पारस्परिक वैर-विरोध को उत्पन्न करने का प्रधान साधन है। जहां घनिष्ठ प्रेम है वहां भी जब पैसा आड़ा आ जाता है तो मुकदमबाजी करा देता है, यहां तक कि एक को दूसरे के प्राणों का घातक भी बना देता है।

लोग पैसे पैसे के लिए झूठ बोलते हैं, सौगंद खाते हैं और दूसरों को धोखा देते हैं। कहते हैं–'झूठ बोले वो गाएँ खाए।' सुनने वाले समझते हैं कि ऐसा कहने वाला झूठ नहीं बोलेगा, मगर वह झूठ बोल कर ठग लेता है और ठगाई का पैसा गोशाला के चंदे में दे देता है अर्थात् गायों को खिला देता है। किसी ने कहा है—

द्वादश युग में हो गया ऐसा, बुड्ढे का विवाह करावे।
बिन पैसे बिन रहत कुंवारा यही तो अचरज आवे ॥३॥

पांच वर्ष का युग माना जाता है। ऐसे बारह युग अर्थात् साठ वर्ष का बुड्ढा हो और यदि वह पैसे वाला है तो उसका भी विवाह हो जाता है। कहावत है–'पास में होवे रोकड़ा तो परणे छोकरा।' पास में पैसा न हो तो युवक भी रह जाते हैं—उन्हें कोई लड़की नहीं देता। आगे कहा है–

बड़े बड़े विद्वान् जनों को देश-विदेश भ्रमावे।
हँस-हँस बात करावन वाला, पैसा ही हेत तुड़ावे ॥४॥

पुण्य छता पुण्य बांध ले प्राणी, यह अवसर कब आवे।
मुनि नंदलाल तणा शिष्य तुमने, हितकर ज्ञान सुनावे ॥४॥

देखो भाइयो ! इस पैसे के लिए बड़े-बड़े प्रकाण्ड विद्वानों को भी देश-विदेश में भटकना पड़ता है। पास में पैसा होता है तो लोग हँस हँस करके बातें करते हैं और कहते हैं—आपको मेरे गले की सौगंद जो मेरे यहां भोजन किये बिना चले गए। पास में पैसा नहीं तो कोई पानी के लिए भी नहीं पूछता। सारे हेत में रेत पड़ जाती है।

भाइयो ! यदि पूर्वजन्म में कुछ पुण्य कमा कर लाए हो और उसके उदय से सुखद साधन मिले हैं तो उनका ऐसा उपयोग करो जिससे भविष्य में भी सुख की प्राप्ति हो। यह सुअवसर बार-बार हाथ आने वाला नहीं है। स्वर्गीय चौथमलजी महाराज कहा करते थे कि नाणे (नकदी) को कीमत नहीं है, टाणे की कीमत है।

यह जो माया है, इसके द्वारा सत्कर्म भी हो सकते हैं और दुष्कर्म भी हो सकते हैं। इसके द्वारा पुण्य भी उपार्जित किया जा सकता है और पाप भी उपार्जित हो सकता है। विवेकवान् पुरुष उसके द्वारा पुण्योपार्जन करते हैं।

अमरसेन मोह में फँस गया था। वह वेश्या के रूप-रंग और हाव-भाव के चक्कर में आकर विवेकविकल बन गया था।

इसी कारण प्रतिदिन पांच सौ मोहरें वेश्या के रूप की वेदी पर चढ़ाता रहा। अगर उसने भविष्य का विचार किया होता तो वह न मोहरें गँवाता, न मोहरें देने वाली गुठली गँवाता, न भाई से वियुक्त होता, न पश्चात्ताप का यह अवसर आता और न पाप का भागी बनता।

तो वेश्या ने साफ कह दिया—मेरा घर कोई धर्मशाला नहीं है और न अनाथालय है। यह विलासगृह है और विलास के लिए पैसा पास होना चाहिए। है तो आनन्द से रहो, नहीं तो दरवाजा सामने खुला हुआ है।

अमरसेन ने बहुत आरजू-मिन्नत की मगर वेश्या के कठोर हृदय पर लेशमात्र भी असर न हुआ। विलास और वासना ने अमरसेन के हृदय को इतना दुर्बल बना दिया था कि उसमें राज-तेज नाम मात्र को नहीं रह गया था। आत्माभिमान उसका मर चुका था। इस कारण उसने वेश्या के समक्ष अतीव दीनता प्रदर्शित की, फिर भी उसका दिल नहीं पसीजा। जिसका दिल कठोर होता है और जिसके लिए पैसा ही परमेश्वर होता है, उसके दिल में दया नहीं उत्पन्न होती।

विभीषण ने रावण को बहुत समझाया कि सीता को वापिस लौटा दो और अपनी गलती स्वीकार कर लो, पर रावण कहा-विभीषण! तू कायर है, मेरे वंश को लजाने वाला।

सीता को लाना मेरे हाथ में था, वापिस देना मेरे हाथ में नहीं।

विभीषण ने कहा—देखो भैया, अपनी सब की दुर्गति हो जाएगी।

अभिमानी रावण ने कहा—मुझे इसकी चिन्ता नहीं है।

भाइयो! चातुर्मास से पूर्व मैं मैसूर गया था। वहां आपस में वैमनस्य चल रहा है। सेठ किसनलालजी ने वहां के प्रमुख जनों को रात्रि में बुलवाया और वैमनस्य मिटाने के विषय में बातचीत की मगर कुछ बात नहीं बैठी। मैंने यहां तक कह दिया—तुम राक्षस हो, रावण हो। तुम सामायिक करते हो परन्तु कषायों के पुतले हो। किसी की बात नहीं मानते। फिर भी कोई सफलता नहीं मिली।

तो अमरसेन ने भी बहुत नम्रता प्रदर्शित की, यहां तक कि दीनता भी दिखलाई, मगर निर्दय गणिका के चित्त पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह मानों दूसरी ही हो गई। अब तक मीठी-मीठी बातें बनाने वाली, 'प्राणनाथ' कह कर संबोधन करने वाली और हर तरह की सुख-सुविधा का खयाल रखने वाली वेश्या जैसे कोई दूसरी हो।

आखिर अमरसेन को वेश्या के घर से निकलना पड़ा। वह खाली हाथ घर से बाहर निकला और सीधा उसी सरोवर के किनारे पहुंचा, जहां से भोजन खरीदने के लिए गया था और

वेश्या के झांसे में आ गया था। वहां पहुंच कर वह गंभीर चिन्ता में निमग्न हो गया।

किस प्रकार उसके पुण्य का उदय होता है, किस प्रकार उसके इस कष्ट का अन्त आता है और सरोवर के किनारे आने पर उसे किस लाभ की प्राप्ति होती है, यह आगे सुनने से विदित होगा।

जो भव्यात्मा पुण्य का संचय करेंगे, वे इस लोक तथा परलोक में सुखी होंगे।

केन्टोनमेंट बेंगलोर
२७-९-५९

संघर्ष का मूल



प्रार्थना—

तर्ज:—सइयां ए आंबो मोरियो.......

ऋषभ जिनंद सूं प्रीतड़ी,
　　किम कीजे हो कहो चतुर विचार के।
प्रभुजी जाई अलगा वस्या,
　　तिहां नहीं कोई वचन उच्चार के ॥ १ ॥ टेक ॥
कागल पण पहुँचे नहीं,
　　नहीं पहुंचे हो तिहां कोई प्रधान के।
जे पहुँचे ते तुम समो,
　　नहीं भाखे हो कोई नो व्यवधान के ॥ २ ॥
प्रीत करी ते रागिया,
　　जिनवरजी हो तुम तो वीतराग के।
प्रीतड़ी जेह अरागी थी,
　　मेलवनी हो लोकोत्तर मार्ग के ॥ ३ ॥

प्रीति अनादि विष भरी,
ते रीते हो करवा मुझ भाव के।
करवी निर्विष प्रीतड़ी,
किण भांते हो कहो बने बनाव के ॥ ४ ॥

प्रीति अनन्ती पर थकी,
जे तोड़े हो ते जोड़े राह के।
परम पुरुष थी रागता,
एकत्वता हो दाखी गुण गेह के ॥ ५ ॥

प्रभुजी ने अवलम्बता,
निज प्रभुता हो प्रगटे गुणरास के।
देवचन्द्र नी सेवना,
आपे हो मुझ अविचल सुखवास के ॥ ६ ॥

यह भगवान् श्रीऋषभदेव की स्तुति है। इस स्तुति के रचयिता भक्त देवचन्द्रजी फर्माते हैं—हे भगवान् ऋषभदेव ! मैं आपके साथ प्रीति जोड़ना चाहता हूं। चाहता हूं कि अन्तःकरण से आपके साथ प्रीति करूँ। मगर प्रीति तो तभी हो सकती है जब आप मेरे सन्निकट हों। जब कि आप मुझसे दूर-बहुत दूर इस लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं। प्रीति करूँ तो कैसे करूँ ?

दूर होने पर कदाचित् पुकार कर भी प्रीति जोड़ी जा सकती

है, मगर वहां तक पुकार की पहुंच नहीं है। पहुंच होती भी तो बिना कानों के आप उस पुकार को सुन नहीं सकते।

तो आपको पत्र लिख कर भेजूँ? जहां पुकार नहीं पहुंचती वहां कागज के द्वारा अपनी प्रीति प्रकट की जाती है। किन्तु आपके पास तक कागज पहुंचाने वाला कोई नहीं है।

जिससे काम होता है उसके पास राजा लोग अपना प्रधान भेज देते हैं। मगर वहां तक किसी प्रधान में भी पहुंचने की शक्ति नहीं है।

तो क्या वहां तक कोई पहुंच ही नहीं सकता? ऐसी बात नहीं है। पहुंच तो सकते हैं, मगर वही जो आप सरीखे हो जाते हैं। वे मेरा संदेश आपके पास क्यों पहुंचाएँगे? प्रभो! ऐसी विषमता की स्थिति में किस प्रकार आपके साथ जोड़ी जाय?

भगवन्! जो प्रीति करता है वह रागवान् होता है और आपने राग का त्याग-विनाश कर दिया है। आप वीतराग हैं। वीतराग के साथ प्रीति जोड़ना बड़ी अद्भुत बात है। लोकोत्तर मार्ग है।

हे नाथ! विषय-विष से प्रीति करना तो सहज है, मगर निर्विषय, निष्काम प्रीति करना कैसे बन सकता है? यह तो बड़ी ही कठिन साधना जान पड़ती है। इस साधना में उसी को सफलता मिल सकती है जो परपदार्थों से-संसार के समस्त भौतिक

पदार्थों से, विमुख हो जाता है। जब तक सांसारिक पदार्थों के प्रति प्रीति का भाव विद्यमान है, तब तक प्रभु से प्रेम नहीं जोड़ा जा सकता। मगर प्रभु की प्रीति-सेवा से ही अनन्त, अक्षय और अचल सुख की प्राप्ति हो सकती है।

संसार की वस्तुओं के साथ यह आत्मा अनादि काल से प्रीति करता आ रहा है, मगर उससे कुछ भी काम नहीं बना। जब इनकी प्रीति त्यागी जाएगी और परमपुरुष के प्रति प्रीति जगाई जाएगी और उसके साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित किया जाएगा, तभी इसका कार्य सिद्ध होगा। परमपुरुष गुणों का घर है और उस घर में जब आत्मा का प्रवेश होगा तभी उसे परमात्मपद की प्राप्ति होगी।

जो प्राणी शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा का अवलम्बन ले लेता है, उनका जप और ध्यान करता है, उसी में पारमात्मिक गुणों का उद्भव होता है।

भाइयो ! पारस पत्थर अपने संसर्ग से लोहे को सोना बना देता है, मगर वह भी उसे अपने समान-पारस नहीं बनाता। किन्तु जो भगवान् को भजता है वह स्वयं भगवान् बन जाता है। यह भगवान् का माहात्म्य है।

यहां स्तुतिकार ने अत्यन्त हृदयग्राही शैली से भगवद्भक्ति उपस्थित बाधाओं का उल्लेख करते हुए अन्त में यही प्रकट

किया है कि समस्त आन्तरिक एवं बाह्य बाधाओं पर विजय प्राप्त करके भगवान् का भजन करना चाहिए। भगवद्भक्ति से ही आखिर इस आत्मा का प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। शाश्वत सुख प्राप्त करने का यही एक मार्ग है।

भाइयो! सांसारिक पदार्थों में आपका अनुराग है, अगर उस अनुराग को आप त्याग नहीं सकते तो भी अपने अन्तःकरण के एक कोने में प्रभु-अनुराग को स्थान दो। विषयानुराग ऐसा बढ़ा हुआ हो कि उसमें परमात्मा को कहीं स्थान ही न रह जाए, यह आपके लिए हितकर नहीं है।

समवायांगसूत्र–

कल समवायांगसूत्र के अनुसार बारह प्रकार के साधुओं के संभोग बतलाए गए थे। वास्तव में संभोग समाचारी की समानता पर निर्भर है। जिनकी समाचारी पूरी तरह एक-सी है, उनमें सभी संभोग हो सकते हैं, जिनकी समाचारी में किंचित् अन्तर है, उनमें न्यूनाधिक होते हैं। इसके बाद शास्त्रकार फर्माते हैं कि कृतिकर्म बारह हैं।

चतुर्विध संघ को प्रातः और सायंकाल षड् आवश्यक करना आवश्यक है। उनमें प्रथम आवश्यक सामायिक और दूसरा चतुर्विंशतिस्तव है, जिसमें चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति की जाती है। तीसरा आवश्यक वन्दना है। वन्दना आवश्यक में बारह

कृतिकर्म किये जाते हैं। वह इस प्रकार हैं—वन्दना के निमित्त साधु गुरु के पास जाता है और रजोहरण गुरु के चरणों में रख कर गोदुहासन से बैठ कर, दोनों हाथ जोड़ कर गुरु के चरणों को दसों उंगलियां लगाकर 'अहो कायं कायसंफासं' इस पाठ में से 'अ' अक्षर कहे, तत्पश्चात् दसों उंगलियां अपने मस्तक को लगा कर 'हो' अक्षर का उच्चारण करे और 'कायं' इन दोनों अक्षरों से तीसरा आवर्त्त करे। तथा 'जत्ता भे जवणिज्जं च भे' इन शब्दों से भी तीन आवर्त्त करे– जत्ता भे' इन शब्दों से एक, 'जवणि' शब्दों से दूसरा और 'ज्जं च भे' इनसे तीसरा आवर्त्तन करे। इस प्रकार छह आवर्त्त होते हैं। दो बार की खमासमणा के मिल कर बारह आवर्त्त होते हैं। यही बारह कृतिकर्म कहलाते हैं।

आगे बतलाया गया है कि जम्बूद्वीप की जगती के पूर्व द्वार का स्वामी जो विजय नामक देवता है, उसकी राजधानी बारह लाख योजन लम्बी-चौड़ी है। वह इस जम्बूद्वीप से बहुत दूर असंख्यातवें जम्बूद्वीप में है। जैसे बृटिश सम्राट् का राज्य भारत में भी था, मगर वह इंग्लेण्ड में रहता था, उसी प्रकार विजय देवता के विषय में समझना चाहिए।

राम नामक बलदेव (बलभद्र) बारस सौ वर्ष की आयु भोग कर पांचवें देवलोक में उत्पन्न हुए।

मन्दर पर्वत की चूलिका मूल में बारह योजन विस्तार वाली है। जम्बूद्वीप के चारों ओर जो वेदिका है; वह मूल में बारह योजन चौड़ी है। (बीच में आठ योजन और ऊपर चार योजन चौड़ी कही है।)

दिन और रात दोनों मिल कर ३० मुहूर्त्त के होते हैं, मगर दोनों का परिमाण सदैव बराबर नहीं होता। कभी दिन बड़ा होता है तो रात्रि छोटी होती है और कभी रात्रि बड़ी होती है तो दिन छोटा होता है। बड़े से बड़ा दिन अठारह मुहूर्त्त का होता है, उस समय रात्रि छोटी से छोटी बारह मुहूर्त्त की होती है। और जब बड़ी से बड़ी रात्रि अठारह मुहूर्त्त की होती है तब दिन छोटे से छोटा बारह मुहूर्त्त का होता है। आषाढ़ी पूर्णिमा की रात्रि सब से छोटी होती है और पौष की पूर्णिमा का दिन सब से छोटा होता है।

सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान की, जिसे छब्बीसवां देवलोक भी कहते हैं, ऊपर की चूलिका से बारह योजन की ऊंचाई पर ईषत्प्राग्भार नामक पृथिवी अर्थात् सिद्धशिला है। इस पृथ्वी के बारह नाम इस प्रकार हैं:—

(१) ईषत्—अल्प अर्थात् ४५ लाख योजन की होने से।

(२) ईषत्प्राग्भार—अन्य पृथ्वियों की अपेक्षा अल्प विस्तार तथा दिखने वाली।

(३) तनु बीच में आठ योजन की मोटी और धीरे धीरे कम होती हुई अन्त में मक्खी के पंख के समान पतली।

(४) तनुतनु-अत्यन्त पतली।

(५) सिद्धि-वहां पहुंचे हुए मुक्तात्माओं के कार्य की सिद्धि होने से।

(६) सिद्धालय-सिद्धों के रहने का स्थान।

(७) मुक्ति-वहां पहुंचे हुए जीवों को कर्मों से छुटकारा मिल जाता है।

(८) मुक्तालय-मुक्त जीवों का स्थान।

(९) ब्रह्म-सकल लोकमय।

(१०) ब्रह्मावर्तसक-समस्त लोक में उत्तम मुकुट रूप।

(११) लोकप्रतिपूर्णा-चौदह राजू ऊँचा लोक उसी से पूर्ण होता है।

(१२) लोकाग्रचूलिका-समस्त लोक की चूलिका (चोटी) के समान सब से ऊपर।

इसके पश्चात् बतलाया गया है कि पहली रत्नप्रभा नामक नरकभूमि में कोई-कोई नारक जीव ऐसे हैं जिनकी आयु बारह पल्योपम की है। पांचवीं नरकभूमि में किसी-किसी नारक की आयु बारह सागरोपम की है।

असुरकुमार देवों में किसी-किसी की स्थिति बारह पल्योपम की है। प्रथम और द्वितीय देवलोक के किसी-किसी देव की स्थिति बारह पल्योपम की है। छठे देवलोक में जो देवता हैं उनमें से किसी-किसी की स्थिति बारह सागरोपम की है। जो देव महेन्द्र, महेन्द्रध्वज, कम्बु, कम्बुग्रीव, पुंख, सुपुंख महापुंख, पुंड्र, सुपुंड्र, महापुंड्र, नरेन्द्र, नरेन्द्रकान्त, नरेन्द्रावतंसक नामक विमानों में उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्कृष्ट स्थिति बारह सागरोपम की होती है।

उक्त देव बारह पक्ष अर्थात् छह मास में एक बार श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन्हें बारह हजार वर्ष में एक बार आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

कोई कोई भव्य जीव ऐसे भी हैं जो बारह भव करके सिद्ध-बुद्ध होंगे और परिनिर्वाण प्राप्त करके सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

इसके पश्चात् तेरहवां समवाय प्रारम्भ होता है। इसमें सर्वप्रथम बतलाया गया है कि क्रियास्थान तेरह हैं। जिस व्यापार से कर्मबन्ध होता है उसे यहां क्रिया कहा गया है। स्थान का अर्थ कारण है। अभिप्राय यह है कि कर्मबन्ध के कारण तेरह हैं जिनका दिग्दर्शन इस प्रकार है—

(१) अर्थदण्ड-शरीर या स्वजन आदि के लाभ आदि रूप

किसी प्रयोजन से किया जाना सावद्य कार्य।

(२) अनर्थदण्ड-निरर्थक हिंसा।

(३) हिंसादण्ड-यह मेरा घात करता है या करेगा, ऐसा समझ कर किसी जीव की हिंसा करना।

(४) अकस्मात् दण्ड-किसी की हिंसा करते अन्य किसी की हिंसा हो जाना।

(५) दृष्टिविपर्यासदण्ड-बुद्धिभ्रम से शत्रु के बदले मित्र की घात कर देना।

(६) मृषावादप्रत्ययिक-अपने या दूसरे के लिए मिथ्या भाषण करने से होने वाला पाप।

(७) अदत्तादानप्रत्ययिक-अदत्तादान (चोरी) के निमित्त से होने वाला पाप।

(८) आध्यात्मिक-मन के दुष्ट विचारों से होने वाला पाप।

(९) मानप्रत्ययिक-अभिमान के कारण दूसरे को दंड देना।

(१०) मित्रद्वेषप्रत्ययिक-माता-पिता आदि को अल्प अपराध के लिए बहुत दण्ड देना।

(११) मायाप्रत्ययिक-माया करके अन्य को दण्डित करना।

(१२) लोभप्रत्ययिक-लोभ से किसी को दण्डित करना।

(१३) ऐर्यापथिक-निष्कषाय महात्माओं का केवल योग के

निमित्त से होने वाला व्यापार। कषाय न होने के कारण ईर्यापथ-बन्ध में स्थिति नहीं पड़ती। कर्म प्रथम समय में बँधते हैं, दूसरे समय में वेदन किये जाते हैं और तीसरे समय में उनकी निर्जरा हो जाती है।

इन क्रियास्थानों के स्वरूप को समझ लेने से आपको विदित हुआ होगा कि लोग प्रयोजन से भी हिंसा करते हैं और बिना प्रयोजन, केवल कुतूहल आदि से अथवा किसी प्रकार की कुटेव आदि से प्रेरित होकर भी हिंसा करते। चलते-चलते पौधों के पत्ते नोच लिए, फूल तोड़ लिए, कहीं बैठे तो घास उखाड़ कर फैंकने लगे या भूमि कुरेदने लगे, यह सब निरर्थक हिंसा है। यद्यपि हिंसा मात्र त्याज्य है, फिर भी जो सार्थक हिंसा को नहीं त्याग सकते, वे भी निरर्थक हिंसा से तो बच ही सकते हैं। निरर्थक हिंसा को त्याग दिया जाय तो भी बहुत-सा पापभार कम किया जा सकता है।

कभी-कभी मनुष्य कल्पना कर लेता है कि यह मुझे हानि पहुंचाएगा, और ऐसी कल्पना से वह उसे पहले ही हानि पहुंचा देता है। पिछले महायुद्ध के समय जर्मनी और रूस में एक साल के लिए संधि हो चुकी थी, मगर रूस ने अपनी सीमा में फौजों का बड़ा जमाव कर रक्खा था। तब जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर ने सोचा—रूस हमारे ऊपर हमला कर देगा। बस इस कल्पना

से प्रेरित होकर उसने पहले ही हमला बोल दिया और वह हमला उसकी पराजय और मृत्यु का कारण बना। इस प्रकार की विचार-धारा से की जाने वाली हिंसा हिंसादण्ड है।

मनुष्य अधिकांश पाप मन के द्वारा करता है। शरीर से कुछ भी क्रिया न करने पर भी अपने पापमय अध्यवसाय के द्वारा बहुत-से पापों का संचय कर लिया जाता है। दशहरे के अवसर पर पाड़े बकरे आदि पशुओं का घात किया जाता है और रावण का भी वध किया जाता है। वध करने वाले तो वह निरर्थक वध करके घोर पाप का उपार्जन करते ही हैं, मगर तमाशबीन लोग भी उनके वध की भावना करके मानसिक हिंसा करते हैं। दूसरों की मृत्यु की कामना करना या अन्य प्रकार से हानि पहुंचाने या पहुँचने की इच्छा करना, यह सब मानसिक हिंसा है।

उदयपुर में जाते हुए मैंने एक आदमी को मिट्टी का पाड़ा बनाकर उस पर तलवार चलाते देखा। मेरे साथी साधु ने उससे पूछा—भाई, यह क्या कर रहे हो? उसने बतलाया—दशहरे के दिन असली पाड़ा मारना होता है, अतएव मैं अभी से अभ्यास कर रहा हूँ, उस अज्ञान प्राणी का यह उत्तर सुनकर बड़ा खेद हुआ, जगत के प्राणी मूर्खतावश कितना घोर पाप उपार्जन करते हैं। कई लोग आटे का पाड़ा बनाते और उसमें रुधिर की जगह ङ का पानी भर देते हैं और फिर उसका हनन करते हैं इस

प्रकार की समस्त मानसिक हिंसा अत्यन्त चिकने कर्मों के बन्ध का कारण है।

भाइयो ! कायिक और वाचिक हिंसा की अपेक्षा मानसिक हिंसा अत्यधिक होती है और उससे किसी अर्थ की सिद्धि भी नहीं होती, अतएव उससे बचने का सदा प्रयत्न करो. मन में अशुभ विचार मत आने दो सदा प्रशस्त विचार करो. याद रक्खो कि पुण्य-पाप के बंध में और बंध मात्र से बचने में मन प्रधान निमित्त है, अगर अपने मन पर आपने नियंत्रण कर लिया और उसे बेकार पापों में प्रवृत्ति होने से बचा लिया तो भी आप महान् लाभ के भागी हो सकते हैं।

इसी प्रकार मान, माया, लोभ द्वेष और दृष्टिविपर्यास आदि निमित्तों से होने वाले पाप को भी रोकना चाहिए. आपका परम सौभाग्य है कि यह वीतरागप्ररूपित धर्म आपको प्राप्त हुआ है। अन्यत्र इस प्रकार की सूक्ष्म विवेचना दुर्लभ है. अतएव इससे लाभ उठाओ। आत्मा को उन्नत और विशुद्ध बनाने का प्रयत्न करो कलुषित मत होने दो।

अगर आपने कर्त्तव्य का विचार न करके अविवेक से काम किया तो पाप का बन्ध होगा और आत्मा भारी होगी। जो भारी होता है वह नीचे जाता है और जो हल्का होता है वह ऊपर जाता है। इसीलिए ज्ञानी जन कहते हैं कि पाप अधोगति

का कारण है, आत्मा अनादि काल से पापों में प्रवृत्त हो रही है और इसी कारण इसे अनन्त बार नरक आदि गतियों की यातनाओं का पात्र बनना पड़ा है, मगर आज आपको उत्तम कुल, नीरोग शरीर, लम्बी आयु, जैन धर्म का श्रवण और श्रद्धान आदि जो उत्तम सामग्री मिली है, ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं, यह अवसर बहुत ही महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान् है, अगर यह यों ही चला गया तो पुनः मिलना बहुत कठिन है, इसलिए भाइयों ! मैं आपको सावधान कर रहा हूं, आपको सावधान हो जाना चाहिए और जो अवसर मिला हुआ है उसका पूरा लाभ उठाकर आत्महित कर लेना चाहिए।

भाइयो ! कर्म से कर्म कटते भी हैं और कर्म से कर्म जुटते भी हैं, लोहा लोहे को काटता भी है और लोहा लोहे को जोड़ता भी है। अतएव आप ऐसी क्रिया करो कि आपके कर्म कटें और चौरासी का चक्कर मिटे।

भगवान् ने फर्माया है-'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा।' अर्थात् जो कर्म करने में शूरवीर होता है, वह यदि परिणति बदल जाय तो धर्म करने में भी शूरवीर हो जाता है। चक्रवर्त्ती सम्राट् सम्पूर्ण षट्खण्ड भरतक्षेत्र पर शासन करते हैं, उन्हें वह आधिपत्य प्राप्त करने के लिए लड़ाइयां भी करनी पड़ती हैं। लड़ाई में कितना प्राणसंहार होता है, यह आप भलीभांति जानते हैं। उनके यहां लड़ाई न होने पर भी अपार आरम्भ-

समारंभ होता है। मगर जब चक्रवर्त्ती के हृदय में विरक्ति की परिणति होती है तो वे जगत् के सर्वोत्तम वैभव को भी तिनके की तरह त्याग देते हैं और जिस शूरता से बाह्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी, उसी शूरता के साथ आभ्यन्तर वैरियों पर विजय प्राप्त करने के लिए उद्यत हो जाते हैं।

ज्ञानी कहते हैं—आत्मन् ! कर्मों को बांधने वाला भी तू है और तोड़ने वाला भी तू ही है। श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में शास्त्र कहते हैं-

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ ॥

उ० अ० २०, गा० ३७.

आत्मा ही कर्मों का कर्त्ता है और वही हर्त्ता है, जब कर्मों का करना-हरना आत्मा के ही हाथ में है तो सुख दुःख का कर्त्ता भी वही है, सन्मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना मित्र है और कुमार्ग पर चला आत्मा स्वयं ही अपना शत्रु बन जाता है।

कई लोग समझते हैं कि जगत् में ईश्वर नामक ऐसी एक सत्ता है जो समस्त प्राणियों के पुण्य-पाप का हिसाब-किताब रखता है और उन्हें सुख दुःख देता है और स्वर्ग या नरक

में भेज देती है। मगर ऐसा समझने वाले ईश्वर को कलंकित करते हैं। तथ्य यह है कि अपने सुख दुःख का निर्माण करना अपने ही हाथ में है। आपके कर्म ही आपको सुखी, दुःखी और स्वर्ग या नरक के अधिकारी बनाते हैं।

धन्य हैं वे महापुरुष जो इन तेरह क्रियास्थानों से पूरी तरह बचते हैं और धन्य हैं वे भी जो कम से कम अनर्थ दण्ड आदि से बचने के लिए सदा सावधानी रखते हैं।

अब से कुछ ही समय पूर्व लोग लोटा भर कर पानी ले जाते थे और लोटा खदान की मिट्टी से न मांज कर राख से मांजते थे। अनावश्यक पानी का व्यय नहीं करते थे। इस प्रकार वे निरर्थक पाप से बचते थे। परन्तु आज तो नगर-नगर में नल लग गए हैं और देहातों में भी पहुँच रहे हैं। लोग नल खोल कर स्नान करते हैं और उसे खुला ही छोड़ जाते हैं। उन्हें नहीं पता कि यह भी अनर्थदण्ड है।

वे दीपक जलाते तो तब तक ही जलाते थे जब तक उसकी आवश्यकता होती। विना आवश्यकता जलाना अनर्थदण्ड है।

यद्यपि यह बातें छोटी-छोटी मालूम होती हैं और कई तो यह भी सोच सकते हैं कि ऐसी मामूली बातों का क्यों जिक्र किया जा रहा है, मगर उन्हें नहीं मालूम कि छोटी-छोटी आदतें ही बड़ी आदतों को जन्म देती हैं और उन्हीं से जीवनपद्धति का

निर्माण होता है। जो छोटी खराब आदतों की उपेक्षा करते हैं वे बड़ी कुटेवों को नहीं रोक पाते। अतएव यह न समझो कि यह मामूली बातें उपेक्षणीय हैं। अपनी छोटी से छोटी आदत की जांच करो और जो त्याज्य हो उसे तत्काल त्याग दो और निरर्थक पाप को तो त्याग ही दो।

किसी नगर में एक सेठ रहता था। एक दिन उसकी पुत्रवधू के हाथ से पानी ढुल गया। सेठ ने देखा और बहू को उपालम्भ दिया। यह उपालम्भ सुन कर बहू को बुरा लगा। परन्तु कुछ दिन बाद उसी बहू के हाथ से घी ढुल गया तो सेठ ने उपालम्भ नहीं दिया।

बहू विचार में पड़ गई। उसने किसी के द्वारा सेठ से पुछवाया-एक दिन पानी ढुल जाने पर आपने उपालम्भ दिया था मगर घी ढुल जाने पर कुछ भी नहीं कहा। इसका क्या कारण है?

सेठ ने बहू को कहा-बेटी! पानी ढुलने पर मैंने तुझे उपालम्भ दिया था, क्योंकि पानी की एक-एक बूंद में असंख्यात-असंख्यात जीव होते हैं। अतएव तुझे पाप से बचाने के लिए मैंने उपालम्भ दिया था। घी निर्जीव है, उसके ढुलने का मुझे दुःख नहीं है।

जब तक ममता संसार में है, तब तक संघर्ष होता ही रहता है। पर भी ममत्व ऐसा नहीं सोचता कि ममता का अन्त न

हो। प्रतिसमय अनन्तानन्त कर्मदलिक बंधते रहते हैं। कषाय तीव्र होता है तो स्थिति और अनुभाग अधिक होते हैं और योग की चपलता अधिक होती है प्रदेश अधिक बंधते हैं। इन सब बातों को भलीभांति समझ कर ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे आत्मा को निष्कर्मदशा की प्राप्ति हो। संवर को जैसे-जैसे बढ़ाओगे, आत्मा विशुद्धि की ओर बढ़ेगा। जो भव्य जीव इन क्रियास्थानों को समझ कर बचने का प्रयत्न करेंगे, वे संसार-सागर से पार हो जाएँगे।

अमरसेन-वीरसेन चरित–

कर्मों के शुभाशुभ खेल का चित्र आपके समक्ष प्रस्तुत करने के लिए वीरसेन-अमरसेन चरित सुनाया जा रहा है। उसे ध्यानपूर्वक सुनेंगे, मनन करेंगे और अपनी आत्मा को पाप से बचाते हुए शुभ में प्रवृत्ति करेंगे तो आपका परम हित होगा।

कल बतलाया गया था कि वेश्या ने किस प्रकार अपनी स्वार्थसाधुता का नग्न चित्र प्रदर्शित किया और अमरसेन को अपने घर से बाहर निकाल दिया। विवश होकर अमरसेन को घर से बाहर निकलना पड़ा, मगर इससे उसे यह लाभ अवश्य हुआ कि संसार का असली स्वरूप उसके सामने आ गया। वह समझ गया कि इस जगत् में अमृत भरा है या हलाहल।

वेश्यागृह से बाहर पैर धरते ही अमरसेन के सामने

विकट समस्या उपस्थित हुई कि आखिर वह कहां जाय क्या करे? नीचे धरती और ऊपर आसमान के सिवाय उसका कोई सहायक नहीं था। अतएव अनायास ही वह अपने पूर्वपरिचित सरोवर के तीर की ओर खिंचा चला गया। यहां पहुंचते ही उसे वह दृश्य स्मरण आया जब अपने भाई को यहां छोड़कर उसने भोजन-सामग्री खरीदने के लिए नगर की ओर प्रस्थान किया था। हृदय उमड़ पड़ा और वह अपने भाई को याद करके सोचने लगा—हे बान्धव! तू कहां चला गया। तेरे विछोह में मेरा क्या हाल होगा? हाय, मैंने असीम मूर्खता की जो उस स्वार्थ की पुतली पर मुग्ध हो गया और तुझे भूल कर उसके जाल में फँस गया। उसने मेरे ऊपर ऐसा जादू कर दिया कि तेरी सुध भूल कर मैं उसके साथ चला गया और तनिक भी आगा-पीछा न सोच सका। मेरे जैसे रागान्ध की यही हालत होनी स्वाभाविक थी। मुझे अपने पाप का यही प्रतिफल भोगना चाहिए था।

फिर सोचा—'बहुत दिन हो गए हैं। भैया, न मालूम तुम कहां चले गए हो? जब देर तक मैं नहीं लौटा तब तुमने क्या सोचा होगा? क्या किया होगा? तुम्हारे ऊपर क्या बीती होगी? हा हन्त, अब मैं कहां जाऊं और तुम्हें कैसे पाऊं?

इस प्रकार अमरसेन पश्चात्ताप की आग में जलने लगा। उसका दिल क्षोभ, खेद, संताप और दुःख से भर गया। विचारों में बहते-बहते सारी रात बीत गई।

मगर बाहरी तौर पर अमरसेन अकिंचन था, उसके पास कुछ भी नहीं था, किन्तु पूर्वोपार्जित पुण्य की महानिधि उसके पास थी। जो जीव पुण्य संचित करके आया है, उस पर कभी दुःख आ पड़ता है तो भी वह अधिक देर तक नहीं ठहरता। अब देखना है कि अमरसेन का पुण्य किस प्रकार सहायक बनता है?

अमरसेन को आधी रात बीत जाने पर भी निद्रा नहीं आ रही थी। वह विचारों के तूफान में उड़ रहा था कि अचानक वहां चार चोर आ पहुंचे। वे चोरी करने निकले थे और किसी का माल चुरा कर लौटे थे। तालाब के किनारे पहुंच कर उन्होंने आपस में बातचीत शुरु की। एक ने कहा—अब देरी मत करो। शीघ्र से शीघ्र इस माल का बँटवारा कर लो और अपने-अपने घर का रास्ता पकड़ो। सुबह होने से पहले ही ठिकाने पहुंचना होगा।

चोरी का माल सामने रक्खा गया। चोर चार थे और चीजें तीन थीं। उनमें एक चीज थी जरजरकंता गूदड़ी। उस गूदड़ी में एक महान् गुण था। उसे झड़काने पर सौ सौनेए झरते थे। दूसरी चीज थी एक लकड़ी और तीसरी चीज थी पैरों में पहनने की खड़ाऊँ। अगर चीजें चार होतीं तो कदाचित् बँटवारे में कठिनाई न होती। वे एक-एक चीज बांट लेते, मगर तीन होने के कारण बँटवारा में कठिनाई आ पड़ी। जब बँटवारा न हो सका

तो इनमें आपस में झगड़ा होने लगा। बीच बचाव की कोशिश की गई पर कोई मार्ग नहीं निकला। एक ने कहा—मैं यह लूँगा, दूसरे ने कहा—तो मैं यह लूँगा और तीसरा बोला—शक्कर, बची-खुची चीज मैं ले लूँगा। तब चौथे ने कहा—और मैं खाली हाथ ही घर लौट जाऊँगा? मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ। मैं हर्गिज नहीं मानूँगा और अपने पसन्द की चीज लूँगा।

भाइयो! जब पदार्थ कम होता है और लेने वाले अधिक होते हैं तब समस्या उलझ जाती है। भारतसरकार को कंट्रोल का तरीका क्यों अपनाना पड़ा? काले बाजार की घोर अनैतिकता का जन्म क्यों हुआ? चीजों की कमी ही इसका प्रधान कारण था।

तो दावेदार चार और चीजें तीन होने से उनमें कोई समझौता न हो सका। उनमें कम खाने वाला कोई था नहीं। हो भी नहीं सकता था। चोरी करने वालों के जीवन का स्तर ऊँचा नहीं होता। अतएव उनका विवाद हल न हो सका। आपस में तू-तू मैं-मैं होने लगी।

रामसेन तो जाग ही रहा था। उसके कानों में चोरों की आवाज पड़ी तो वह अपने स्थान से उठकर उनके पास पहुँचा। चोर पहले तो रामसेन को सामने देख भयभीत हुए और भागने को उद्यत हुए परन्तु उसे अकेला और निहत्था देखकर ठहर गए। जब वह पास पहुँचा तो उस ने पूछा—क्या बात है? रामसेन के

पास चोरों के लेने योग्य कोई वस्तु तो थी नहीं, अतएव उसे भय भी नहीं था। भय होता है परिग्रह के कारण। जिसके पास जितना ज्यादा परिग्रह, उसे उतना ही ज्यादा भय सताता रहता है।

अमरसेन ने निर्भीक भाव से कहा—बहुत देर से आपका वाद-विवाद सुन रहा था। सोचा—अगर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूं तो करूँ। आपका झगड़ा शान्त कर सकूं तो मेरा यहां बैठना और जागना सफल हो जाए। इसी विचार से आपके पास चला आया।

झगड़ने वालों में अगर थोड़ी बुद्धिमता होती है तो बीच-बचाव से झगड़ा मिट जाता है, अन्यथा वह बढ़ता-बढ़ता झगड़ा करने वालों को ले बैठता है।

भाइयो! एक सेठ था और जवाहरात का धंधा करता था। उसके तीन लड़के थे। अपनी वृद्धावस्था देख कर और लड़कों में आपस में आगे चल कर कोई अवांछनीय विवाद न खड़ा हो जाय, यह सोच कर उसने अपनी सम्पत्ति तीनों में बराबर-बराबर बांट दी। उसने अपनी डिबिया में सिर्फ तेवीस मोती रख दिए। उसने सोचा—कदाचित लड़के आज्ञाकारी न रहे तो इन मोतियों से मैं अपना निर्वाह कर लूँगा। उसने अपने लड़कों से कह दिया—मेरे पास जो कुछ भी बचा रहे मृत्यु के बाद उसे भी मेरे खे अनुसार बांट कर ले लेना।

जीवन की अन्तिम परिणति मृत्यु है। जो जन्मा है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है। सच तो यह है कि जीव मात्र के मस्तक पर मौत चील की तरह मँडराती रहती है और जब अवसर देखती है, झपट्टा मार देती है। इस प्रकार जौहरी सेठ पर भी एक दिन मृत्यु ने आक्रमण किया और उसके प्राण हरण करके ले गई।

तीनों लड़कों ने लौकिक रीति के अनुसार सब मृतकृत्य किए और यथासमय शोक की निवृत्ति की। तत्पश्चात् एक दिन तीनों भाई एक साथ बैठे। उन्होंने निर्णय किया-पिताजी जो कुछ छोड़ गए हैं उसे निकाल कर देख लेना चाहिए।

पेटी खोल कर देखा तो एक डिबिया में तेतीस मोती निकले। उसके साथ एक चिट भी था जिसमें लिखा था-एक को आधा हिस्सा, दूसरे को चौथा और तीसरे को छठा हिस्सा देना।

मोती तेतीस थे। लिखावट स्पष्ट नहीं थी। किस प्रकार उनका विभाग किया जाय, यह उनकी समझ में नहीं आया। ऐसी स्थिति में मतभेद होना स्वाभाविक हो था। कौन कम हिस्सा लेने को तैयार होता? सभी लिखावट के अनुसार हिस्सा लेने का दावा करने लगे। आपस में झगड़ने लगे। वह मोतियों [illegible] [illegible] का मामला [illegible] बँटवारा नहीं हो सका और [illegible]।

पास चोरों के लेने योग्य कोई वस्तु तो थी नहीं, अतएव उसे भय भी नहीं था। भय होता है परिग्रह के कारण। जिसके पास जितना ज्यादा परिग्रह, उसे उतना ही ज्यादा भय सताता रहता है।

अमरसेन ने निर्भीक भाव से कहा—बहुत देर से आपका वाद-विवाद सुन रहा था। सोचा—अगर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूं तो करूँ। आपका झगड़ा शान्त कर सकूं तो मेरा यहां बैठना और जागना सफल हो जाए। इसी विचार से आपके पास चला आया।

झगड़ने वालों में अगर थोड़ी बुद्धिमता होती है तो बीच-बचाव से झगड़ा मिट जाता है, अन्यथा वह बढ़ता-बढ़ता झगड़ा करने वालों को ले बैठता है।

भाइयो ! एक सेठ था और जवाहरात का धंधा करता था। उसके तीन लड़के थे। अपनी वृद्धावस्था देख कर और लड़कों में आपस में आगे चल कर कोई अवांछनीय विवाद न खड़ा हो जाय, यह सोच कर उसने अपनी सम्पत्ति तीनों में बराबर-बराबर बांट दी। उसने अपनी डिबिया में सिर्फ तेईस मोती रख दिए। उसने सोचा—कदाचित् लड़के आज्ञाकारी न रहे तो इन मोतियों से मैं अपना निर्वाह कर लूँगा। उसने अपने लड़कों से कह दिया—मेरे पास जो कुछ भी बचा रहे मृत्यु के बाद उसे भी मेरे लिखे अनुसार बांट कर ले लेना।

जीवन की अन्तिम परिणति मृत्यु है। जो जन्मा है. उसकी मृत्यु अनिवार्य है। सच तो यह है कि जीव मात्र के मस्तक पर मौत चील की तरह मँडराती रहती है और जब अवसर देखती है, झपट्टा मार देती है। इस प्रकार जौहरी सेठ पर भी एक दिन मृत्यु ने आक्रमण किया और उसके प्राण हरण करके ले गई।

तीनों लड़कों ने लौकिक रीति के अनुसार सब मृतककृत्य किए और यथासमय शोक की निवृत्ति की। तत्पश्चात् एक दिन तीनों भाई एक साथ बैठे। उन्होंने निर्णय किया-पिताजी जो कुछ छोड़ गए हैं उसे निकाल कर देख लेना चाहिए।

पेटी खोल कर देखा तो एक डिबिया में तेतीस मोती निकले। उसके साथ एक चिट भी था जिसमें लिखा था-एक को आधा हिस्सा, दूसरे को चौथा और तीसरे को छठा हिस्सा देना।

मोती तेतीस थे। लिखावट स्पष्ट नहीं थी। किस प्रकार उनका विभाग किया जाय, यह उनकी समझ में नहीं आया। ऐसी स्थिति में मतभेद होना स्वाभाविक ही था। कौन कम हिस्सा लेने को तैयार होता? सभी लिखावट के अनुसार हिस्सा लेने का दावा करने लगे। आपस में झगड़ने लगे। वह सोचने लगे-बुड्ढा मर गया मगर झगड़ा पीछे छोड़ गया। बँटवारा नहीं हो सका और न्यायालय तक पहुंचने की नौबत आ गई।

मृतक जौहरी का एक मित्र था, वह भी जौहरी था तथा बुद्धिमान् और अनुभवी था। तीनों भाइयों के झगड़े की बात उसके कानों तक पहुँची तो उसे बहुत खेद हुआ। उसने भी यही सोचा–मृत जौहरी क्यों ऐसी उलझन छोड़ गये कि लड़कों को आपस में झगड़ने का अवसर आया और न्यायालय तक जाने की नौबत आ पहुंची ! खैर जो हुआ सो हुआ। मुझे बीच में पड़कर झगड़ा मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। मेरे स्वर्गीय मित्र की आत्मा को इससे सन्तोष ही होगा और एक प्रतिष्ठित परिवार के गौरव को क्षति नहीं पहुँचेगी।

इस प्रकार सोच कर वह अपने घर से तीन मोती लेकर अपने मित्र के घर पहुँचा। तीनों लड़कों को बुलाकर उसने कहा–बच्चो ! तुम सहोदर भाई हो। थोड़ी-सी सम्पत्ति के लिए आपस में झगड़ना तुम्हारे जैसे कुलीनों को शोभा नहीं देता। किसी के पास कम या ज्यादा रह जाय तो क्या हानि है ? आखिर तो भाई के पास ही रहेगा। जो मनुष्य अपने सगे भाई के प्रति भी उदारता का व्यवहार नहीं कर सकता, वह दूसरों के प्रति क्या उदारता दिखलाएगा ? ऐसी स्थिति में उसकी मानवता का मूल्य ही क्या है ! मुझे यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि तुम लोगों में तुच्छ-सी बात के लिए मत-भेद उत्पन्न हुआ और तुम अदालत के द्वार खटखटाने की सोच रहे हो।

अन्त में जौहरी ने कहा—खैर, जो हुआ सो हुआ। मैं

तुम्हारा फैसला यहीं कर देता हूं। मैं आशा करता हूँ कि इसके बाद तुममें आपस में गहरा प्रीतिभाव रहेगा।

इस प्रकार कह कर जौहरी ने तेतीस मोती मँगवाए और उनमें अपने पास के मोती मिला दिए। मोती छत्तीस हो गए। इसके बाद उसने बड़े लड़के को आधे—अठारह-दे दिए। वह सन्तुष्ट हो गया। फिर दूसरे लड़के को चौथाई अर्थात् नौ दे दिए। वह भी सन्तुष्ट हो गया। तीसरे को छठा हिस्सा देना था सो उसे छह मोती दे दिए गए। तीन मोती जौहरी ने अपनी ओर से मिलाए थे, वे उसके पास बच रहे। इस प्रकार वह बुद्धिमान् जौहरी लिखावट के अनुसार बँटवारा करके और उनका झगड़ा निबटा कर अपने घर आ गया।

कहने का आशय यह है कि परस्पर स्वार्थों की टक्कर होने से संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। ऐसे समय पर बुद्धिमानों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे हस्तक्षेप करें और प्रयत्न करके संघर्ष को शान्त करें।

चार चोरों में भी तीन वस्तुओं के लिए विवाद हो रहा था। अचानक अमरसेन उनके बीच में जा पहुंचता है। वह किस प्रकार उनके विवाद का निर्णय करता है और आगे क्या होता है, यह आगे सुनने से ज्ञात होगा।

आइयो ! सांसारिक पदार्थों के लिए मानव-मानव के बीच संघर्ष होना उचित नहीं है। इन पदार्थों का क्या महत्व है जो आज मिलते और कल बिछुड़ जाते हैं। इनके लिए आपस में मत झगड़ो, चित्त में क्लेश उत्पन्न न होने दो और अपनी आत्मा को कलुषित मत करो।

केन्टोनमेंट बैंगलोर
२८-६-५६

श्रुतसागर



प्रार्थना–

सिद्धाणं बुद्धाणं० ।



समवायांगसूत्र–

भाइयो ! भगवान् तीर्थङ्करों के मुखारविन्द से प्रसूत परम प्रशममयी वाणी को उनके निकटवर्त्ती गणधर महाराजों ने हृदयंगम किया और उसे माला के रूप में गूंथ दिया। वही परम पवित्र वाणी आज हमारे लिए महान् कल्याणकारी है। उसे श्रवण करके संसार के पामर प्राणी अपनी आत्मा को संसार रूपी कीचड़ से निकाल कर अक्षय आनन्द के स्थान में पहुँचाते हैं।

उस द्वादशांगी वाणी में से चौथे समवायांग सूत्र को मैं आपके समक्ष रख रहा हूँ। इसमें विविध विषयों पर संख्यानुक्रम से प्रकाश डाला गया है। कल तेरह क्रियास्थानों का विवेचन

किया जा चुका है। आगे शास्त्रकार फर्माते हैं–प्रथम और द्वितीय देवलोक में तेरह विमान-प्रतर (पाथड़े) हैं, जिनमें देवगण निवास करते हैं।

प्रथम देवलोक अर्थात् सौधर्म नामक स्वर्ग मेरु पर्वत से दक्षिण में पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा अर्धचन्द्राकार रूप में अवस्थित है। उसके तेरहवें प्रतर में सौधर्मावतंसक नामक विमान है, जो साढ़े बारह लाख योजन का लम्बा-चौड़ा है।

आगे बतलाया गया है कि जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की साढ़े बारह लाख कुलकोटि है। अर्थात् उनके कुल साढे बारह लाख करोड़ हैं।

चौदह पूर्वों में एक प्राणप्रवाद नामक पूर्व है। उसमें तेरह वस्तु अर्थात् बड़े-बड़े प्रकरण हैं।

गर्भ से उत्पन्न होने वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में तेरह प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं। यथा–(१) सत्य मन प्रयोग (२) असत्य मन प्रयोग (३) मिश्र मन प्रयोग (४) व्यवहारमनप्रयोग (५) सत्य वचन प्रयोग (६) असत्यवचनप्रयोग (७) मिश्रवचनप्रयोग (८) व्यवहार वचन प्रयोग (९) औदारिक काय प्रयोग (१०) औदारिक-मिश्रकाय प्रयोग (११) वैक्रिय कायप्रयोग (१२) वैक्रिय मिश्रकाय-प्रयोग (१३) कार्मण कायप्रयोग।

भाइयो ! पच्चीस बोल के थोकड़े आदि में पन्द्रह प्रकार के

योगों का उल्लेख आता है। उनमें से यहां आहारक और आहारकमिश्र, इन दो को छोड़ दिया गया है, क्योंकि यह दोनों योग तिर्यंचों में नहीं पाये जाते। आहारक शरीर मनुष्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी गति में नहीं प्राप्त किया जा सकता।

इसके पश्चात् बतलाया गया है कि सूर्य का मांडला एक योजन के ६१ वें भाग में से तेरह भाग कम है। अर्थात् एक योजन के इकसठिये ४८ भाग चौड़ा और २४ भाग का जाड़ा कहा गया है।

रत्नप्रभा नामक नरकभूमि में कई नारक ऐसे हैं जिनकी स्थिति तेरह पल्योपम की है। पांचवीं धूमप्रभा नामक नरकभूमि में किसी-किसी नारक की आयु तेरह सागरोपम की है।

असुरकुमार जाति के जो देव हैं, उनमें से किसी-किसी की आयु तेरह पल्योपम की है। पहले और दूसरे देवलोक के देवों में से भी किसी-किसी की तेरह पल्योपम की आयु है। छठे लान्तक देवलोक में किसी-किसी देव की स्थिति तेरह सागरोपम की कही गई है। छठे देवलोक के वज्र, सुवज्र वज्रावर्त्त, वज्रप्रभ वज्रकान्त, वज्रवर्ण, वज्रलेश्य, वज्ररूप, वज्रशृङ्ग, वज्रसिद्ध, वज्रकूट, वज्रोत्तरावतंसक, वइर, सुवइर, वइरावर्त्त, वइरप्रभ, वइरकान्त, वइरवर्ण, वइरलेश्य, वइररूप, वइरशृङ्ग, वइरसिद्ध, वइरकूट, वइरुत्तरावतंसक, लोक, सुलोक, लोकावर्त्त, लोकप्रभ, लोक-

कान्त, लोकवर्ण, लोकलेश्य, लोकरूप, लोकशृङ्ग, लोकसिद्ध, लोककूट, लोकावतंसक नामक छत्तीस विमानों में उत्पन्न होने वाले देवों की तेरह सागरोपम की स्थिति कही गई है। वे देवता तेरह पक्ष में श्वासोच्छ्‌वास लेते हैं। उन्हें तेरह हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

संसार में कोई-कोई भव्य जीव ऐसे भी हैं जो तेरह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे और समस्त कर्मों को क्षय करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।

यहां तेरहवां समवाय समाप्त होता है और चौदहवां प्रारंभ होता है, इसके प्रारंभ में शास्त्रकार ने चौदह भूत ग्रामों का उल्लेख किया है। भूत का अर्थ है प्राणी और ग्राम का अर्थ है समूह। तात्पर्य यह है कि संसार के समस्त प्राणी इन चौदह समूहों में समाविष्ट हो जाते हैं। वे समूह (ग्राम) इस प्रकार हैं-(१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त (२) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त (३) बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त (४) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त (५) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त (६) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (७) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त (८) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (९) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त (१०) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (११) असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त (१२) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त (१३) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और (१४) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त।

इन भूतग्रामों को समझने के लिए थोड़े स्पष्टीकरण की

आवश्यकता है। सर्वप्रथम सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त शब्दों का आशय समझ लेना चाहिए।

पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय यह पांच प्रकार के स्थावर जीव एकेन्द्रिय हैं। यह भी दो-दो प्रकार के होते हैं—सूक्ष्म और बादर। सूक्ष्म जीव वे हैं जो सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं तथापि छद्मस्थ जीवों की दृष्टि में नहीं आते। उन्हें लोकोत्तर ज्ञान के धनी ही देख सकते हैं। वे जीव इतने सूक्ष्म हैं कि मारने से मरते नहीं, काटने से कटते नहीं, छेदने से छिदते नहीं हैं।

इन सूक्ष्म जीवों में भी दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। पर्याप्त जीव वह है जो अपने योग्य पर्याप्तियां पूर्ण कर चुके हैं और अपर्याप्त वह हैं जो अभी तक पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर पाये हैं।

बात यह है कि जीव जब किसी पर्याय को त्याग कर अर्थात् मर कर नया जन्म लेता है और अपने नियत उत्पत्ति-स्थान में पहुँचता है तब उसके साथ केवल तैजस और कार्मण शरीर ही होते हैं, औदारिक या वैक्रियक जैसा कोई स्थूल शरीर नहीं होता। जीव को उत्पत्ति स्थान में पहुंचा कर स्थूल शरीर का निर्माण करना पड़ता है। सर्वप्रथम वह शरीर के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है और पुद्गलों से शरीर का निर्माण करता है।

इसी प्रकार इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन के योग्य पुद्गलों को भी वह ग्रहण करता है उनसे इन्द्रिय आदि का निर्माण होता है।

तो आहार, शरीर आदि के पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें आहार शरीर आदि के रूप में परिणत करने की शक्ति की पूर्णता पर्याप्ति कहलाती है, यह शक्ति की पूर्णता जिन जीवों को प्राप्त हो चुकी है वे पर्याप्त कहलाते हैं और जिन्हें जब तक प्राप्त नहीं हुई वे अपर्याप्त।

जीव अपने उत्पत्तिस्थान में पहुंचते ही पर्याप्तियों का कार्य आरंभ कर देता है। वह अन्तर्मुहूर्त्त में ही उस शक्ति को प्राप्त करके पर्याप्त कहलाने लगता है। किसी जीव को कितनी ही पर्याप्तियां पूर्ण करनी हों, उसे अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक काल नहीं लगता।

पर्याप्तियां कुल छह हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव में यह छहों होती हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों में पांच पर्याप्तियां पाई जाती हैं और एकेन्द्रिय जीवों में चार होती हैं।

सब पर्याप्तियों का प्रारम्भ एक साथ होता है परन्तु उनकी पूर्णता क्रम से होती है।

यह जो चौदह भूतग्राम बतलाए गए हैं वे सामान्य के

अपेक्षा से ही हैं। इनके भी भेद-प्रभेद असंख्य हैं। जैसे कोई पंचेन्द्रिय जीव गर्भज होते हैं और कोई सम्मूर्छिम होते हैं। नर और मादा के संयोग से उत्पन्न होने वाले गर्भज कहलाते हैं और उनके संयोग के बिना ही पृथ्वी पानी आदि का संयोग मिलने पर उत्पन्न हो जाने वाले सम्मूर्छिम कहलाते हैं। ये जीव प्रायः स्त्री-पुरुषों के शरीर से निकलने वाले कफ, मल, मूत्र आदि में उत्पन्न होते हैं।

जिन जीवों में आगे-पीछे की बात सोचने-विचारने की शक्ति होती है वे संज्ञी और जिनमें नहीं होती वे असंज्ञी कहलाते हैं। यह दो भेद पंचेन्द्रिय जीवों में ही पाये जाते हैं; क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर चौइन्द्रिय तक के जीव सब असंज्ञी ही होते हैं। मगर पर्याप्त और अपर्याप्त का भेद तो सभी में अर्थात् एकेन्द्रिय से लगा कर पंचेन्द्रिय तक में एक-सा ही है।

इस प्रकार जगत् के जीवों के स्वरूप को समझने का मुख्य उद्देश्य यह है कि जिन-जिन जीवों को जैसा-जैसा शरीर मिला है, वे सभी अपने-अपने शरीर में जीवित रहने की इच्छा करते हैं, अतएव मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य है कि वह इन जीवों की हिंसा से बचे, उनके प्राणों का विनाश न करे और जहां तक संभव हो उनकी रक्षा करे। किसी भी जीव को हानि न पहुँचावे। अपनी भावना को अहिंसामय बनावे। प्राणीमात्र को आत्मवत् समझे और ऐसा ही समझ कर व्यवहार करे।

आगे बतलाया गया है कि पूर्वगत श्रुत चौदह भागों में विभक्त है। आपको विदित ही है कि तीर्थङ्कर भगवान् की वाणी बारह अंगों में ग्रथित की गई थी। उनमें से बारहवां अंग दृष्टिवाद है। यह अंग अत्यन्त विशाल था और समस्त जैन वाङ्मय का उसमें सार भरा था। संभवतः अपनी विशालता के कारण ही वह स्थविरों को स्मरण में न रह सका और दुर्भिक्ष आदि के कारण वह पूरा का पूरा लुप्त हो गया। अब भी उसका परिचय जैनशास्त्रों में सुरक्षित है। उससे प्रतीत होता है कि दृष्टिवाद मूलतः पांच भागों में विभक्त था। उन पांच भागों में से एक भाग के रूप में चौदह पूर्व थे। उन चौदह पूर्वों के नाम और उनमें प्रतिपादित विषयों का संक्षिप्त दिग्दर्शन यहां कराया जाता है:-

१- उत्पादपूर्व-इसमें द्रव्यों और पर्यायों की उत्पाद की अपेक्षा से प्ररूपणा की गई थी। इस अकेले पूर्व में एक करोड़ पद थे।

२- अग्रायणीयपूर्व-इसमें द्रव्यों, पर्यायों एवं जीव आदि के परिमाण का प्रतिपादन था। इसमें छयानवे लाख पद थे।

३- वीर्यप्रवादपूर्व-इसमें अजीव और जीव की शक्ति (वीर्य) का वर्णन था।

भाइयो! जीवों में अपरिमित वीर्यशक्ति विद्यमान है। मगर कर्मोदय के वशवर्त्ती होकर कोई जीव अप्रशस्त पराक्रम

करते हैं, कोई प्रशस्त। उसी के परिणामस्वरूप उन्हें सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। अशुभ पराक्रम नरक-निगोद आदि दुर्गतियों में पहुंचाकर दुःख का भागी बनाता है, जब कि शुभ पराक्रम करके जीव स्वर्ग और मोक्ष का अधिकारी बनता है। वीर्यप्रवाद में बतलाया गया था कि जीव किस प्रकार एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय आदि अवस्थाएँ प्राप्त करता है। इसके ७० लाख पद थे।

४– अस्तिनास्तिप्रवाद-इसका विषय नाम से ही प्रकट है। संसार में जो भी सत और असत् पदार्थ विद्यमान हैं और किस अपेक्षा से पदार्थ को सत् या असत् कहा जाता है, इस विषय का निरूपण किया गया था। इसका पदपरिमाण ६० लाख था।

५– ज्ञानप्रवादपूर्व-इसमें मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवल पांच ज्ञानों का विशद विवेचन था। इसमें एक कम एक करोड़ पद थे।

६– सत्यप्रवादपूर्व-इसमें सत्य अर्थात् संयम का अथवा सत्य वचन का विस्तार से वर्णन किया गया था। इसमें एक करोड़ और छः पद थे।

७– आत्मप्रवादपूर्व-इसमें विभिन्न नयों एवं नयों की अपेक्षा से आत्मा का निरूपण था। इसके पदों की संख्या छब्बीस करोड़ थी।

८- कर्मप्रवादपूर्व इसमें आठ कर्मों का विस्तृत वर्णन था। एक करोड़ अस्सी लाख पद थे।

९- प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व-इसमें प्रत्याख्यानों का भेद-प्रभेद पूर्वक वर्णन था चौरासी लाख पद थे।

भाइयों! वर्त्तमान में जिन नवकारसी, पोरसी आदि-आदि प्रत्याख्यानों का प्रचलन है, वह इसी पूर्व के आधार पर परम्परा से चले आ रहे हैं। जैसे सूर्योदय से अड़तालीस मिनिट समाप्त हो जाने पर नवकारसी आने का समय माना जाता है। जिस समय जितने घण्टों का दिन हो उसका चौथाई भाग पोरसी का काल है। आधे दिन को दो पोरसी कहते हैं। दिन में एक ही आसन से भोजन करना एकासन कहलाता है। रूखा सूखा आहार विना नमक का पानी में डाल कर खाना आचाम्ल या आयंबिल कहलाता है। एक ही स्थान पर बैठ कर भोजन करना और पानी पी लेना, फिर खाना-पीना नहीं, यह एकलठाणा।

इसके बाद उपवास का नम्बर आता है। उपवास तिविहार और चउविहार के भेद से दो प्रकार का है। पानी का अपवाद रख कर तीन प्रकार के आहार का त्याग करना तिविहार उपवास कहलाता है और पानी का भी त्याग कर देना चउविहार उपवास है। मगर केवल आहार का ही नहीं, कषायों और इन्द्रियविषयों का भी उपवास में त्याग करना चाहिए। तभी उपवास पूरा होता

है। अभिग्रह तप वह कहलाता है जिसमें ऐसा नियम कर लिया जाय कि अमुक चीज किसी के घर मिलेगी तो खाऊँगा अन्यथा उपवास करूँगा। एक तपस्या चरमप्रत्याख्यान भी है। इसमें सूर्यास्त से पूर्व ही ऐसा नियम कर लिया जाता है कि अब से सूर्योदय तक आहार-पानी का प्रत्याख्यान है।

इनके अतिरिक्त अपनी शक्ति के अनुसार और भी अनेक प्रकार से छोटे-मोटे प्रत्याख्यान किये जा सकते हैं। कोई एक घण्टे के लिए आहार का, पानी का अथवा दोनों का त्याग कर सकता है, इसी दृष्टि से कई लोग अंगूठी का प्रत्याख्यान करते हैं, यथा–जब तक उंगली में अंगूठी रहेगी तब तक तीन या चारों प्रकार के आहार का त्याग है। अंगूठा निकाल लूँगा तो खुला हो जाऊँगा।

कई लोग अढ़ाई सौ प्रत्याख्यान करते हैं, अर्थात् दस दस प्रकार के प्रत्याख्यानों को पच्चीस-पच्चीस करने से अढ़ाई सौ प्रत्याख्यान होते हैं।

साधक सब समान शक्तिमान् नहीं होते, शक्तिमान् होने पर भी कभी उपयोगशून्यता आदि किसी विशेष कारण से प्रत्याख्यानभंग हो जाने की सम्भावना हो सकती है। अतएव प्रत्याख्यानभंग के दोष से बचने के लिए पहले ही कुछ छूट रखी जाती है, जिसे आगार कहते हैं। पूर्वोक्त सभी प्रत्या-

ख्यानों में कुछ आगार होते हैं, जिनका यहां उल्लेख कर देना प्रासंगिक होगा।

नवकारसी में दो आगार होते हैं-अनाभोग अर्थात् ध्यान न रहना-विस्मृति हो जाना, उपयोगशून्यता होना, और सहसाकार-अकस्मात्-जैसे मुँह खोला और वर्षा के पानी के बूंद मुँह में चले गए या दूध-दही का छींटा उचट कर मुँह में चला जाय, इन दो आगारों के कारण कदाचित् ऐसा प्रसंग आ जाय तो भी प्रत्याख्यान भग्न नहीं होता।

पौरसी के छह आगार हैं-(१) अनाभोग (२) सहसाकार (३) दिशामोह-दिशा सम्बन्धी भ्रम (४) प्रच्छन्नकाल-सूर्यादि के न दीखने से भ्रम हो जाना (५) साधुवचन-किसी साधु पुरुष के कहने से कि पौरसी आ गई (६) सर्वसमाधिवर्त्तिक-शरीर में समाधि रहते, कदाचित् रोग उत्पन्न हो जाय तो छूट।

दो पौरसी में पूर्वोक्त छह आगारों के अतिरिक्त सातवां महत्तरागार भी होता है, जिसका अभिप्राय यह है कि बड़ों-पूज्य जनों के आग्रह से प्रत्याख्यान भंग करना पड़े तो छूट।

इसी प्रकार अन्यान्य प्रत्याख्यानों के भी आगार होते हैं जिनमें कुछ यही और कुछ इनसे भिन्न हैं। इन प्रत्याख्यानों को अंगीकार करने के पाठ से ही इनके आगारों का पता लग जाएगा, अतएव वह पाठ यहां दे देना ही उचित है।

(नवकारसी करने का पाठ)

उग्गए सूरे नमुक्कार सहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अणत्थणा भोगेणं, सहसारेणं वोसिरामि ।

(पोरिसी करने का पाठ)

पोरिसि पच्चक्खामि उग्गए सूरे चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अणत्थणाभोगेणं सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं साहुवयणेणं सव्वसमाहियत्तियागारेणं वोसिरामि ।

(पुरिमड्ढ करने का पाठ)

उग्गए सूरे पुरिमड्ढं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं साहुवयणेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

(एकासन का पाठ)

एगासणं पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं सागारिया-

गारेणं आउंटणपसारणेणं गुरुअब्भुट्ठाणेणं पारिट्ठावणिया-गारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

इस पाठ में चार आगार नवीन हैं, जिनका अर्थ है—

सागारियागार—जिन चीजों के दिखाई देने पर शास्त्र में आहार करने की मनाई है, उनके उपस्थित होने पर स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना पड़े तो छूट।

आउंटणपसारण—सुन्न हो जाने से या किसी विशेष कारण से हाथ-पैर आदि को सिकोड़ना—फैलाना पड़े तो छूट।

गुरुअब्भुट्ठाण—अतिथि, मुनि या गुरुजन के आने पर सन्मान के लिए उठना पड़े।

परिट्ठावणियागार—अधिक हो जाने पर जिस आहार को परठना पड़ता हो उसे परठने के दोष से बचने के लिए गुरु की आज्ञा से ग्रहण कर लेना।

यह आगार सिर्फ साधु के लिए है, अतएव श्रावक को नहीं बोलना चाहिए।

(एकलठाणा का पाठ)

एक्कासणं एगट्ठाणं पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं

गुरुअब्भुट्ठाणेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

यहां भी परिट्ठावणियागारे साधुओं के लिए ही है। श्रावक को नहीं बोलना चाहिए। आगारों का अर्थ बतलाया जा चुका है।

(आयंबिल का पाठ)

आयंबिलं पच्चक्खामि अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं लेवालेवेणं गिहत्थसंसट्ठेणं उक्खित्त विवेगेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

इसमें जिन आगारों का अर्थ पहले नहीं आया है, उनका अर्थ इस प्रकार है—

लेवालेव—लेप वाले बर्तन आदि से दिया हुआ आहार ग्रहण करना ।

गिहत्थसंसट्ठ—घी तेल आदि से लिपटे हाथों से आहार-पानी देना तथा जिससे आहार के कणों वाले आहार का लेना।

उक्खित्तविवेग—ऊपर रखे हुए सूखे गुड़ आदि को उठा लेने पर उसका [illegible] जिसके [illegible] रह गया हो ऐसा आहार लेना।

गारेणं आउंटणपसारणेणं गुरुअब्भुट्ठाणेणं पारिट्ठावणिया-
गारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

इस पाठ में चार आगार नवीन हैं, जिनका अर्थ है—

सागारियागार—जिन चीजों के दिखाई देने पर शास्त्र में आहार करने की मनाई है, उनके उपस्थित होने पर स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना पड़े तो छूट।

आउंटणपसारण—सुन्न हो जाने से या किसी विशेष कारण से हाथ-पैर आदि को सिकोड़ना—फैलाना पड़े तो छूट।

गुरुअब्भुट्ठाण—अतिथि, मुनि या गुरुजन के आने पर सन्मान के लिए उठना पड़े।

परिट्ठावणियागार—अधिक हो जाने पर जिस आहार को परठना पड़ता हो उसे परठने के दोष से बचने के लिए गुरु की आज्ञा से ग्रहण कर लेना।

यह आगार सिर्फ साधु के लिए है, अतएव श्रावक को नहीं बोलना चाहिए।

(एकलठाणा का पाठ)

एक्कासणं एगट्ठाणं पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं

गुरुअब्भुट्ठाणेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

यहां भी परिट्ठावणियागारे साधुओं के लिए ही है । श्रावक को नहीं बोलना चाहिए । आगारों का अर्थ बतलाया जा चुका है।

(आयंबिल का पाठ)

आयंबिलं पच्चक्खामि अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं लेवालेवेणं गहत्थसंसट्ठेणं उक्खित्त विवेगेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

इसमें जिन आगारों का अर्थ पहले नहीं आया है, उनका अर्थ इस प्रकार है-

लेवालेव—लेप वाले वर्तन आदि से दिया हुआ आहार ग्रहण करना ।

गिहत्थसंसट्ठ—घी तेल आदि से चिकने हाथों से आहार-पानी लेना तथा चिकने आहार के संसर्ग वाले आहार को लेना ।

उक्खित्तविवेग—ऊपर रक्खे हुए गुड़ शक्कर आदि को उठाने पर उनका कुछ अंश जिसमें लगा रह गया हो ऐसा आहार लेना ।

(चौविहार उपवास का पाठ)

उग्गए सूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं, खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तिया- गारेणं वोसिरामि ।

(दिवस चरिम का पाठ)

दिवस चरिमं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं सव्व- समाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

दिवस चरिम को रात्रि का चोविहार भी कहते हैं । एक [च]रिम भवचरिम भी होता है, जिसमें जीवन भर के लिए [च]तुर्विध आहार का त्याग किया जाता है । उसमें अन्नत्थणाभोगेणं [औ]र सहसागारेणं यही दो आगार होते हैं ।

अगर कोई रात्रि में तिविहार करना चाहता हो तो उसे [च]उव्विहं' की जगह 'तिविहं' कहना चाहिए और 'पाणं' शब्द [क]ो छोड़ देना चाहिए ।

(अभिग्रह का पाठ)

अभिग्गहं पच्चक्खामि अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं

महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

(निव्विगइय करने का पाठ)

निव्विगइयं पच्चक्खामि अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं लेवालेवेणं गिहत्थसंसट्ठेणं उक्खित्त विवेगेणं पडुच्चमक्खिएणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

इसमें एक नया आगार, जिसका अर्थ पहले नहीं आया है, 'पडुच्चमक्खिएणं' है। इसका तात्पर्य यह है—भोजन बनाते समय जिन वस्तुओं पर उंगली से घी तेल आदि लगा हो उन्हें लेने का आगार है।

इन सब का विस्तृत अर्थ करने का अवसर नहीं है। जिज्ञासु जन अन्य स्थलों से जान कर शुद्ध रूप से प्रत्याख्यान ग्रहण करें और पालें, जिससे विशेष लाभ हो सके।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आगार प्रत्याख्यान के अपवाद हैं जो इस उद्देश्य से रख लिए जाते हैं कि विशिष्ट परिस्थिति में प्रत्याख्यान के भंग होने के दोष से बचा जा सके। उदाहरणार्थ—कई प्रत्याख्यानों में 'सव्वसमाहिवत्तियागार' आया है। इसका अर्थ यह है कि जब तक शरीर में समाधि है तब तक के लिए प्रत्याख्यान है। कदाचित् शरीर में अचानक कोई बीमारी

हो जाय और औषध लेना पड़े तो प्रतिज्ञा भंग का दोष नहीं लगेगा।

कल्पना कीजिए, किसी ने दो पौरुसी का प्रत्याख्यान किया है और सारी बिरादरी को जीमने का निमन्त्रण दिया है। बिरादरी के सब लोग जीमने के लिए एकत्र हो चुके हैं। दो पौरुसी का काल अभी आया नहीं है और सब लोग उसे साथ जीमने का अनुरोध करते हैं। कहते हैं—अगर आप हमारे साथ बैठ कर भोजन करें तो हम भोजन करते हैं अन्यथा नहीं। ऐसे दुविधा के समय उसे क्या करना चाहिए? निमन्त्रण देकर भूखा रखना उचित नहीं है। अतएव उस स्थिति में अगर वह लोगों के साथ खा लेता है तो प्रत्याख्यान भंग के दोष का भागी नहीं होता, क्योंकि उसने 'महत्तरागार' रक्खा है।

इसी प्रकार विभिन्न कारणों से अन्यान्य आगार समझ लेना चाहिए।

साधु के उत्तरगुण विषयक प्रत्याख्यान दस प्रकार के और कहे गये हैं। यथा—

अणागयमइक्कंतं, कोडीसहियं नियंटितं चेव।
सागार मणागारं, परिमाणकडं निरवसेसं॥
संकेयं चेव अद्धाए, पच्चक्खाणं दसविहं तु॥

१. अनागत—किसी आने वाले पर्व पर किये जाने वाले प्रत्याख्यान को, उस समय बाधा पड़ती देखकर पहले ही कर लेना।

२. अतिक्रान्त—किसी पर्व आदि के दिन तपस्या न कर पाई हो तो उसे बाद में करना।

३. कोटीसहित—एक प्रत्याख्यान की समाप्ति तथा दूसरे प्रत्याख्यान का प्रारम्भ एक ही दिन में हो जाना।

४. नियंत्रित—जिस दिन जिस प्रत्याख्यान को करना निश्चित किया है, बाधा पड़ने पर भी उसी दिन करना।

५. सागार—जिस प्रत्याख्यान में कोई आगार रक्खे जाएँ। आगारों के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है।

६. अनागार—जिस प्रत्याख्यान में महत्तरागार जैसे आगार न रक्खे जाएँ। अनाभोग आदि आगार तो उसमें भी रहते हैं।

७. परिमाणकृत-दत्ति, कवल, घर या खाद्य द्रव्यों का परिमाण कर लेना।

८. निरवशेष—चारों प्रकार के आहार का सर्वथा त्याग करना।

९. संकेत—अंगूठी, मुट्ठी, गांठ आदि का संकेत करके किया जाने वाला प्रत्याख्यान।

१०. अद्धा—अद्धा अर्थात् काल को आश्रित करके किया जाने वाला प्रत्याख्यान, जैसे पोरिसी आदि।

तात्पर्य यह है कि प्रत्याख्यानप्रवाद नामक पूर्व में इन तथा इसी प्रकार के अन्यान्य प्रत्याख्यानों का विशद और विस्तृत विवेचन किया गया है।

(१०) विद्यानुवादपूर्व-इसमें रोहिणी आदि विद्याओं के विषय में विवेचन था और उनके चमत्कार बतलाए गए थे। अढ़ाई करोड़ पद थे।

(११) अवंध्यप्रवादपूर्व–सम्यग्ज्ञान संयम तप आदि का लम्बा-चौड़ा वर्णन किया गया था। ४८,६४,००,००० पद थे।

(१२) प्राणप्रवादपूर्व-इसमें चार से लेकर दश प्राण तक धारण करने वाले प्राणियों का, उनके प्राणों का वर्णन था। इसके पद ६७,२८,००,००० थे।

(१३) क्रियाविशाल-इसमें साधु और श्रावक के आचार का तथा पच्चीस क्रियाओं का वर्णन था। इसका पद-परिमाण एक कोड़ाकोड़ी और एक करोड़ पद थे।

(१४) लोकविन्दुसार–सर्व लोक सम्बन्धी समस्त वस्तुओं का इसमें विवेचन था। इसमें दो कोड़ाकोड़ी पद थे।

जैसे वट का बीज छोटा सा होता है परन्तु उसमें लम्बा-चौड़ा वृक्ष खड़ा हो जाता है, इसी प्रकार लोकविन्दुसार पूर्व में गाथाओं का विस्तृत विवेचन किया गया था। यद्यपि गाथाएँ छोटी

होती हैं परन्तु विवेचनकार यदि पटुप्रज्ञ है तो उनका विवेचन लम्बा-चौड़ा हो जाता है। उदाहरणार्थ—कहा गया है कि साधु अठारह हजार शीलांग का धारक होता है। इस विषय में एक गाथा है—

जे नो करंति मणसा, निज आहार संज्ञा सोइंदिया।
पुढविज़ीवान हिंसंति, खंति जीवा ते मुणी वंदे॥

यहां एक यह गाथा दी जा रही है मगर इसी की अठारह हजार गाथाएँ हो सकती हैं, बतलाया गया है कि साधु महात्मा मन से, वचन से और काय से आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा नहीं करते। फिर पृथ्वीकाय, अपकाय तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की हिंसा नहीं करते। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की भी हिंसा नहीं करते, फिर क्षमा आदि दस धर्मों का पालन करते हैं। मगर इस गाथा में तीन करणों में से एक कारण का, तीन योगों में से केवल एक मनोयोग का, चार संज्ञाओं में से सिर्फ आहारसंज्ञा का, पांच इन्द्रियों में से सिर्फ श्रोत्रेन्द्रिय का, दस कायों में से सिर्फ पृथ्वीकाय का और दस यतिधर्मों में से केवल शान्ति का उल्लेख किया गया है।

यदि इस गाथा में आये हुए 'करंति' इस करण के स्थान पर 'कारयंति' पद रख दिया जाय और शेष गाथा ज्यों की त्यों

रहने दी जाय तो वह दूसरी गाथा बन जाएगी। अगर 'कारयंति' के स्थान पर 'अणुमनंति' या 'अनुजानन्ति' यह तीसरा करण रख दिया जाय और सारी गाथा ज्यों की त्यों रहने दी जाय तो तीसरी गाथा हो जाएगी। इस प्रकार एक-एक पद पलटते जाने से अठारह हजार गाथाएँ तैयार हो सकती हैं। इन भेदों को समझने के लिए निम्नलिखित स्पष्टीकरण सुगम हो सकता है, जिनसे गाथाओं की संख्या और शील के अङ्गों की संख्या की कल्पना आ सकती है—

करना	कराना	अनुमोदन करना		
६०००	६०००	६००		
मनसा	वयसा	कायसा		
२०००	२०००	२०००		
आहारसंज्ञा	भयसंज्ञा	मैथुनसंज्ञा	परिग्रहसंज्ञा	
५००	५००	५००	५००	
श्रोत्रेन्द्रिय	चक्षुरिन्द्रिय	घ्राणेन्द्रिय	रसेन्द्रिय	स्पर्शनेन्द्रिय
१००	१००	१००	१००	१००
पृथ्वीकाय	अप्काय	तेजस्काय	वायुकाय	वनस्पतिकाय
१०	१०	१०	१०	१०
द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	पचेन्द्रिय	अजीवकाय
१०	१०	१०	१०	१०
तवे	चियाए	बभचेरवासे।		
१०	१०	१०		

चौदहवां पूर्व सबसे बड़ा है। इसमें समग्र विश्व का ज्ञान समाविष्ट हो गया है।

भाइयो ! इस आत्मा में शक्ति रूप से अनन्त ज्ञान भरा है। जब ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम विशेष रूप से होता है और किसी विशिष्ट ज्ञानी गुरु की कृपा हो जाती है, तब ज्ञान की प्राप्ति होती है। गौतम स्वामी पर भगवान् महावीर की कृपा हुई तो उन्हें सम्पूर्ण श्रुतज्ञान की प्राप्ति हो गई। विचारों में पवित्रता आजाए अर्थात् हम यदि ज्ञानी पुरुषों की प्रशंसा करें, उनसे द्वेष न करें, ज्ञान के साधनों का अच्छे रूप में प्रयोग करें दूसरों को ज्ञानप्राप्ति में सहायता दें, शास्त्रों की प्रभावना करें और ज्ञानवानों का सन्मान करें तो ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम या क्षय कर सकते हैं। अपनी बुद्धि को निर्मल बनाने के लिए पवित्र विचारों की आवश्यकता है। भाइयो ! निरन्तर नया ज्ञान सीखो। जो सीखा है उसे दूसरों को सिखाओ। इससे आपको भी विशेष ज्ञान की प्राप्ति होगी।

अमरसेन-वीरसेन चरित–

शास्त्रीय विषयों के निरूपण के पश्चात् अब प्रस्तुत चरित को आगे बढ़ाने जा रहा हूँ।

कल बतलाया जा चुका था कि चार चोरों ने तीन चीजें चुराई और वे उनका ठीक-ठीक बँटवारा नहीं कर पाए। आपस

जब दोनों सिपाही मर गए तो गुरु और चेला झाड़ी से निकल कर आए। गुरु ने कहा-मैंने कहा था न कि यह प्राण लेने वाली चीज है। देखो, इसने दो मनुष्यों के प्राण ले लिए। इसी कारण सन्त जन सोने के त्यागी होते हैं और आनन्द में रहते हैं।

गृहस्थ के पास माया नहीं तो उसे चिन्ता रहती है और माया हो तो भी चिन्ता उत्पन्न करती रहती है। दुनिया में अधिकांश झगड़े माया को लेकर होते हैं। माया मैत्री की विनाशक है, अनेक अनर्थों की जड़ है। दुःखजनक है। कष्टकारक है।

तो अमरसेन उन चोरों के पास जा पहुंचा। उसने पूछा—आपका झगड़ा क्या है?

चोरों ने कहा-हम तीन वस्तुएँ लाये हैं और हम चार हैं। सब का भाग बराबर नहीं हो सकता। इसी बात का झगड़ा है।

अमरसेन-वे चीजें दिखलाइए।

चोरों ने उन चीजों को दिखलाते हुए कहा—एक यह जरजरफंता गुदड़ी है, दूसरी लकड़ी और तीसरी चीज खड़ाऊँ है। यह तीनों चीजें अनमोल हैं। इनमें अलग-अलग चमत्कार भरा है। यह चीजें एक देवता ने प्रसन्न होकर किसी साधु को दी थीं। क्योंकि साधु ने उसकी आराधना की थी। भक्ति और सेवा की थी। साधु गफलत में सो रहा था। हम उसकी गठड़ी उठा लाये

हैं। साधु को सिर्फ रोटी चाहिए और रोटी दुनिया दे ही देती है। फिर इसे इनकी क्या आवश्यकता है ? अब तुम बँटवारा करने के लिए आ गए हो तो कोई मार्ग निकालो और हमारा झगड़ा मिटा दो। परन्तु पहले यह बतलाओ कि तुम कौन हो ?

यह सुन कर अमरसेन ने सोचा—यहां जरा सँभल कर बात करनी चाहिए। और तब उसने उत्तर दिया—भाइयो ! मैं एक परदेशी हूँ और बहुत निर्धन हूं। फूटी कौड़ी भी मेरे पास नहीं है। मैं दीन और अनाथ हूं। पेट भरने को रोटी देने वाला भी कोई नहीं है।

चोरों को विश्वास हो गया कि यह कोई जासूस नहीं है तो उन्होंने कहा—अच्छा, अब तुम हमारा फैसला कर सकते हो।

पहले यह बतलाओ कि वे तीन चीजें क्या हैं और उनके क्या क्या गुण हैं ?

चोरों से एक मुखिया ने कहा—यह एक गुदड़ी है। इसमें यह गुण है कि जब भी झटको, इसमें से मोहरें झरती हैं। दूसरी यह लकड़ी है। इसके रहते दुश्मन की सामने आने की हिम्मत नहीं हो सकती। कितनी ही बड़ी दुश्मनों की फौज हो, इसके सामने नहीं ठहर सकती, और तीसरी चीज यह खड़ाऊँ-जोड़ी है। इसे पहन कर मनुष्य आकाश में उड़ सकता है।

अमरसेन ने तीनों चीजों के गुण सुने तो उसे भी उन्हें

हथिया लेने का स्पृहा उत्पन्न हो गई। उसने सोचा--ऐसा कोई उपाय करना चाहिए कि यह मुझे प्राप्त हो जाएँ। ऐसा हो गया तो इनका झगड़ा भी मिट जाएगा और मेरा काम भी बन जाएगा। इन्हें पा लेने पर गुठली के अभाव की पूर्त्ति हो जाएगी और मेरी दशा सुधर जाएगी।

अमरसेन ने चोरों की बहुत प्रशंसा की और मधुर शब्दों में बड़ी नम्रता प्रदर्शित की। तत्पश्चात् कहा--मैं तुम्हारा फैसला करने से पहले तुम्हारे मुँह से कहलवाना चाहता हूं कि इस कथा को ओढ़ कर, हाथ में लकड़ी लेकर और खड़ाऊँ पहन कर कैसा लगता हूँ? इस बात का फैसला होते ही आपका ही फैसला हो जाएगा।

चोर अमरसेन की बातों पर मुग्ध हो चुके थे और दूरदर्शी भी नहीं थे। अतएव उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की और कह दिया-अच्छी बात है। तुम इन्हें धारण कर सकते हो, मगर हमारा फैसला जल्दी ही हो जाना चाहिए।

चोरों की अनुमति मिलते ही अमरसेन की प्रसन्नता का पार नहीं रहा, उसने सोचा-चलो तेरा भाग्य चमका! और उसने चोरों से कहा-हां, अभी आनन-फानन आपका झगड़ा मिटाए देता हूं।

अमरसेन ने गुदड़ी ओढ़ी और कहा अब मैं कैसा दिखाई देता हूं?

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उसने हाथ में लकड़ी ली और पैरों में खड़ाऊँ पहन लिये, फिर कहा-मैं अब बाबा सरीखा दिखाई देता हूँ न ?

चोरों ने कहा-बड़े भले दिखाई देते हो, परन्तु अब देर मत करो। प्रभात होने वाला है। जल्दी ही हमारा फैसला कर दो।

भाइयो ! दुनियां में कहावत है-'चोरी का माल मोरी में' और भी कहते हैं--आई नदी डोह का पानी भी ले जाती है, चोरों के लिए भी यही हुआ। अमरसेन एकदम आकाश में उड़ गया और चोर ताकते ही रह गए।

ऊपर उठते ही चोर अमरसेन को डाट-फटकार बताने लगे, और धमकियां देने लगे, मगर अमरसेन अब अम्बर विहारी हो गया था। वह क्यों परवाह करने लगा ? वह उड़ता चला गया।

चोर हाथ मलने लगे। कहने लगे-बेचारे साधु को ठग कर हम ये चमत्कारी चीजें लाए और वह धोखेबाज हमें धता बता गया ! न हमारे पास रहीं, न उसके पास। जैसे आई वैसे ही चली गईं।

अमरसेन के उड़ जाने के बाद भी चोर कुछ देर तक आपस में झगड़ते रहे। सब एक दूसरे को बुरा भला कहते रहे

और इस लुटाई का उत्तरदायित्व एक दूसरे पर डालते रहे। फिर वे शान्त हुए और कहने लगे–बहुमूल्य चीजें चली गईं, वे हमारे भाग्य में नहीं थीं, उसी परदेशी की तकदीर की थीं सो उसे मिल गई, हमारे भाग्य में होती तो क्यों जाती? कौन जानता था कि यह मीठी-मीठी बातें बनाने वाला परदेशी इतना धूर्त है।

भाइयो! एक बड़ा धनाढ्य व्यक्ति था। उसके पिता जब तक जीवित रहे, वह आनन्दपूर्वक जीवन यापन करता रहा। परन्तु आप जानते ही हैं कि प्रत्येक जीव के साथ पुण्य पाप लगे हुए हैं। जब तक पुण्य का सितारा जगमगाता रहता है, लक्ष्मी दासी बनी रहती है और सभी परिस्थितियां अनुकूल बनी रहती हैं। कहावत है–'भाग्यवान् के तो भूत कमाते हैं।' तो जब तक पुण्य का उदय था तब तक जिधर वह दृष्टि डालता, उधर ही धन नजर आता था। मगर उसके पिता का देहान्त होते ही उसके पाप कर्म का उदय हो आया। जब पाप का उदय होता है तो वह भी अपना रंग दिखाए बिना नहीं रहता। एक दिन उसे समाचार मिला कि तुम्हारा माल भरा हुआ जहाज, जो व्यापार के लिए परदेश जा रहा था, समुद्र में डूब गया है।

जब विपत्ति आती है तो अकेली नहीं आती। उसके साथ और भी अनेक आपदाएँ आती हैं। सेठ की बाहर जो दुकानें थीं, उनमें भी उसे नुकसान लग गया। जमीन में जो धन गाड़ रक्खा था, चोर उसे चुरा ले गए। इस प्रकार चारों ओर से धन का क्षय

होने के कारण वह गरीबी की हालत में आ गया और गरीब की तरह दिन गुजारने लगा।

उसी नगर में एक दूसरा व्यापारी था। पहले उसकी स्थिति सामान्य थी, मगर पुण्य का उदय होने से चारों ओर से धन की वर्षा होने लगी। उसके यहां पुत्र का जन्म भी हो गया।

जब लड़का हुआ तो उसने विचार किया-ऐसे हर्ष के अवसर पर सम्पूर्ण जातिभाइयों को जिमाना चाहिए। मगर जब जिमाना ही है तो पीतल के थालों में क्यों जिमाऊँ? सोने के थालों में जिमाना ही उचित है। यह सोच कर उसने सोने के थाल तैयार करवाए। सौ थाल घटे सो पहले सेठ के घर से पुण्य के प्रभाव से इसके यहां आ गए। जब सौ थाल उसके जा रहे थे तो जाते हुए एक थाल की कोर उस सेठ के हाथ में आ गई और उस कोर को उसने अपनी पगड़ी में बांध लिया।

यथासमय नवीन सेठ के यहां भोज का आयोजन हुआ और पुराना सेठ भी जीमने गया। संयोगवश जिस थाल की कोर उसके हाथ रह गई थी, वह थाल उसके सामने आया। उसकी कोर टूटी देख कर उसने सोचा-मेरे पास जो कोर है उससे इसे मिला कर देखना चाहिए। थाल तो यह मेरा ही जान पड़ता है।

यह सोच कर उसने अपनी पगड़ी में से वह कोर निकाल कर जो थाल के साथ मिलाई तो वह उसी में चिपक गई। सेठ ने

उसे जोर लगा कर निकालने की कोशिश की तो आसपास के लोग बोले—क्यों साहब ! क्या थाल तोड़ने की कोशिश हो रही है ?

पुराने सेठ की गांठ का सोना भी चला गया और लोगों की दृष्टि में उपहासास्पद भी बनना पड़ा। यह है पाप की करामात।

तो चोरों ने भी यही सोच कर तसल्ली की कि जो अपने भाग्य में नहीं था सो चला गया। जिन्दे रहेंगे तो कहीं हाथ साफ करेंगे।

आखिर चोर अपने-अपने घर के लिए रवाना हुए। अमरसेन उठ कर कहां जाता है और किस प्रकार पुनः उस वेश्या से मिलता है.. इत्यादि बातें आगे सुनने से विदित होगी।

केन्टोनमेंट बैंगलोर
२६-६-४६

सुकृत करले



प्रार्थना—

सिद्धाणं बुद्धाणं० ।



समवायांगसूत्र—

वीतराग सर्वज्ञ प्रभु के मुखारविन्द से निकली हुई जगत्त्राणी परमकल्याणी वाणी आत्मा के अभ्युदयसाधन में अत्यन्त सहायक है। उस पीयूषवर्षिणी वाणी को गणधर देवों ने ग्रथित करके संसार के प्राणिगणों का असाधारण उपकार किया है। उसी वाणी में से आपको समवायांगसूत्र सुनाया जा रहा है। शास्त्र का विषय चरित के समान सर्वसाधारण के लिए मनोरंजक नहीं होता, तथापि उसे समझने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए और रुचि को ऐसी संस्कारित बनाना चाहिए कि शास्त्रीय विषय की चर्चा भी प्रिय लगने लगे। मैं इसे ऐसी शैली

से आपके समक्ष रखने का प्रयत्न करता हूं जिससे आपका मन ऊब न जाए और रस आने लगे। अगर आपकी रुचि इस दिशा में बढ़ गई तो इस आधिव्याधिग्रस्त जीवन में भी आप शान्ति का अनुभव कर सकेंगे।

चौदहवें समवाय में से चौदह पूर्वों का परिचय कल दिया था। आगे शास्त्रकार फर्माते हैं कि भगवान् महावीर स्वामी की चौदह हजार मुनियों की सम्पदा थी।

तत्पश्चात् बतलाया गया है कि कर्मविशुद्धि की अपेक्षा से संसारी जीवों के चौदह स्थान हैं। कर्मविशुद्धि की न्यूनाधिकता के कारण जीवों की विशुद्धि में भी तारतम्य पाया जाता है। इस स्थूल तरतमता के आधार पर जीव चौदह भागों में विभक्त किये गये हैं। वे विभाग गुणस्थानों के नाम से प्रख्यात हैं और मुमुक्षु जनों को अवश्य ही ज्ञातव्य हैं। वे इस प्रकार हैं।

(१) मिथ्यातत्त्वदृष्टि गुणस्थान-जिस अवस्था में जीव की श्रद्धा विपरीत होती है अर्थात् वह अधर्म को धर्म, धर्म को अधर्म सुदेव को कुदेव, कुदेव को देव, मोक्षमार्ग को संसार का मार्ग और संसार के मार्ग को मोक्षमार्ग समझता है, उस अवस्था को मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं। आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से यह जीव की निम्नतम अवस्था है। जैसे मदिरा मनुष्य मदिरा के प्रभाव से अपने हिताहित को समझने में असमर्थ होता है,

उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव आत्मा के कल्याण-अकल्याण का विवेक नहीं कर सकता।

(२) सास्वादन गुणस्थान-यह गुणस्थान जीव में उस समय पाया जाता है जब वह सम्यक्त्व से गिरता हुआ मिथ्यात्व की ओर जाता है और सम्यक्त्व का कुछ स्वाद उसमें शेष रह जाता है। जैसे किसी मनुष्य ने खीर-खांड का भोजन किया और उसका वमन हो गया; तब भी उसका कुछ अंश--स्वाद--शेष रह जाता है। किसी जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया था, मगर मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उदय से तथा बाह्य कारण कुसंगति आदि से वह सम्यक्त्व से भ्रष्ट हो गया। सम्यक्त्व से भ्रष्ट होने पर भी जब तक वह पूरी तरह मिथ्यात्व की भूमिका पर नहीं पहुंचा-मगर शीघ्र ही पहुँचने वाला है, तब तक की स्थिति सास्वादन गुणस्थान है।

(३) मिश्रदृष्टि-इस गुणस्थान वाले की रुचि मिली-जुली होती है-कुछ सम्यक्रुचि और कुछ मिथ्यारुचि जैसे-मिले हुए दही और शक्कर का स्वाद खटा मिट्ठा होता है। उसी प्रकार इस गुणस्थान वाले की श्रद्धा होती है। मिश्रगुणस्थान वाला कुदेव और सुदेव को तथा कुधर्म और सुधर्म को एक-सा समझता है। वह अच्छाई और बुराई में भेद नहीं कर सकता। उसे वेश्यापुत्र की उपमा दी जाती है। वेश्या का पुत्र किसी एक पुरुष को अपना

पिता नहीं कह सकता, इसी प्रकार मिश्रदृष्टि वाला भी किसी एक को अपना देव, धर्म या गुरु नहीं कहता। कहा है—

सर्व देव नित नेमे; सर्व को ही गुरु माने,
सर्व शास्त्र नित सुने, धरम अधरम नहिं जाने।
सर्व व्रत नित करे, सर्व तीरथ फिर आवे,
गुण अवगुण अनजान, सर्व के गुण मुख गावे।
इण विध चाले चाल कहो पार कैसे लहे ?
असल पुत्र वेश्या तणा कहो बाप किसको कहे ?

(४) अविरत सम्यग्दृष्टि—दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से जीव को तत्त्वरुचि (सम्यक्त्व) प्राप्त होने पर जो अवस्था होती है वह अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान है। इसे 'अविरत' कहने का आशय यह है कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने से वह किंचित् भी प्रत्याख्यान या आचरण नहीं कर सकता. हां, उसकी दृष्टि शुद्ध और सही हो जाती है, वह देव को देव, गुरु को गुरु और धर्म को धर्म समझता है। प्रत्याख्यान करने की उसमें रुचि भी होती है, मगर पूर्वोक्त कारण से वह कर नहीं सकता, सम्यग्दृष्टि जीव चारों गतियों में पाये जाते हैं।

(५) देशविरत गुणस्थान—चारित्रमोहनीय कर्म की अप्रत्याख्यानावरण नामक कर्मप्रकृति के हट जाने पर जीव में आंशिक

रुप से विरति धारण करने का सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है, वह देशविरत या विरताविरत गुणस्थान है। यह श्रावक का गुणस्थान है। जिसने जितने अंशों में पापों का त्याग किया है वह उतने अंशों में विरत और जितने अंशों में त्याग नहीं किया उतने अंशों में अविरत है, श्रावक के त्याग के अनेक भंग हैं।

(६) प्रमत्तसंयतगुणस्थान–चारित्रमोहनीय कर्म की तीसरी चौकड़ी प्रत्याख्यानावरण कषाय का भी जब उदय नहीं रहता तब जीव सर्वविरति चारित्र-महाव्रतों को ग्रहण करने का अधिकारी होता है। उसकी अवस्था को प्रमत्तसंयत गुणस्थान कहते हैं। यह साधु का गुणस्थान है। इस गुणस्थान में प्रमाद का सद्भाव रहता है, अतएव यह प्रमत्तसंयत कहलाता है।

(७) अप्रमत्तसंयत गुणस्थान–जब प्रमाद छूट जाता है तब छठे गुणस्थान वाला साधु अप्रमत्तसंयत कहलाता है।

(८) नियट्टिबादर गुणस्थान–सातवें गुणस्थान की अपेक्षा कुछ अधिक विशुद्धि प्राप्त कर लेने पर यह गुणस्थान आता है। इस गुणस्थान से दो श्रेणियां आरम्भ होती हैं–उपशम श्रेणी और क्षपकश्रेणी। उपशम श्रेणी वाला मुनि मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशम करता-करता ग्यारहवें गुणस्थान तक जाता है। क्षपकश्रेणी वाला दसवें से सीधा बारहवें गुणस्थान में पहुंच जाता है।

(९) अनिवृत्तिबादर गुणस्थान–दसवें गुणस्थान की अपेक्षा इस गुणस्थान में बादर कषाय का उदय रहता है, अतएव यह अनिवृत्तिबादर कहलाता है। इस गुणस्थान में भी उपशमक और क्षपक दोनों प्रकार के जीव होते हैं।

(१०) सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान–जब संज्वलन कषाय के क्रोध, मान और माया का अभाव हो जाता है और सिर्फ लोभ का सूक्ष्म उदय शेष रहता है तब जीव की जो अवस्था होती है, उसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में भी दोनों प्रकार के जीव होते हैं।

मोहनीय कर्म की कुल अट्ठाईस प्रकृतियां हैं-तीन दर्शन-मोहनीय की-मिथ्यात्वप्रकृति, मिश्रप्रकृति और सम्यक्त्वमोहनीय, और पच्चीस चारित्रमोहनीय की, जिनमें सोलह कषायमोहनीय हैं और नौ नोकषायमोहनीय हैं। इनमें से दसवें गुणस्थान में सिर्फ संज्वलन के सूक्ष्म लोभ का ही उदय शेष रह जाता है। शेष सब का या तो उपशम हो जाता है या क्षय।

(११) उपशान्तमोहनीय-जिसका मोहनीय कर्म पूर्ण रूप से उपशान्त हो चुका है, उसकी अवस्था उपशान्तमोहगुणस्थान है। इस गुणस्थान में मोहनीय कर्म का बिल्कुल उदय नहीं रहने से वीतरागता प्रकट हो जाती है मगर वह सिर्फ अन्तर्मुहूर्त तक ही रहती है। उसके बाद उपशान्त हुआ मोह फिर उदय में आ जा

ही जीव नीचे गिर जाता है। इस गुणस्थान से ऊपर नहीं चढ़ सकते।

(१२) क्षीणमोह गुणस्थान–इसमें क्षपकश्रेणी वाले जीव दसवें से (ग्यारहवें को लांघ कर) सीधे पहुंचते हैं। मोहनीय कर्म का पूर्णरूप से क्षय हो जाने के कारण जीव अप्रतिपाती हो जाता है। फिर वह नीचे नहीं गिरता। अन्तर्मुहूर्त्त की इसकी स्थिति है। शुक्लध्यान के प्रबल बल से वह इस गुणस्थान के चरम समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का भी क्षय करके तेरहवें गुणस्थान में जा पहुंचता है।

(१३) सयोगिकेवली–चारों घातिया कर्मों का क्षय हो जाने से इस गुणास्थान में अर्हन्त अवस्था प्राप्त हो जाती है। जीव सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अनन्तवीर्यवान् बन जाता है। मन वचन काय के योग का सद्भाव होने से नवीन कर्म आते हैं परन्तु कषाय न होने से एक समय में बँधते हैं, दूसरे में वेदे लिये जाते हैं और तीसरे समय में उनकी निर्जरा हो जाती है। कर्मों में न स्थिति पड़ती है, न रस। यह विशेषता ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में भी होती है, परन्तु वहां केवलज्ञान-दर्शन नहीं होते।

(१४) अयोगिकेवली–तेरहवें गुणस्थान के बाद जब योगों का भी व्यापार नहीं रहता तब अयोगी अवस्था प्राप्त होती है। अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पांच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण में जितना

समय लगता है, इतने समय तक इस गुणस्थान में रह कर जीव सिद्ध अवस्था प्राप्त कर लेता है।

यह चौदह गुणस्थानों का संक्षिप्त स्वरूप है। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि गुणस्थानों पर चढ़ना या यों कहिए कि आत्मिक विशुद्धता प्राप्त करना कषायों के अभाव पर ही निर्भर है। अनन्तानुबंधी कषाय का उदय न होने पर ही जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से छूट कर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय जब नहीं रहता तब वह देशविरत श्रावक कहला सकता है। किसी जाति या कुल में उत्पन्न होने मात्र से न कोई सम्यग्दृष्टि कहला सकता है और न श्रावक का पद ही प्राप्त कर सकता है। बाह्य क्रियाएँ तो मिथ्यादृष्टि भी बहुत करते हैं। कठोर से कठोर कायक्लेश सहन करके वे अनेक लौकिक लब्धियां भी प्राप्त कर लेते हैं। मगर मिथ्यात्वमोह और कषायों का सद्भाव होने से वे न सम्यग्दृष्टि कहला सकते हैं और न संयमी का ही पद प्राप्त कर सकते हैं। सारांश यह है कि आत्मशांति प्राप्त करने के लिए कषायों का क्षय करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

इसके बाद बतलाया गया है कि भरतक्षेत्र की सीमा क्षुल्ल-हिमवन्त पर्वत के पास तथा ऐरवत क्षेत्र की सीमा शिखरी पर्वत के पास पूर्व-पश्चिम में १४४७१ योजन तथा एक योजन के १९ भागों में से छह भाग जितनी लम्बी है :

चारों दिशाओं के अन्त तक शासन करने वाले प्रत्येक चक्रवर्त्ती सम्राट् के पास चौदह रत्न होते हैं। उन रत्नों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) स्त्रीरत्न-चक्रवर्ती अगर भरतक्षेत्र में है तो सम्पूर्ण भरतक्षेत्र पर उनका आधिपत्य होता है और ऐरवत क्षेत्र में हो सम्पूर्ण ऐरवत क्षेत्र पर। अनेक राजाओं की कन्याओं के साथ उनका विवाह होता है। उनके अन्तःपुर में चौंसठ हजार रानियां होती हैं। मगर उन सब में जो प्रधान और श्रेष्ठ स्त्री होती है, वही स्त्रीरत्न कहलाती है। एक हजार देव स्त्रीरत्न के सेवक होते हैं।

(२) सेनापतिरत्न-चक्रवर्त्ती की सेना में चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ और छन्नवें क्रोड़ पैदल सैनिक होते हैं। उन सब का अधिपति सेनापतिरत्न कहलाता है। उसकी भी सेवा एक सहस्र देवता करते हैं।

(३) गाथापतिरत्न-इसकी विशेषता यह है कि वह पहले प्रहर में बीज बोता है, दूसरे प्रहर में उग जाते हैं, तीसरे प्रहर में पक जाते हैं और चौथे प्रहर में उपभोग में आ जाते हैं।

जिस देश में किसी काल में ऐसे ऐसे कृषिविशेषज्ञ थे, उसी देश में आज अनाज का दुष्काल बना रहता है। देश को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है और विदेशों की दया न हो

और वे अनाज न भेजें तो इस देश के सामने पेट भरने की भी विकट समस्या उत्पन्न हो जाए। जान पड़ता है मानो प्रकृति एकदम ही पलट गई है। स्व० खूबचन्दजी म० सुनाया करते थे कि जब तक लोगों में पारस्परिक नेह था, तब तक आकाश से भी अनुकूल मेह बरसता था और भूमि में भी अच्छा रस-कस था। लोगों में स्नेह कम हो गया तो मेह भी कम हो गया। जहां बरसता है इतना बरसता है कि प्रलय मचा देता है, बाढ़ें आ जाती हैं, जान और माल की अत्यन्त क्षति होती है, और नहीं बरसता तो सूखा पड़ जाता है। लाखों एकड़ में फसल नष्ट हो जाती है। करोड़ों रुपया अनाज के बदले विदेशों को भेजना पड़ता है। इसका कारण अगर मानवप्रकृति में परिवर्तन माना जाता है तो क्या अनौचित्य है? पहले एक-एक मक्की के पौधे में पच्चीस-पच्चीस भुट्टे लगते देखे गये हैं। अब पैदावार में कमी होने का क्या कारण हो गया? इसका उत्तर यदि यह दिया जाता है कि मनुष्यों की मेहनत जैसी पहले थी वैसी अब नहीं रही है और बीज की खराबी के कारण पैदावार में कमी हो गई है तो यह उत्तर गलत नहीं कहा जा सकता।

आज जहाँ पशुओं की अधिक हिंसा की जा रही है, इस प्रकार का पाप फल दिखा देता है। अगर मनुष्य सुख और शान्ति से रहना चाहता है तो उसे अपनी प्रकृति में परिवर्तन करना चाहिए और जीवन सुधारना चाहिए। ऐसा किये

बिना सुखशान्ति नसीब नहीं हो सकती, तो गाथापतिरत्न का ऐसा अद्भुत कौशल था कि धान्य उपजाने में उसे विलम्ब नहीं लगता था। इसकी सेवा में भी एक हजार देव रहते थे।

(४) पुरोहितरत्न--इसका काम था शान्ति कायम रखना और राज्य में कहीं अशान्ति उत्पन्न न होने देना। किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न दीखे तो उसका उपशमन कर देना। पुरोहितरत्न की भी एक हजार देव सेवा किया करते हैं।

(५) वर्धकिरत्न--अर्थात् बढ़ई या सुथार, इसकी भी एक हजार देव सेवा करते हैं। उसकी विशेषता भी यह है कि जो चीज देर में बनाई जा सके उसे तत्काल बनाकर तैयार कर देता है चक्रवर्त्ती जहां जाते हैं वहां पौषधशाला भी वही बनाता है। वह चक्रवर्त्ती के लिए ४२ मंजिलों का महल बनाता है और पूरे नगर का निर्माण कर देता है। वह वास्तुशास्त्र का असाधारण पण्डित होता है। वह जानता है कि कौन-सी लकड़ी कहां लगाना चाहिए और द्वार आदि कहां और किस प्रकार होना चाहिये ?

कोई मकान ऐसा बना होता है कि उसमें रहने वालों को डर लगता है और किसी-किसी में कतई डर नहीं लगता। जहां अन्धकार है वहां भय है-भूत है। जहां प्रकाश है वहां भय नहीं होता। आज बड़ी-बड़ी इमारतें निष्णात इंजीनियरों द्वारा बनाई जाती हैं और लोग उन्हें देखने जाते हैं। आगरे के ताजमहल को विश्वख्याति प्राप्त है। उसे देखकर आज भी लोग चकित रह

जाते हैं और सोचते हैं—कलाकारों ने किस कौशल से इसका निर्माण किया होगा।

भाइयो! कारीगर चला जाता है परन्तु उसकी कलाकृति रह जाती है और चिरकाल तक उसके कौशल की प्रशंसा होती रहती है। आपने आबू-पर्वत के मंदिरों को शायद देखा होगा। उनकी कला को देखकर लोग मुग्ध हो जाते हैं और सोचते हैं—इतने ऊँचे पहाड़ पर, आज जैसे क्षमताशाली साधनों के अभाव में, किस प्रकार पत्थर चढ़ाए गए होंगे? इतने भारी-भारी पत्थरों को कैसे चुना होगा? किस हस्तलाघव से कोरनी की गई होगी?

(५) चक्रवर्ती सम्राट् का जो प्रधान बढ़ई होता है, वह इमारतें बनाने के कार्य में असाधारण रूप से पटु होता है। वह शासन-पालन और शारीरिक कुशलता के साथ अपना काम करता है।

(६) अश्वरत्न—यह अत्यन्त [illegible] में [illegible] होता है। इसकी [illegible] करते हैं, वह थोड़े समय में अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देता है।

(७) हस्तिरत्न—सब हाथियों में प्रधान होता है। इसकी [illegible] से ही [illegible] रहते हैं।

यह चक्रवर्त्ती के सात पंचेन्द्रियरत्न हैं। सात रत्न एकेन्द्रिय होते हैं, जिनका ब्यौरा इस प्रकार है—

(८) असिरत्न–असि का अर्थ है तलवार। चक्रवर्त्ती का यह असिरत्न पचास अंगुल लम्बा और सोलह अंगुल चौड़ा होता है। दुश्मनों पर आक्रमण करने एवं विजय प्राप्त करने के लिए शस्त्र तो चाहिए ही, इसी हेतु से चक्रवर्त्ती के पास असिरत्न होता है। इस रत्न के अधिष्ठायक भी एक हजार देव होते हैं।

(९) दण्डरत्न–इसकी भी एक हजार देवता सेवा करते हैं।

(१०) चक्ररत्न–यह रत्न चक्रवर्त्ती की सेना के आगे-आगे चलता है और सेना का पथप्रदर्शन करता है।

आज लोकव्यवहार में देखा जाता है कि जब किसी के यहां लग्न होता है तो महिलाएँ कुम्हार के यहां जाकर चाकपूजन करती हैं। उनकी ऐसी धारणा होती है कि यदि चक्रपूजन कर लिया जाय तो विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो जाता है। जो भी हो जब चक्रवर्त्ती के यहां चक्ररत्न उत्पन्न होता है, तब चक्रवर्त्ती भी उसकी पूजा करते हैं। वह चक्ररत्न उन्हें विजय दिलवाता है। संभवतः किसी न किसी रूप में यही परम्परा आज भी प्रचलित है। साधारणतया देखा जाता है कि कोई भी रिवाज जब प्रचलित किया जाता है तो उसकी कोई विशेष उपयोगिता होती है। मगर कालान्तर में लोग उसकी वास्तविकता को भूल जाते हैं और

उनका रूप विकृत भी कर देते हैं। फिर तो वह निर्जीव कलेवर की तरह निस्सार रह जाता है। चक्रपूजा के रिवाज में ऐसा ही कोई रहस्य रहा होगा।

(११) छत्ररत्न—इसकी भी एक हजार देवता सेवा करते हैं। यह होता तो चार हाथ का ही है परन्तु जब आवश्यकता होती है तो अड़तालीस कोस में छाया कर देता है। उसमें ६६ हजार तालियां लगी रहती हैं।

(१२) चर्मरत्न—यों तो यह चार हाथ का ही होता है मगर आवश्यकता होने पर इसका बड़ा विशाल रूप हो जाता है। यह समुद्र या नदी में रख दिया जाय तो चक्रवर्ती की सारी सेना उस पर बैठ सकती है।

(१३) मणिरत्न—यह प्रकाश करता है। चक्रवर्ती जब दिग्विजय के लिए जाते हैं तो मणिरत्न हाथी पर रख दिया जाता है। चारों दिशाओं में दूर-दूर तक उसका प्रकाश फैल जाता है। एक हजार देवता इसकी सेवा करते हैं।

(१४) काकिणी रत्न—यह रत्न [illegible] होता है। [illegible]

चक्रवर्त्ती जब वैताढ्य पर्वत को पार करते हैं तो उसकी गुफाओं में काकिणीरत्न से मांडला करते जाते हैं। इस रत्न की भी एक हजार देव सेवा करते हैं।

तत्पश्चात् बतलाया गया है कि इस जम्बूद्वीप में चौदह महानदियां हैं, जो लवणसमुद्र में मिलती हैं। जम्बूद्वीप में चुल्ल-हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरि नामक छह वर्षधर पर्वत हैं, जिनके कारण यह द्वीप सात विभागों (क्षेत्रों) में विभक्त हो गया है। उन वर्षधर पर्वतों से चौदह नदियां निकलती हैं। चुल्लहिमवन्त और शिखरि पर्वत से तीन-तीन और शेष चार पर्वतों से दो-दो नदियां निकलती हैं। उनके नाम यह हैं—(१) गंगा (२) सिन्धु (३) रोहिता (४) रोहितांसा (५) हरिता (६) हरिकान्ता (७) सीता (८) सीतोदा (९) नरकान्ता (१०) नारीकान्ता (११) सुवर्णकूला (१२) रूप्यकूला (१३) रक्ता और (१४) रक्तवती।

तत्पश्चात् शास्त्रकार कहते हैं—प्रथम नरक में किसी किसी नारक की स्थिति चौदह पल्योपम की कही है। पांचवीं नरकभूमि में किसी-किसी नारकी जीव को स्थिति चौदह सागरोपम की कही है।

कोई कोई असुरकुमार देव ऐसे हैं जिनकी चौदह पल्योपम की स्थिति कही है। प्रथम और द्वितीय देवलोक में भी किसी-किसी देव की स्थिति चौदह पल्योपम की है। छठे लान्तक देव-

लोक में उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की है। सातवें देवलोक के देवों की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम की है। छठे देवलोक में जो देवता श्रीकान्त, श्रीमहित, श्रीसौमनस, लान्तक, कापिष्ठ, महेन्द्र, महेन्द्रकान्त, महेन्द्रोत्तरावतंसक नामक विमानों में उत्पन्न होते हैं, उनकी चौदह सागरोपम की स्थिति कही गई है। वे देवता चौदह पक्ष अर्थात् सात मास में एक बार श्वासोच्छ्वास लेते हैं और उन्हें चौदह हजार वर्ष में आहार की अभिलाषा होती है।

संसार में कोई कोई भव्य जीव ऐसे हैं जो चौदह भव करके सिद्ध बुद्ध होंगे यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

भाइयो ! यह वीतराग सर्वज्ञ देव की वाणी है जिसे गणधर देवों ने सूत्र रूप में गुंथित किया है। इसमें भगवान का अनुभव भरा है। प्रस्तुत समवायांगसूत्र में एक से लेकर कोड़ाकोड़ी पर्यन्त तक विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

सर्वज्ञ भगवान् ने अपने विमल ज्ञानालोक में जो देखा उसका अधिकांश भाग सूत्र रूप में गूंथा जा सकता है। वह बहुत [illegible] में रहा। सूत्र के अपने [illegible] और [illegible] अपने [illegible] की तरह [illegible] होती नहीं। [illegible]

चक्रवर्त्ती जब वैताढय पर्वत को पार करते हैं तो उसकी गुफाओं में काकिणीरत्न से मांडला करते जाते हैं। इस रत्न की भी एक हजार देव सेवा करते हैं।

तत्पश्चात् बतलाया गया है कि इस जम्बूद्वीप में चौदह महानदियां हैं, जो लवणसमुद्र में मिलती हैं। जम्बूद्वीप में चुल्ल-हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरि नामक छह वर्षधर पर्वत हैं, जिनके कारण यह द्वीप सात विभागों (क्षेत्रों) में विभक्त हो गया है। उन वर्षधर पर्वतों से चौदह नदियां निकलती हैं। चुल्लहिमवन्त और शिखरि पर्वत से तीन-तीन और शेष चार पर्वतों से दो-दो नदियां निकलती हैं। उनके नाम यह हैं—(१) गंगा (२) सिन्धु (३) रोहिता (४) रोहितांसा (५) हरिता (६) हरिकान्ता (७) सीता (८) सीतोदा (९) नरकान्ता (१०) नारीकान्ता (११) सुवर्णकूला (१२) रूप्यकूला (१३) रक्ता और (१४) रक्तवती।

तत्पश्चात् शास्त्रकार कहते हैं-प्रथम नरक में किसी किसी नारक की स्थिति चौदह पल्योपम की कही है। पांचवीं नरकभूमि में किसी-किसी नारकी जीव की स्थिति चौदह सागरोपम की कही है।

कोई कोई असुरकुमार देव ऐसे हैं जिनकी चौदह पल्योपम की स्थिति कही है। प्रथम और द्वितीय देवलोक में भी किसी-किसी देव की स्थिति चौदह पल्योपम की है। छठे लान्तक देव-

लोक में उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की है। सातवें देवलोक के देवों की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम की है। छठे देवलोक में जो देवता श्रीकान्त; श्रीमहित, श्रीसौमनस, लान्तक, काविष्ठ, महेन्द्र, महेन्द्रकान्त, महेन्द्रोत्तरावतंसक नामक विमानों में उत्पन्न होते हैं, उनकी चौदह सागरोपम की स्थिति कही गई है। वे देवता चौदह पक्ष अर्थात् सात मास में एक वार श्वासोच्छ्वास लेते हैं और उन्हें चौदह हजार वर्ष में आहार की अभिलाषा होती है।

संसार में कोई कोई भव्य जीव ऐसे हैं जो चौदह भव करके सिद्ध बुद्ध होंगे यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

भाइयो ! यह वीतराग सर्वज्ञ देव की वाणी है जिसे गणधर देवों ने सूत्र रूप में ग्रथित किया है। इसमें मक्खन ही मक्खन भरा है। प्रस्तुत समवायांगसूत्र में एक से लेकर कोड़ाकोड़ी संख्यक तक विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

सर्वज्ञ भगवान् ने अपने विमल ज्ञानालोक में जो देखा उसका अनन्तवां भाग सूत्र रूप में गूंथा जा सका है। वह बहुत काल तक मौखिक रूप में रहा। गुरु ने अपने शिष्य को और उसने अपने शिष्य को याद करवा दिया। मगर ज्यों ज्यों काल बीतता गया, स्मरण शक्ति क्षीण होती गई। अतएव सूत्रों का बहुतसा भाग विस्मृत हो गया। तत्पश्चात् द्वादशवर्षीय दुष्काल

के प्रभाव से श्रुतधारक स्थविर स्वर्गवासी हो गए और श्रुत का थोड़ा सा भाग ही अवशिष्ट रह सका। जो भी भाग आज विद्यमान है, वह हमारे सामने है। आत्म कल्याण के इच्छुक जनों के लिए उतना ही पर्याप्त है।

जिस जीव का पुण्य अत्यन्त प्रबल होता है, उसी को तीर्थङ्कर भगवन्तों की वाणी श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। आपको यह सौभाग्य मिला है तो इससे लाभ उठाइए, क्योंकि आत्मकल्याण के लिए वस्तुस्वरूप को यथार्थ रूप में समझना सर्वप्रथम आवश्यक है। वस्तुस्वरूप को समझने से ही पता लग सकता है कि आत्मा का स्वरूप क्या है? कैसे वह बद्ध होता है? कैसे मुक्त होता है? बन्धन क्या है? हम जिस जगत् में रहते हैं वह क्या हैं? उसमें कौन-कौन से पदार्थ हैं? उनका स्वरूप क्या है? आदि आदि।

वस्तुस्वरूप को समझने के पश्चात् ही समुचित आचरण करके आत्मा का कल्याण किया जा सकता है। अगर आपने ऐसा किया तो एक दिन समस्त कर्मों को काट कर मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे।

अमरसेन-वीरसेन चरित—

यही बात वीरसेन और अमरसेन के चरित द्वारा आपको समझाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

कल बतलाया गया था कि अमरसेन चोरों की चुराई हुई गुदड़ी, खड़ाऊँ और लकड़ी लेकर खड़ाऊँ के प्रभाव से आकाश में उड़ गया और चोर देखते ही रह गए। निराश और हताश होकर चोर अपने घर चले गए।

अमरसेन कुछ समय तक आकाश में विचरण करता रहा, उसके बाद जब उसने देखा कि चोर जा चुके हैं और कोई नजर नहीं आता तब वह नीचे उतरा। नीचे उतरने के बाद उसके दिमाग में यही प्रश्न उपस्थित हुआ कि वह कहां जाय और क्या करे।

साधारणतया जिसने जो घर देखा होता है, उसी की उसे याद आती है और वहीं जाने की इच्छा होती है। अमरसेन उस नगर में उस वेश्या के अतिरिक्त किसी अन्य को पहचानता नहीं था। अतएव उसे नगर में आकर वेश्या के घर ही जाने की इच्छा हुई। वह जैसे ही अनायास ही वेश्या के घर की ओर खिंचा चला गया। जब वेश्या के घर के सन्निकट पहुंचा, उस समय वेश्या झरोखे में बैठी बहार की ओर देख रही थी।

अमरसेन के पास उसकी उन चीजों की गंठड़ी थी। वह उसे बगल में दबाए साथ ही ले गया था। वेश्या ने अमरसेन को आता देखा और यह भी देख लिया कि उसकी बगल में कुछ सामान भी है। वेश्या ने विचार किया--जब यह वापिस

आया है तो इसके पास कुछ न कुछ अवश्य ही होना चाहिए। कुछ न होता तो यहां हर्गिज न आता, क्योंकि इसे अपमानित करके मैंने निकाल दिया था। इस समय इसका स्वागत करना ही उचित है।

इस प्रकार सोच कर वेश्या एकदम मकान के नीचे आई और उसके पास पहुँचकर, अत्यन्त नम्रता से, हाथ जोड़ कर कहने लगी--नाथ ! आप तो थोड़ी-सी बात पर ही नाराज होकर चल दिये। और चल दिए तो अब तक चरणों के दर्शन ही नहीं दिये। मैंने सारा मकान खोज डाला, कहीं पता ही नहीं चला। सच समझिए, जब से आप इस मकान से गए हैं, तभी से यह सूना २ लग रहा है, आपके लिए यह प्राण तड़फ रहे थे। इस संसार में आपके सिवाय मेरा कौन अपना है ? आप हैं तो यह जीवन हैं, आपके बिना तो अंधकार ही अंधकार है। खैर, मेरा बड़ा भाग्य कि आपको फिर मेरी याद आ गई। अब आपको अपने कलेजे में कैद करके रक्खूंगी। हर्गिज कहीं न जाने दूंगी। मुझसे अगर कोई भूल हुई हो तो क्षमा करें और यहीं आनन्द-पूर्वक रहें।

वेश्या की चापलूसी भरी बातें सुनकर अमरसेन ने सोचा--यह दुनियां कितनी स्वार्थमय है। यही वह वेश्या है जिसने मुझे दरिद्र समझ कर धक्का देकर घर से बाहर निकाल दिया था।

मेरा तिरस्कार करने में कोई कसर न छोड़ी थी। इस समय कैसी मीठी बातें बना रही है। यह सोच कर अमरसेन ने वेश्या की दृष्टि से अपनी दृष्टि नहीं मिलाई, क्यों कि दृष्टि मिलने पर प्रीति उत्पन्न हो जाती है। कहा भी है—

नैन नैन से मिलत हैं, नैन नैन के हेत।
नैन नैन की बात को, नैन नैन कह देत॥
चार मिले चौसठ खिले, बीस रहे कर जोड़।
मित्र मिलंता साथ मां, हर्षे सात करोड़॥

अर्थात्--चार आंखें होते ही अनुराग उत्पन्न हो जाता है। नेत्रों को अपनी बात कहने के लिए जिह्वा की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। मूक भाषा में ही वे अपनी बात कह देते हैं। जब प्रेमी का समागम होता है और चारों नेत्र मिलते हैं तो चौंसठ दांत खिल उठते हैं; बीसों उंगलियां जुड़ जाती हैं और सात करोड़ रोमराजि हर्षित हो उठती है। (कहते हैं एक-एक मनुष्य के शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम होते हैं, अतः दो के मिल कर सात करोड़ होते हैं)।

आंखें हृदय के भावों में साफ प्रकट कर देती हैं। उनसे पता चल जाता है कि इसे मेरे प्रति प्रेम है या नहीं है? हृदय का मर्म इन्हीं के द्वारा प्रकट होता है।

तो जब वेश्या ने अनुरागव्यंजक शब्दों का प्रयोग करके

अमरसेन को फिर अपने जाल में फँसाना चाहा तो अमरसेन ने सोचा-यदि मैंने एक बार भी इसे अनुराग की दृष्टि से देखा तो मामला बिगड़ जाएगा। यह अव्वल दर्जे की धूर्त्ता है। पहले तो मुझे अनुभव नहीं था सो इसके चक्कर में आ गया, मगर अब तो मैंने जान लिया है कि यह कैसी स्वार्थपरायणा है। यह मनुष्य को नहीं, धन को प्यार करती है।

यह सोच कर अमरसेन चुप्पी साधे और नीची निगाह किये खड़ा रहा। उसने वेश्या की प्रेम प्रकट करने वाली लम्बी-चौड़ी बातों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह वेश्या की सारी करतूतों से और उसके छट कपट भरे स्वार्थमय व्यवहार से भलीभांति परिचित हो गया था।

चालाक वेश्या अमरसेन के मनोभाव को भलीभांति समझ गई। उसे ताड़ते देर न लगी कि अमरसेन के हृदय में अपमान का डंक अभी तक चुभ रहा दीखता है। किसी उपाय से उसे निकालना चाहिए। बिना उसे निकाले यह काबू में नहीं आने का। देखो न, इसने मेरी दृष्टि से दृष्टि तक नहीं मिलाई।

इस प्रकार सोच कर उसने नया फंदा फैंका—नाथ, आपके चित्त में अभी तक दुविधा है, भ्रम है। आप सोचते हैं कि मैंने अपमानित करके आपको निकाल दिया था। यही सोच रहे हैं न आप।

अमरसेन फिर भी चुप।

तब वेश्या ने कहा—मगर बात ऐसी नहीं है। उस समय मैं नशे में थी और आप जानते ही हैं कि नशे की हालत में मनुष्य को उचित-अनुचित का भान नहीं रह जाता। संभव है इस हालत में मैंने कोई अनुचित बात कह दी हो। उसे आप भूल जाइए। न भूल सकें तो वही बात मुझसे कह लीजिए। दोनों बराबर हो जाएँगे। मगर अपना मौन भंग कीजिए और अपनी दृष्टि से इस दासी को कृतार्थ बनाइए।

भाइयो! प्राचीन काल के नीतिकारों ने बतलाया है कि वेश्या से भी शिक्षा मिलती है। चाणक्यनीति में कहा है-

देशाटनं पण्डितमित्रता च, वारांगना राजसभाप्रवेशः।
अनेकशास्त्राणि विलोकितानि, चातुर्यमूलानि भवन्ति पंच॥

मनुष्य के जीवन में पांच कारणों से चतुराई आती है। उनमें पहला कारण है देशाटन। जो विभिन्न देशों में परिभ्रमण करता है वह बहुत कुछ देखता और सुनता है। नाना प्रकार के मनुष्यों के सम्पर्क में आता है। अतएव उसके जीवन में अनुभवों की अच्छी निधि संचित हो जाती है।

भाइयों! मुझे भी बहुत देशाटन करने का अवसर मिला है और जो कुछ ग्रन्थों में पढ़ने को मिला था, देशाटन में उसमें

से बहुत-सी चीजें देखने को मिलीं। अतएव मैं अपने अनुभव से भी कह सकता हूं कि देशाटन से मनुष्य के अनुभव की अच्छी वृद्धि होती है। इसमें शर्त यही है कि वह कोरे मनोरंजन या सैर-सपाटे के ही ध्येय से भ्रमण न करे बल्कि जागृत जिज्ञासा को मुख्य करके भ्रमण करे, तभी लाभ विशेष होता है।

दूसरा चतुराई प्राप्त करने का कारण है पंडितों के साथ मैत्री। विद्वान् पुरुषों के साथ घनिष्ठ प्रेम रखने से और उनके संसर्ग में रहने से अनायास ही बहुत कुछ सीखने को मिल जाता है।

तीसरे, वेश्या से भी शिक्षा ली जा सकती है। वेश्या किस प्रकार धोखा देती है, किस प्रकार जाल में फँसाती है, किस प्रकार क्षणिक सुख के लिए आत्मा को पाप के भार से गुरुतर बनाती है, यह सब वेश्या से सीखे जा सकते हैं। जो इन बातों को समझ लेगा, वह धोखा खाने से बच जाएगा, वेश्या के जाल में नहीं फँसेगा और क्षणिक सुख के लिए अपनी आत्मा का अहित नहीं करेगा।

प्राचीन काल में अनेक गणिकाएँ केवल संगीत-नृत्य का ही धंधा किया करती थीं। वे अन्य दुराचार का शिकार नहीं होती थीं। ऐसी गणिकाओं से संगीत आदि कलाएँ सीखी जाती थीं

राजा की सभा से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। उस सभा में बड़े-बड़े विद्वान् राजनीतिज्ञ, पण्डित और कवि होते थे।

उनके संसर्ग से अनुभववृद्धि में बहुत सहायता मिलती थी। आज तो सारा तंत्र ही बदल गया है. फिर भी सभाएँ आज भी हैं- जैसे लोकसभा; विधानसभा आदि। आज उनसे राजनीति की बहुत शिक्षा ली जा सकती है।

विविध शास्त्रों के अध्ययन और अवलोकन से भी अनुभव की वृद्धि होती है। शास्त्रकर्त्ता अपने जीवन के बहुमूल्य अनुभवों को अपनी चिन्तनाओं और कल्पनाओं को शाब्दिक रूप प्रदान करके शास्त्र की रचना करता है। उस शास्त्र के पीछे लम्बे समय की साधना होती है। परन्तु पाठक को सहज ही उसकी साधना और उसके अनुभवों का लाभ मिल जाता है। अतएव विभिन्न शास्त्रों के अवलोकन से ज्ञान की वृद्धि होती है और कौशल बढ़ता है।

जहां धर्मशास्त्र सुनाया जाता है वहां जाकर सुनने से भी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। वह ज्ञान तो खास तौर से आत्मकल्याण का प्रेरक बनता है। भाइयों ! आपमें से कई सज्जन प्रतिदिन शास्त्रश्रवण करने के लिए आते हैं। यह आप बाद में उसका मनन करें और सब नहीं तो कुछ बातें भी स्मरण में रख लें तो भी धीरे-धीरे आपकी ज्ञाननिधि बढ़ सकती है और एक दिन ऐसा आ सकता है कि आप शास्त्र के अच्छे ज्ञाता बन जाएँ। आपको हमसे भी ज्यादा सुनने को मिलता है, मगर आप उस पर मनन नहीं करते। अतएव इधर सुनते हैं और

उधर भूलते जाते हैं। संचय कुछ नहीं हो पाता। अतएव शास्त्र-श्रवण का पूरा लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि जो आप सुनें उस पर चिन्तन करें, परस्पर में चर्चा करें और उसे स्थायी बना लें।

हां, तो अमरसेन ने वेश्या के घर रह कर कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया था। वह समझ गया था कि यह वेश्या किस प्रकार धोखा देकर लोगों को ठगती है, किस प्रकार अर्थलोलुप है और अर्थ न रहने पर किस प्रकार रुखाई दिखलाती है। अतएव जब उसने कहा कि--मैं शराब के नशे में थी और बेभान अवस्था में आपको अनुचित शब्द कह दिये थे। उन शब्दों के लिए मुझे बहुत पश्चात्ताप है। मैं क्षमा चाहती हूँ। आप मेरी भूल को क्षमा करें और पिछली बात भूल जाएँ। तब अमरसेन को उसके कथन पर विश्वास नहीं हुआ। वह यही समझा कि यह धूर्त्त रमणी मेरी बगल में पोटली देख कर ही खुशामद कर रही है। जो कुछ मेरे पास है उसे हथियाना चाहती है।

भाइयो ! बिगड़ी को अधिक बिगाड़ना तो सब जानते हैं परन्तु बिगड़ी बात को बनाने वाले थोड़े हो होते हैं। इस बात को एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर देना चाहता हूं।

एक सम्पत्तिशाली सेठ था। उसकी पत्नी गर्भवती थी। तीसरे महीने में उसको दोहद उत्पन्न हुआ। उसे यह इच्छा

उत्पन्न हुई कि मैं मोर का मांस खाऊँ। मगर उसकी इच्छा पूरी नहीं हो रही थी। अतएव वह शरीर से दुर्बल होती जारही थी उसकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि मोर का मांस खाये विना उसे चैन नहीं पड़ रही थी।

संयोगवश एक दिन वहां के राजा का पालतू मोर सेठ के मकान पर उड़ कर आ गया। सेठानी की दृष्टि उस पर पड़ी और वह प्रसन्न हो कर उसके पास जा पहुंची। उसने इधर-उधर देखा और जब विश्वास हो गया कि कोई देख नहीं रहा है, तो चुपके से मोर को पकड़ कर ले आई। उसे मकान में बंद कर दिया। तत्पश्चात् उसे मार कर और मांस पका कर खा लिया। इस प्रकार उसका दोहद पूरा हो गया।

उधर जब मोर दिखाई नहीं दिया तो राजा ने उसकी तलाश करवाई। आदमी इधर-उधर दौड़े और तलाश होने लगी। वह राजा का प्यारा मोर था, अतएव लोग बड़ी तत्परता से उसकी खोज करने लगे। परन्तु उनका प्रयास सफल नहीं हुआ। बहुत कुछ तलाश करने पर भी जब मोर न मिल सका तो राजा ने उसके लिए इनाम की घोषणा करवाई। सारे नगर में पटह फिर गया—'जो मोर का पता लगाएगा उसे हजार रुपये इनाम दिये जाएँगे।'

राजा की दासी ने मोर का पता लगाने और इनाम जीतने का बीड़ा उठाया। उसने पहले तो महल में ही अपनी साथिनियों

के साथ इस सम्बन्ध में चर्चा प्रारम्भ की और फिर धीरे-धीरे इधर उधर भी फिरने लगी। उस मयूरभक्षिणी सेठानी के यहां भी आने-जाने लगी। उसने सेठानी से मेल-मिलाप बढ़ाया और प्रेम से बातें करने-लगी। सेठानी भी राजदासी समझ कर उसका सन्मान करती थी।

सेठानी ने जिस दिन मयूर को मारा था, उसी दिन सावधानी के लिहाज से उसके पंख वगैरह जला डाले थे और अपनी समझ में मोर का निशान नहीं रहने दिया था।

दासी ने सेठानी से बातें करते-करते धीरे-धीरे प्रीति बांध ली। दासी ने सेठानी को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। दोनों में इतनी घनिष्ठता बढ़ गई कि दासी अपनी गुप्त से गुप्त बात भी उससे नहीं छिपाने लगी। इसी सिलसिले में एक दिन दासी ने सेठानी से कहा—सेठानीजी! मैं तो अपनी गुप्त से गुप्त बात भी तुम्हारे सामने प्रकट कर देती हूँ। कोई भी बात नहीं छिपाती। मगर आपके मन में कपट मालूम होता है। आपने अभी तक कोई गुप्त बात हम पर प्रकट नहीं की। प्रेम के संसार में कोई दुराव नहीं होता। जहां दुराव है, छिपाव है वहां सच्चा प्रेम नहीं है। क्या आप मुझ से सच्चा प्रेम नहीं करतीं?

सेठानी मुस्करा कर रह गई। उसने कहा—मेरे यहां ऐसी कौन-सी गुप्त बात है जो तुम्हें सुनाऊँ।

मगर कुछ दिन बाद ही सेठानी भोलेपन में आ गई और उसे अपनी दोहदपूर्त्ति की कहानी उसे सुना दी। उसने कहा-कई दिनों से मयूरमांस खाने की प्रबल इच्छा थी और उसके बिना मैं बेताब हो रही थी। भाग्य से एक दिन एक मयूर हवेली पर ही आ गया। उसे पकड़ कर मैंने अपना दोहद पूर्ण किया। पहले तो मुझे मालूम नहीं था कि मोर पालतु है और राजा का है, मगर बाद में यह बात मालूम हुई। सुना हैं, वह मोर राजा का बड़ा प्यारा था। तुम राजा की दासी हो कहीं महल में यह बात प्रकट मत कर देना।

सेठानी की बात सुनकर दासी की प्रसन्नता का पार न रहा, उसने सोचा-चलो मिहनत सार्थक हुई। अब हजार रुपयों की थैली मेरी कौन रोक सकता है ? इस प्रकार मन में सोच कर उसने कहा-सेठानीजी, चिन्ता न करो।

मगर दासी को कहां चैन थी। इधर-उधर की कुछ बातें करके वह सेठानी के पास से रवाना हुई और सीधी राजमहल में पहुंची। उसने राजा से कहा-अन्नदाता ! आपके मोर के चोर का पता लग गया है।

राजा-कौन है वह ?

दासी-पास वाले सेठ की सेठानी। उसने उसे मार कर खा लिया है ?

राजा ने दासी की बात सुन कर मौन धारण कर लिया। वह बहुत विचारवान् और कुशल था। उसने मन ही मन विचार किया-सेठ नगर में बहुत प्रतिष्ठापात्र है। उसकी पत्नी के द्वारा ऐसा कार्य कैसे हो सकता है? संभव है दासी ने इनाम के लोभ से सेठानी के संबंध में घड़कर यह बात कह दी हो और झूठी हो।

इस प्रकार सोचकर राजा ने कहा-दासी, जानती है किसी पर मिथ्या दोषारोपण करने का क्या फल होता है? तेरे पास क्या प्रमाण है कि सेठानी ने मेरे मोर को मार कर खा लिया है?

दासी कहने लगी-अन्नदाता! उसने स्वयं ही मुझे बतलाया है। अतएव बात झूठी नहीं हो सकती।

राजा-अगर वह अपने कथन से मुकर गई तो?

दासी-पृथ्वीनाथ! इसके लिए एक उपाय है। आप दीवान साहब को मेरे साथ भेज दें। हम दोनों मोर के विषय में बातें करेंगी और दीवान साहब स्वयं सुन लेंगे।

राजा-मगर औरतों के पास दीवान कैसे जा सकते हैं? अगर जाएँ भी तो उनके सामने सेठानी कहेगी क्यों?

दासी-बात तो यथार्थ है हुजूर! पर इसकी भी तरकीब निकल सकती है। दीवान साहब को एक पेटी में बंद करके भेज दीजिए। उसे उनकी उपस्थिति का पता ही नहीं चलेगा।

आखिर ऐसी ही व्यवस्था की गई। चतुर दासी एक भृत्य के सिर पर पेटी रखवा कर ले गई। सेठानी से कहा-यह पेटी कुछ दिनों के लिए आपके यहां रखने आई हूं और उसने मोर के संबंध में बात-चीत आरम्भ करदी। सेठानी उसके प्रश्नों का उत्तर देती रही। मगर जब सेठानी ने लक्ष्य किया कि दासी बार-बार अर्थसूचक दृष्टि से पेटी की ओर देखती है और इसमें कुछ रहस्य हो सकता है, तो वह एकदम चौकन्नी हो गई। उसने सोचा-मुझे बात सँभाल लेनी चाहिये।

जब दासी ने आगे की बात पूछने के लिए कहा-फिर क्या हुआ? तो सेठानी ने कहा-फिर क्या था? इतने में ही मेरी नींद खुल गई और सारा खेल खत्म हो गया।

दासी का सारा खून सूख गया। सोचने लगी इसने तो सारा बना बनाया काम बिगाड़ा।

सेठानी ने अपनी बुद्धिमत्ता से बिगाड़ी बात भी बना ली। तो बिगाड़ने वाले बहुत होते हैं, मगर बिगड़ी को बनाने वाले कम होते हैं।

तो मैं कह रहा था कि वह वेश्या भी बड़ी चतुर थी और वह बिगड़ी बात को बनाने के लिए प्रयत्न कर रही थी। वह उसके लिये झूठ का सहारा ले रही थी।

इस प्रकार ढोंग करके वेश्या अमरसेन के पैरों में गिर

गई। पैरों में गिरते देख अमरसेन का दिल पिघल गया। वह सहृदय और भद्र पुरुष था। सोचने लगा—संभव है, इसकी बात सत्य हो नशे में तो लोग माता को पत्नी और पत्नी को भी माता कह देते हैं। एकबार इस पर भरोसा कर लेने में भी क्या हानि है मेरा भाग्य तो यह छीन नहीं सकती।

इस प्रकार सोच कर अमरसेन फिर उसके यहां रहने लगा। जब वेश्या मांगती, तभी वह मोहरें उसे दे दिया करता दोनों आनन्द से रहने लगे। मगर वेश्या सोचा करती--अब यह मोहरें कहां से कैसे प्राप्त करता है ?

वह किस प्रकार मोहरों का भेद पूछती है और आगे क्या घटनाएँ घटित होती हैं, इत्यादि आगे सुनने से पता चलेगा।

भाइयो ! चक्रवर्त्ती को जो रत्न प्राप्त होते हैं या अमरसेन को जो दिव्य पदार्थ प्राप्त हुए, वह सब पूर्वकृत सुकृत का प्रभाव है। आप सुकृत करेंगे तो आपका भी कल्याण होगा।

क्रैन्टोनमेंट बैंगलोर
३०-९-५९